Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 25; अंक : 375; 16 से 28 फरवरी, 1985

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप संपादक :
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
सज्जा :
सुमीता

फिल्म साहित्य कथा अंक

कहानियां : उपन्यास

13. अशनि संकेत (बंगला) : विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय
20. यही सच है : मन्नू भंडारी
32. सद्गति : प्रेमचंद
36. सिंहासन (मराठी) : अरुण साधू
41. मछुआरे (मलयालम) : तकषि शिवशंकर पिल्लै
46. संस्कार (कन्नड़) : यू. आर. अनंतमूर्ति
53. देवदास (बंगला) : शरतचंद्र चट्टोपाध्याय
64. साहब, बीवी और गुलाम (बंगला): विमल मित्र

पटकथा अंश

51. खंडहर : मृणाल सेन
60. पथेर पंचाली : सत्यजीत राय

विशेष आयोजन

9. विश्व की दस कालजयी फिल्में : सुरेश उनियाल
12. ग्लैमर की अंधी गली से बाहर टंगे कुछ नाम : सुमन सरीन
17. सार्थक सिनेमा से दर्शक विमुख क्यों : प्रफुल शाह
30. यह है व्यावसायिक विश्व में साहित्य का स्थान : सत्य कुमारी
35. साहित्यिक फिल्मों से अभिनय में निखार आता है : स्मिता पाटिल
39. नवीनता को खेलने में ही हमें आनंद आता है : नसीरुद्दीन शाह
58. पारो और चंद्रमुखी के चरित्र देवदास का रिफ्लेक्शन नहीं : गुलजार
62. साहित्यिक कृतियों को फिल्माने के खतरे : ब्रजेश्वर मदान
68. जो सिनेमा लोगों तक नहीं पहुंच पाता, वह हमारे किस काम का : सागर सरहदी
70. सम-सामयिक सिनेमा : दशा और दिशा : कुंवर नारायण

स्थायी स्तंभ

6. आपकी बात
8. अपनी बात

भारत में नाटक की बहुत प्राचीन और समृद्ध परंपरा रही है. कालिदास, भवभूति, माघ आदि हमारे महान नाटककार हुए हैं. सामंती युग होने के कारण यह जरूरी था कि नाटक, काव्य आदि का नायक कोई राजा या देवता हो, पर उस युग में शूद्रक ऐसे नाटककार हुए हैं, जिन्होंने आम आदमी को अपने नाटक का नायक बनाया. उनके नाटक 'मृच्छकटिकम्' की कथा को ही आधार मानकर गिरीश करनाड ने फिल्म बनायी 'उत्सव'. इसकी नायिका वसंतसेना की भूमिका में रेखा को हमने इस अंक के आवरण पर देना इसीलिए उचित समझा कि यह हमारे पाठकों को उसी प्राचीन नाट्य परंपरा की याद दिला सके.

आवरण चित्र: प्रीतीश नंदी के सौजन्य से

संपादकीय पता : 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष: २४; अंक: ३७१; १६-३१ दिसंबर, १९८४

संस्था की पसंद

सारिका के दिसंबर (द्वितीय) अंक में प्रकाशित मुद्राराक्षस द्वारा लिखा लेख 'नेमि जी का हमला किस पर' हमारी संस्था ने एक साथ पसंद किया. एक बैठक में आमंत्रित रंगकर्मियों के समक्ष इसे पढ़ा गया था. लेखक और संपादक को बधाई.

O अतुल शर्मा, देहरादून

पर्दे के पीछे की भाषा

मुख पृष्ठ सराहनीय है. अंत होता 'वर्ष', अस्त होता 'सूर्य'–1984 वर्ष की विदाई की खास मूक अभिव्यक्ति है.

राजनीतिक हादसा, उसकी अभिव्यक्ति और बेकग्राउंड –इन सबों की अपनी भाषा होती है, जो पर्दे के पीछे कई रंगों (मुख्य रूप से काले) में अपना राजनीतिक रंगमंच रचती है. यकीनन यह जानकारी आम आवाम से कोसों दूर रहती है.

राजेंद्र कुमार मिश्र की 'षड्यंत्रकारी और क्रांतिकारी' की भाषा कुछ 'उक्त' तरहों की है. यह भी स्पष्ट है कि राजनीति और प्रशासन नाटकों का सृजन करती है, जहां आम आवाम दर्शक होते हैं. जाहिर है उनके प्रभावों और परिणामों के भागीदार भी दर्शक ही हुआ करते हैं.

O अरुण अभिषेक, पूर्णियां

मानव मन का छिछलापन

सारिका के हर क्षितिज में एक नया आयाम होता है. '1984 विदा' अंक पढ़ा. इस अंक की कहानियां मन को छूने वाली थीं. परंतु लेखक शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' एवं श्रीनिवास वत्स की लघुकथा 'पितृभक्ति' ने मानव मस्तिष्क के छिछलेपन एवं स्वार्थ-भावना को बखूबी उजागर किया है.

O श्याम नारायण शुक्ल 'नवीन', गोंडा

पिछड़ेपन का सत्य

डूबता सूरज और विदा 1984, मुख पृष्ठ का संयोजन एकदम सटीक बन पड़ा है.

परत-दर-परत एक ही बैठक में पूरी पत्रिका पढ़ गया. युवा लेखन कहानी प्रतियोगिता में शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' सर्वश्रेष्ठ लगी.

सारिका में लघुकथा के गिरते स्तर की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहूंगा. किसी वक्त लघुकथाएं सारिका की 'जान' हुआ करती थीं. 'मुबारक हो तुम' (गुलजार), 'नाग चंपा' (आका दुबे), 'पहली सीख' (बलराम) तथा 'कैसे क्या हुआ' (शंकर दयाल सिंह) अच्छी लगीं.

O नरेश चंद्र, इंदौर (म. प्र.)

कहानी की जरूरत

आपने 84 के विदा होते ही प्रिय पाठक को स्मरण किया. पचास पैसे बढ़ने ही थे. आशा है नयी साज-सज्जा और बड़े आकार में पत्रिका वास्तव में संवरेगी. 'सिरी उपमा जोग' (शिवमूर्ति) पढ़कर यह पत्र लिखने के लिये विवश हुआ. बहुत गहरे तक उद्वेलित कर गयी यह कहानी. अरसा तक याद रहेगी. बलराम का यदि नाम न होता तो 'पहली सीख' पढ़ने से बचा रहता. सुरेश उनियाल ने फिर भी रचनाकार का भरम रखा. 'ग्यारह वर्ष का समय' अतीत का वातायन है. 'इलाहाबादी फर्ज' सामयिक रचना से अधिक संपादकीय फर्ज जैसा प्रतीत हुआ. मुज्तबा हुसैन को हमेशा बड़े शौक से पढ़ता रहा हूं. इस बार जाने क्यों शौक धरा रह गया. क्या आपको नहीं लगा, रॉबिन शॉ पुष्प से साक्षात्कार अधूरा-अधूरा-सा है. गुलजार अच्छे फिल्मकार हो सकते हैं. अच्छे कथाकार नहीं. याद नहीं पड़ता, उनकी कोई कहानी (उर्दू या हिंदी) में प्रभावित कर गयी हो. संक्षिप्त में यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूं कि कथा संसार से विरक्त होने के लिये मेरे भीतर का शून्य जिम्मेदार है या बाहरी दबाव? लीजिये, इधर 'पूर्वग्रह' ने भी इधर की कथाओं पर ध्यान केंद्रित किया है. इस बार नामवरजी ने निपट कथाकारों के पक्ष में दिलखुशकुन बातें कही हैं. जो लोग कविता-कविता चिल्लाते थे, उन्हें कहानी की जरूरत क्यों पेश आयी. . . . . क्या ये सारिका की परिचर्चाओं का कमाल है ?

O हसन जमाल, जोधपुर

गांव न लौटने की प्रतिष्ठा

सारिका का हर अंक अपने आप में बेजोड़ होता है. शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' पढ़ी. ठेठ भारतीय नारी के संघर्ष का जो सजीव चित्रण किया गया है, उसके लिए कहानीकार को एक बार फिर बधाई. ए. डी. एम. साहब ही क्यों आज हर पढ़ा-लिखा (ग्रामीण) नौजवान शहर छोड़कर गांव में रहने या जाने में अपनी प्रतिष्ठा में कमी समझता है. ये साहब तो अपने बेटे को पहचानने से ही इंकार कर पाए, कुछ-कुछ तो अपने मां-बाप को नौकरानी-नौकर बतलाकर अपनी इज्जत बनाये रखने में ही बड़प्पन समझते हैं. कहानी पढ़ने से मालूम होता है कि हम कहानी न पढ़कर कोई ग्रामीण सत्यकथा पढ़ रहे हैं. मेरी राय में इस अंक की यही सर्वश्रेष्ठ कहानी है. शिवमूर्तिजी की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दुर्लभ कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' अच्छी लगी. हिंदी साहित्य से विशेष प्रेम रखने वालों के लिए यह कहानी कुछ विशेष महत्वपूर्ण होगी.

O सुधीर कुमार यादव, संबलपुर

एक सुझाव

अंक 371 मेरे हाथों में है. अगले अंक से हमारी प्रिय सारिका बड़े आकार व नयी साज-सज्जा और डेढ़ गुनी सामग्री लेकर उपस्थित होगी. आपको धन्यवाद.

मेरे विचार से सारिका का पाठक वर्ग अन्य पत्रिकाओं के पाठकवर्ग से अलग अपनी विशेषता रखता है. कृपया नये अंक से आप सारिका में वैवाहिक विज्ञापन अवश्य देना शुरू कर दें ताकि समान विचारों व समान बौद्धिक स्तर के पाठक अपने सही जीवन साथी को खोज सकें.

O आदर्श कुमार गुप्ता, पटना

नवचेतना की तलाश

शिवमूर्ति की कहानी 'सिरी उपमा जोग' तथा गुलजार की 'मुबारक हो तुम' पढ़ी. एक कड़वे सत्य से परिचय हुआ–"आदमी, चाहे छोटा हो या बड़ा, अमीर हो या गरीब, कहीं किसी को मुकम्मिल जहां नहीं मिलता." गुलजार ने अपनी कहानी में यीशु मसीह के आराधकों को माध्यम बनाकर विभिन्न धर्मों के प्रचार में लगे कठमुल्लों की व्यथा का जिस खूबसूरती और सच्चाई के साथ विवेचन किया है, उसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है. आशा है नयी सज-धज के साथ शुरू होने वाली सारिका में ऐसी नवचेतना जगाने वाली कहानियां अधिक-से-अधिक पढ़ने को मिलेंगी.

O प्रकाश 'गंभीर,' दिल्ली

दिखावापसंदी

मैं पंचम वर्ष गणित का विद्यार्थी हूं, मगर साहित्य में भी रुचि रखता हूं. इस कारण गत दो वर्षों से सारिका का नियमित पाठक हूं. आज आपकी पत्रिका का अंक (371) मिला. इस अंक की कहानी 'सिरी उपमा जोग' ने बहुत प्रभावित किया. 'युवा लेखन कहानी प्रतियोगिता' के अंतर्गत श्री शिवमूर्ति द्वारा रचित यह कहानी पाठक हृदय को गहराई तक स्पर्श करती है, और आज इस 'दिखावा-पसंद समाज' को काफी हद तक जलील करती है. श्री शिवमूर्ति को बधाई.

विभा देवसरे लिखित 'इलाहाबादी फर्ज' भी चुनाव के भूत का अच्छा विश्लेषण करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. साथ ही अन्य कहानियां जैसे—**'ग्यारह वर्ष का समय'**, **'नागचंपा,'** **'खामियाजा'** आदि काफी रोचक हैं. आशा है नये वर्ष में भी हमारा सुरुचिपूर्ण मनोरंजन करते रहेंगे.

और हां, **सारिका** के लिये पचास पैसा अतिरिक्त कोई माने नहीं रखता है.

o नवेंदु शेखर 'दीपक', गोरखपुर

व्यथा भाव की कहानियां

सारिका का हर अंक बहुत ही लुभावना होता है. **राकेश वत्स** की कहानी **'खामियाजा'** बहुत ही अच्छी लगी. वैसे हर कहानी अपने आप में कुछ न कुछ व्यथा भाव, रहस्य छिपाए रहती है. पर इस कहानी का सार मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ता है. **ज्ञान प्रकाश विवेक** की लघुकथा **'मां'** तथा **पवन शर्मा** की **'योजना'** इस अंक की अच्छी उपलब्धि थी. मैं सारिका का नया ही पाठक हूं फिर भी मैं इसमें इस प्रकार घुल-मिल गया हूं जैसे कोई वर्षों पुराना पाठक हो.

o पवन पहाड़िया 'डेह,' नागोर

समय के साथ धूमिल पड़ते संदर्भ

सारिका की प्रतीक्षा 'प्रियतमा' का इंतजार कर रहे 'प्रिय' जैसी ही होती है. 'पक्ष' के प्रारंभ होते ही सुबह-शाम बुक-स्टाल तक की सैर निर्विरोध होती है. यह क्रम पिछले चार वर्षों (जबसे इसका नियमित पाठक हूं) से निरंतर चलता आ रहा है. बस नौकरी में तबादलों के कारण शहर व बुक-स्टाल अवश्य बदले हैं. सारिका का प्रत्येक अंक व रचना अपने आप में एक अनूठा एहसास होती है जो कहीं बहुत गहरे तक छूकर आम आदमी की सोच प्रक्रिया से अलग सोच-प्रक्रिया के आयाम प्रदान करती है.

अभी सारिका का विदा अंक: 371 पढ़ा. **'हिंदुस्तानी नहीं होने का दुख'**—आलोक रंजन की **रॉबिन शॉ पुष्प** से बातचीत आज सैंतीस साल बाद हुये सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं मानसिक विकास का यथार्थ बोध कराती है. शिवमूर्ति की **'सिरी उपमा जोग'** साक्षर, बुद्धिजीवी व मानवता का दम भरने वाले हर उस इंसान की वास्तविक प्रायोगिक जिंदगी को खोलकर रखती है जो खुद को अभिजात्यता का पुतला बनाये निरे अपनों का अस्तित्व तक स्वीकारने में हीनता महसूस करता है. **'तमाशबीन'** में जिंदगी के अत्यंत भावुक एवं संवेदनशील पहलू को उजागर कर समय के साथ धूमिल पड़ते संदर्भों को चित्रित करने में **नरेंद्र नागदेव** पूर्णतय: सक्षम रहे हैं. बलराम की **'पहली सीख'** जीवन की मूल भूत आवश्यकताओं की पूर्ति के तहत टूट रहे आदमी के आदर्श, लाभ के लिये इंसान के ही हाथों कठपुतली बने इंसान जो सच्चाई न कह सकने के कारण पैदा कुंठा से स्वयं को विकलांग महसूस करता है, को उजागर करती है. यह कुंठा आज खासकर सरकारी व गैर सरकारी तबकों के जीते-जागते सत्य को 'पहली सीख' के रूप में कह रही है.

o देवेंद्र कुमार, अलवर

अंग्रेजी न आने का दुख

रॉबिन शॉ पुष्प का **'हिंदुस्तानी नहीं होने का दुख'** एक कटु सत्य है. किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रभाषा अपरिहार्य है. आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार नेशन (राष्ट्र) की परिभाषा है–'एक पूर्वज की संतान, जिसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराएं एक होती हैं और जो एक विशाल भू-भाग में निवास करती हैं.' राष्ट्र के लिए उक्त तीन अर्हताओं में सबसे महत्वपूर्ण है—सांस्कृतिक एकता. और हिंदी ही अपनी सर्वमान्य संक्रमता के कारण, देश को सांस्कृतिक एकता में बांधने का दायित्व निभा सकती है.

परंतु हिंदी के प्रति हमारे मन में हीनभावना व्याप्त है. आज भी समाज में अंग्रेजी शिक्षित और ज्ञानी होने का प्रतीक मानी जाती है. इन हालात में लेखक के दुख से सहानुभूति रखनेवाले कम ही होंगे, यहां तो लोगों को अंग्रेजी नहीं आने का दुख है.

o कुशल अवस्थी, बंबई □

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी का त्रैमासिक हिंदी प्रकाशन

भारतीय भाषाओं के समकालीन रचना कर्म का अनूठा दस्तावेज

वर्ष 5, अंक 19 जनवरी–मार्च '85 के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर

कहानियाँ
- □ कश्मीरी : हरिकृष्ण कौल / सूफ़ी गुलाम मुहम्मद
- □ मराठी : विजया राजाध्यक्ष / योगीराज वाघमारे
- □ पंजाबी : जसबीर भुल्लर / प्रभजोत कौर
- □ हिंदी : अमर गोस्वामी / चन्द्रकान्ता

कविताएँ
- □ मराठी : ना. धों. महानोर / अनुराधा पोतदार
- □ मैथिली : कीर्तिनारायण मिश्र / गंगेश गुंजन
- □ हिंदी : रघुवीर सहाय / श्रीकान्त वर्मा / अजित कुमार / प्रयाग शुक्ल
- □ उर्दू : शाहिद माहुली
- □ अंग्रेजी : ब्रायन पैटन

रंगमंच
- □ मनोरंजन दास की लंबी नाट्य रचना : **एक अनुपम यात्रा पर**
- □ आधुनिक भारतीय रंगमंच । जयदेव तनेजा
- □ दिल्ली का पंजाबी रंगमंच । सत्येंद्र तनेजा

इनके साथ पुस्तक-समीक्षा तथा अन्यान्य स्तंभ भी।

एक प्रति 5 रुपये वार्षिक सदस्यता शुल्क 16 रुपये

वार्षिक सदस्यता एवं अपनी प्रतियों के लिए लिखिये :

बिक्री प्रबंधक, **साहित्य अकादेमी**
रवींद्र भवन, 35, फीरोज़शाह रोड,
नयी दिल्ली-110001

साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित

कुछ महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह

रवींद्रनाथ की कहानियाँ : अनुवादक : रामसिंह तोमर, पृ. 404; 35 रुपये

सात शिखर (कश्मीरी कहानी संग्रह) : लेखक : अख़्तर मोहिउद्दीन अनुवादक : शशिशेखर तोशखानी, पृ. 78, 3.50 रुपये

नीला अंबर काले बादल (डोगरी कहानी सग्रह) : अनुवादक : देवरत्न शास्त्री पृ. 120; 8 रुपये

डोगरी कहानियाँ : सपादक : मदनमोहन शर्मा, अनुवादिका : पद्मा सचदेव, पृ. 144; 9 रुपये

चुनी हुई सिंधी कहानियाँ : सपादक : गोविंद माल्ही और कला रीझसिघानी, अनुवादक : मोतीलाल जोतवाणी, पृ. 212, 10 रुपये

परशुराम की चुनी हुई कहानियाँ : अनुवादक : प्रबोध कुमार मजूमदार, पृ. 202, 3 रुपये

सात युगोस्लाव कहानियाँ : अनुवादक : प्रभाकर माचवे, पृ. 52; 6 रुपये

झोंपड़ी वाले और अन्य कहानियाँ : (रूमानियाई कहानी सग्रह) : अनुवादक : निर्मल वर्मा, पृ. 164, 7 रुपये

बारह हंगारी कहाँनियाँ : अनुवादक : भारतभूषण अग्रवाल एवं रघुवीर सहाय, पृ. 200, 10 रुपये

पुस्तकों का आदेश निःशुल्क विस्तृत सूचीपत्र एवं अन्य जानकारी के लिए लिखें :

साहित्य अकादेमी
रवींद्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह रोड,
नई दिल्ली-110001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

हिंदी में जब-जब साहित्यिक कृतियों पर और विशेष रूप से हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर फिल्में बनीं तो वे पूरी तरह पिट गयीं जबकि यह बात विदेशी फिल्मों और अन्य भारतीय भाषाओं की फिल्मों के बारे में इतनी सच नहीं है. आखिर इसका कारण क्या है? जब भी हिंदी की किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनती है और पिटती है तब यह सवाल हमारे सामने आ खड़ा होता है. हमारी फिल्म पत्रकारिता ने इस सवाल को विशेष महत्त्व नहीं दिया. उनकी नजरें व्यावसायिक फिल्मों के ग्लैमर पर ज्यादा ठहरी रहीं. जब हर फिल्म के साथ तथाकथित कहानी का नाम जुड़ा रहता है, चाहे वह कहानी कितनी ही घटिया, निरर्थक और असाहित्यिक हो, तब कहानी प्रत्रिका होने के नाते सारिका का इस बात से कमोबेश संबंध जुड़ जाता है. हमने इसी संबंध को ध्यान में रखते हुए इस 'फिल्म साहित्य कथा अंक' की योजना बनायी.

हमारा सरोकार फिल्मों से उतना नहीं है जितना कि फिल्मों का आधार बनी साहित्यिक कृतियों से है. जब भी हिंदी की किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनती है तो हमारे साहित्यकार अनेक प्रश्नचिह्न हवा में उछालने लगते हैं. उनके ये प्रश्नचिह्न निरर्थक नहीं कहे जा सकते. यह हो सकता है कि प्रश्न उछालनेवाले इन साहित्यकारों के पास फिल्म मीडिया की ज्यादा समझ न हो, लेकिन उन्हें कहानी की समझ तो है ही, साथ ही उस फिल्म के प्रति आलोचनात्मक समझ भी उनमें होती है.

प्रेमचंद की आधा दर्जन से अधिक कहानियों या उपन्यासों पर फिल्में बनी हैं लेकिन आम दर्शक उन्हें लगभग भूल चुका है, कम से कम 'साहब, बीवी और गुलाम' के मुकाबले में तो भूल ही चुका है, जबकि प्रेमचंद जन मानस के चितेरे के रूप में विमल मित्र से कहीं बड़े और महत्वपूर्ण लेखक हैं. हिंदी का पाठक भी विमल मित्र की अपेक्षा प्रेमचंद से अधिक जुड़ा है. फिर फिल्मों के स्तर पर वह बात प्रेमचंद के साथ क्यों नहीं हो पायी. इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि फिल्म जगत में हिंदी साहित्य की समझ रखनेवाले फिल्मकार या तो हैं ही नहीं या बहुत कम हैं. उर्दू, पंजाबी और बंगला को समझनेवाले लोगों का वर्चस्व पूरे हिंदी फिल्म जगत पर छाया हुआ है. उनकी नजर में हिंदी की साहित्यिक कृतियां उनके व्यवसाय को चौपट तो कर सकती हैं, लेकिन बढ़ा नहीं सकतीं. इसीलिए इनकी नजरों में हिंदी की साहित्यिक कृतियां बेकार की चीज बनी रहीं. अब कुछ लोग इस ओर ध्यान दे रहे हैं, यह एक अच्छा लक्षण है.

जब तक फिल्मकार या पटकथा लेखक अथवा संवाद लेखक अपने मानसिक स्तर को साहित्यकारों के मानसिक स्तर तक नहीं ले जाता, तब तक वह उनकी कृतियों के प्रति न्याय नहीं कर सकता. जितना किसी रचनाकार की मानसिक बुनावट को समझना जरूरी है, उतना ही रचना के स्थान, माहौल, वहां की भाषा, और पात्रों के द्वंद्वों, उनकी परेशानियों और समस्याओं को समझना भी जरूरी है. इसके लिए जितनी मेहनत की जानी चाहिए, नहीं की जाती.

एक कारण और भी है कि हिंदी में—चाहे साहित्य में हो या फिल्मों में, जितने भी आंदोलन आये, अधिकांशतः पश्चिम से आये या शक्ति गुटों से आये. कोई भी उधार ली हुई विचारधारा अधिक समय तक हमारी अपनी बनकर नहीं रह सकती. जहां तक आंदोलनों का सवाल है, हर आंदोलन साहित्य में पहले शुरू हुआ, फिल्मों में बाद में आया और जब आया तो उसे फैशन के स्तर पर तो लिया गया, समझ के स्तर पर नहीं लिया गया. यही कारण है कि उन आंदोलनों के नाम से जुड़ी हुई फिल्में लगातार असफल होती गयीं. आंदोलन आकार को भले ही बदल पाये हों, लेकिन अंतःकरण को नहीं बदल पाये. यही कारण है कि दर्शकों ने उन्हें अस्वीकार कर दिया. 'सारा आकाश', 'उसकी रोटी', 'भुवनशोम', '27 डाउन' आदि फिल्में प्रायोगिक सिनेमा के नाम पर बनायी तो गयीं, लेकिन डिब्बे में बंद हो कर रह गयीं. जिंदगी से कटी हुई कलात्मकता हर क्षेत्र में अपना असर खो चुकी है—चाहे वह साहित्य का क्षेत्र हो या फिल्मों का. जब हमारी चित्रकला तक यथार्थवादी ढांचे को स्वीकार करती जा रही है, तब फिल्म जैसे स्थूल और दृश्य माध्यम उससे बचकर कैसे रह सकते हैं. आज किसी भी यथार्थवादी ढांचे को नकारना उस माध्यम को निरर्थक पीछे ढकेलने की कोशिश करना मात्र है.

फिर भी हमें 'सारा आकाश' से शुरू हुए आज के नये, सार्थक या सही सिनेमा की भूमिका से भविष्य के लिए अच्छी आशाएं ही बंधती हैं. अच्छे लोगों का सिने संसार की ओर झुकाव एक अच्छा लक्षण है. पिछले कुछ वर्षों से अच्छे, समझदार और जिंदगी तथा थियेटर से जुड़े लोग फिल्मों में आये हैं. कुछ सुलझे हुए निर्देशक भी नजर आ रहे हैं. ये ऐसे लोग हैं जो फिल्म माध्यम को भी समझते हैं और कहानी, नाटक तथा संवाद की साहित्यिकता से भी वाकिफ हैं. अच्छे, साफ-सुथरे, सार्थक और सही सिनेमा में साहित्य की हिस्सेदारी और पड़ताल को लेकर तथा भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखकर हमने इस अंक की कल्पना की. इस अंक में हमारा एक उद्देश्य यह भी रहा है कि साहित्यिक सिनेमा में 'सिनेमेटिक लिबर्टी' के नाम पर पैदा की जा रही विकृतियों का ज्ञान हमारे पाठकों को रहे. हम सारिका का यह अंक उन पाठकों को समर्पित कर रहे हैं जो साहित्य और सिनेमा के संबंध को लेकर सतर्क हैं और सिनेमा में साहित्य की हिस्सेदारी को जरूरी समझते हैं. इस अंक पर हमें आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी.

साफ-सुथरे, सार्थक और सही सिनेमा में साहित्य की भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व की दस कालजयी फिल्में

□ सुरेश उनियाल

इस वर्ष सिनेमा अपनी आयु के नब्बे वर्ष पूरे कर चुका है. इस लंबे दौर में उसने क्या कुछ ऐसा भी दिया है कि आने वाली पीढ़ियां उसे याद रख सकें? ऐसी ही दस फिल्मों का चुनाव किया है सारिका परिवार के एक सदस्य ने.

जब हम दुनिया की दस कालजयी फिल्मों की बात करते हैं तो पहला सवाल यह उठता है कि हम कालजयी किसे कहेंगे? कालजयी होने के लिए महान होना ही काफी नहीं है. महान तो उसे होना चाहिए, इसके इसके अतिरिक्त उसे वक्त की सीमाओं को तोड़ते हुए सार्वकालिकता और सर्वग्राह्यता की परिधि में आना होगा. अपने समय में सारे रिकार्डों को तोड़नेवाली फिल्म दस साल बाद भी याद की जाये, यह जरूरी नहीं है. इस अध्ययन में हम उन्हीं फिल्मों की बात करेंगे, जो आज भी अपने होने की याद दिलाती हैं.

इतनी कठिन कसौटी के बावजूद ऐसी फिल्मों की संख्या दस तक सीमित करना एक बहुत कठिन कार्य था. कम से कम दस और फिल्में मेरे दिमाग को खटखटा रही थीं, पर दस की संख्या की सीमा के कारण में मजबूर था. इस अध्ययन में मैंने पच्चीस साल से पहले की ही फिल्मों को लिया है, क्योंकि मेरे खयाल से कालजयी होने की कसौटी पर कसे जाने के लिए 25 साल का समय तो कम से कम बीच में होना ही चाहिए. मैं अपनी बात शुरू करूंगा विश्व सिनेमा के पितामह डी. डब्लू. ग्रिफिथ की फिल्म 'बर्थ ऑव ए नेशन' से.

बर्थ ऑव ए नेशन

यों तो 1895 में लूमियेर भाइयों ने पहली फिल्म बनायी थी, पर वे सभी एक शॉट की फिल्में थीं. जॉर्ज मेलिए ने पहली बार दो शॉट को मिलाने की तकनीक का प्रयोग किया. एडिसन ने पहली बार ऐसी फिल्म बनायी, जिसमें कथा तत्व भी था—'ग्रेट ट्रेन रॉबरी.' ग्रिफिथ ने 1908 से फिल्में बनाना शुरू कर दिया था. 'द एडवेंचर्स ऑव डॉली' में ग्रिफिथ ने पहली बार अभिनेताओं को लिया और शॉट लेने से पहले बाकायदा रिहर्सल करवायी. 'एनक आर्डन' में क्लोजअप लिया. 'रामोना' में पेनोरमा शॉट लिये. 'द लोनडील ऑपरेटर' में पहली बार कैमरे को गति दी और कटिंग का बहुत अच्छा इस्तेमाल किया. ये सभी एक रील की फिल्में थीं. पहली बार उसने दो रील की फिल्म बनायी 'मैन्स जेनेसिस'. 1914 में जब 'बर्थ ऑव ए नेशन' बनायी तो यह सिनेमा के क्षेत्र में एक क्रांति थी. यह 13 रील की पूरी लंबाई की पहली फिल्म थी. इससे पहले इतनी लंबी फिल्म बनानें का साहस किसी ने नहीं किया था और किसी को यह विश्वास नहीं था कि इतनी लंबी फिल्म को देखने का धैर्य दर्शकों में होगा, पर बॉक्स ऑफिस पर भी इस फिल्म ने तहलका मचा दिया था. तकनीकी दृष्टि से भी कोई पहलू ऐसा नहीं था, जिसका प्रयोग ग्रिफिथ ने इसमें न किया हो. विख्यात फिल्म निर्देशक अल्फ्रेड हिचकॉक का मानना है कि आज आप फिल्म में जो कुछ देखते हैं, उसकी शुरूआत ग्रिफिथ से ही हुई है.

बैटलशिप पोटेमकिन

'बर्थ ऑव ए नेशन' के लगभग दस साल बाद 1924 में रूस में बनी सर्गेई आर्जेंस्टाइन की फिल्म 'बैटलशिप पोटेमकिन' को मैं मूक फिल्म युग की दूसरी कालजयी फिल्म मानता हूं. 1905 में ओडेसा में नौसैनिकों की क्रांति इस फिल्म का विषय था पर यह मात्र उस क्रांति का फिल्मांकन ही नहीं है. यह पूरे संघर्ष की कथा है. एक गतिमयता और लयात्मकता इसके हर फ्रेम में है. दरअसल यह सिनेमा के इतिहास की पहली 'कलाकृति' है. तकनीक, संरचना तथा विषय वस्तु का समन्वय इतनी खूबी से हुआ है कि सब कुछ जीवंत हो उठता है. ओडेसा की सीढ़ियों का दृश्य संयोजन तो सिनेमा कें इतिहास में अपनी किस्म का एक ही है. मूक फिल्म होते हुए भी हम सैनिकों द्वारा चलायी गयी गोलियों की आवाजें और लोगों की चीख-पुकार महसूस कर सकते हैं. उस औरत की चीख को भला कौन भुला सकता है, जिसके बेटे को गोली लगी है. कुछ लोग भव्य दृश्य संयोजन के लिए आइजेंस्टाइन की सवाक फिल्म 'इवान द टैरीबल' को बेहतर फिल्म कह सकते हैं, उसमें कई तरह के ट्रिक शाट्स का काफी अच्छा इस्तेमाल है, पर जिस तरह से विद्रोह की पूरी प्रक्रिया को व्यक्ति से समूह और समूह से जनमानस तक फैलने की अंतर्निहित गतिशीलता को आइजेंस्टाइन 'पोटेमकिन' में चित्रित करता है, वही इसे एक कालजयी फिल्म बनाने के लिए पर्याप्त है.

द पैशन ऑव जोन आर्क

कार्ल ड्रेये ने 'द पैशन ऑव जोन आर्क' 1929 में बनायी थी. यह वह समय था, जब फिल्मों में ध्वनि प्रवेश कर रही थी. अमरीका में 'द जाज सिंगर' बन चुकी थी, जिसकी दस में से चार रीलों में ध्वनि अंकित थी. 'जोन आर्क' एक मूक फिल्म थी, पर उसकी ध्वनियों को कानों से नहीं, हृदय से अनुभव किया जा सकता था. कैथलिक धर्माधिकारियों के न्यायालय में जोन आर्क से की जाने वाली पूछ-ताछ को ध्वनि की जरूरत नहीं है. धर्माधिकारियों की क्रूरता और पाखंड तथा जोन आर्क की असहाय स्थिति और मन की दृढ़ता बिना किसी प्रकार की ध्वनि के सहारे सीधे दर्शक के भीतर पैठ जाते हैं. इस फिल्म की दूसरी

'बर्थ ऑव ए नेशन' : बर्थ ऑव सिनेमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

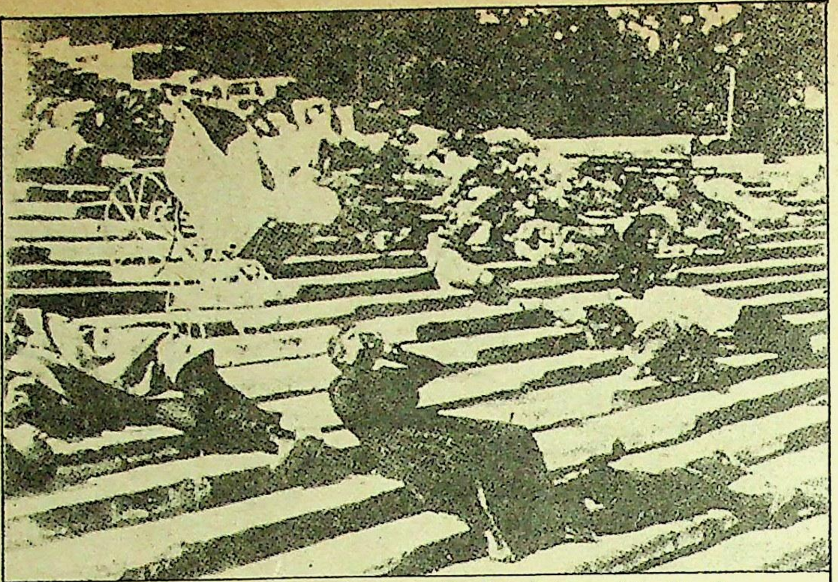

'बैटलशिप पोटेमकिन' : ओडेसा की सीढ़ियों पर सैनिकों की गोलियों से घायल होते लोग.

विशेषता है मानवीय चेहरों के लैंडस्केप. मानवीय चेहरों का क्लोजअप में या क्लोज मिड शॉट (अधिकतर) में विलक्षण संयोजन पहली बार हमें इस फिल्म में मिलता है. इसका प्रयोग बाद में रोजेलिनी, बर्गमैन और सत्यजित राय जैसे परवर्ती फिल्मकारों ने किया. एक शॉट के बाद दूसरे शॉट में कटिंग इतनी लयात्मक है कि दर्शक को इसे देखते हुए किसी संगीत लहरी का सा आभास होता है.

रूल्स ऑव द गेम

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले के योरोप के सवाक सिनेमा में एक महत्वपूर्ण नाम है फ्रांस के ज्यां रेनुआ का. 'रूल्स ऑव द गेम' उसने 1939 में बनायी थी, पर युद्ध की छाया इस फिल्म के रास्ते में बराबर रुकावट डालती रही. दो बार यह फिल्म जब्त हुई, फिर विश्वयुद्ध की बंबारी ने इसे नष्ट ही कर डाला. 1946 में जाकर दो फ्रांसीसी उत्साही युवकों ने अथक परिश्रम करके इसके बचे खुचे हिस्सों को इकट्ठा किया और एक बार फिर से इस फिल्म को पुनर्जीवित किया. यह फिल्म युद्ध पूर्व के योरोप के समाज पर एक सीधी टिप्पणी है. एक ही घर में, एक ही पार्टी में दो समाज एक दूसरे के समानांतर, एक-दूसरे के अस्तित्व से अप्रभावित काम कर रहे हैं. एक समाज है मालिकों का और एक है नौकरों का. एक व्यक्ति है, जो इन दोनों से अपने को जोड़ता है, वह है ऑक्तेव, जिसकी भूमिका स्वयं रेनुआ ने की है. इस बुर्जुआ समाज के कुछ नियम हैं और इन नियमों का उल्लंघन करते हैं दो व्यक्ति- मालिकों के वर्ग का यूरियो और नौकरों के वर्ग का शुमाखर. गलत-फहमियों के एक सिलसिले के बाद यूरियो शुमाखर की गोली का निशाना बनता है और मारा जाता है. दरअसल यह फिल्म कई स्तरों पर एक साथ चलती है. पारंपरिक फ्रांसीसी थियेटर की शैलीबद्धता के साथ अपने समकालीन यथार्थ जगत के विषयों और व्यक्तियों का सम्मिश्रण रेनुआ ने बड़ी खूबी से किया है. उसने एक हल्की-फुल्की कामेडी को एक त्रासद मानवीय नाटक के साथ मिश्रित किया है, लेकिन इस सबके लिए किसी लंबी-चौड़ी कास्ट और जटिल किस्म के प्लॉट को लेने के बजाय रेनुआ ने एक संक्षिप्त-सी पार्टी में कुछ थोड़े से लोगों के चरित्रांकन व्यक्तिगत स्तर पर किये हैं. कोई भी पात्र खलनायक या बुरा नहीं है- सभी के प्रति निर्देशक की सहानुभूति है, पर उनके व्यवहारों के द्वारा समाज की विसंगतियों को बड़ी खूबी से निरूपित किया गया है. यही सादगी इस फिल्म को शाश्वतता देती है.

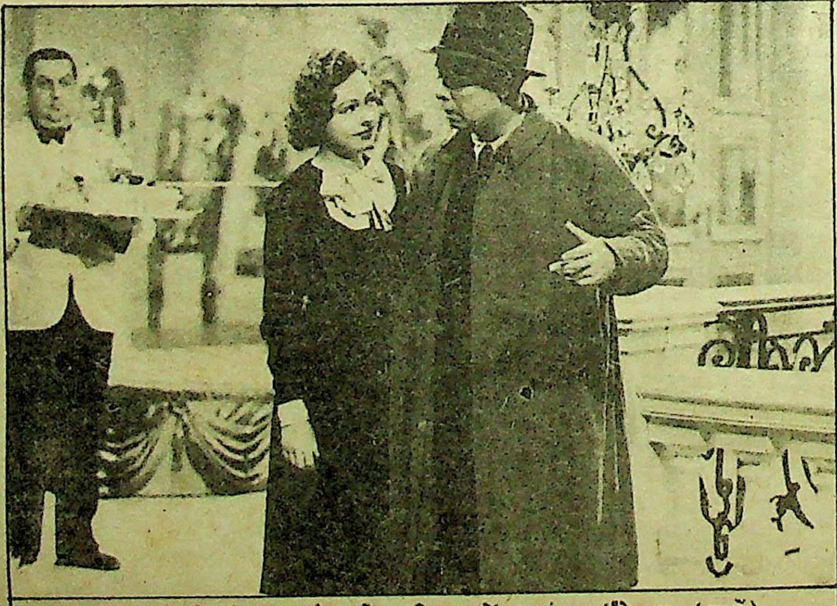

'रूल्स ऑव द गेम' : आक्तेव की भूमिका में स्वयं ज्यां रेनुआ (दायें)

सिटिजन केन

द्वितीय विश्वयुद्ध की आग में जहां योरोप जल रहा था और वहां के कला और संस्कृति जगत पर एक तरह से मौत का सन्नाटा छाया हुआ था, वहां अमरीका में सिनेमा तथा अन्य कलाएं फल-फूल रही थीं. 1941 में आरसन वैल्स नामक एक छब्बीस वर्षीय युवक ने एक फिल्म बनायी 'सिटिजन केन'. यह एक आत्मकथात्मक फिल्म थी, जिसमें चार्ल्स फोस्टर केन नामक व्यक्ति के पूरे जीवन को समेटा गया है. फिल्म की शुरुआत में कैमरा एक विराट कोठी 'जानाडू' को दिखाता है, उसके दरवाजे पर लगी पट्टिका--'प्रवेश वर्जित' को दिखाता है और फिर बूढ़े केन को एक शब्द 'रोजबड' का उच्चारण करने के साथ ही मरते हुए दिखाता है. प्रश्न है कि रोजबड (गुलाब की कली) क्या है? इसी सवाल के जवाब में फिल्म आगे चलती है और केन के उत्थान से पतन तक की कहानी हमें दिखाती है. दरअसल 'सिटिजन केन' एक संपूर्ण फिल्म है, जो मनोवैज्ञानिक सामाजिक, नाटकीय, कामदीय--सभी स्तरों पर खरी उतरती है. इसमें जहां मनुष्य की इच्छाशक्ति की प्रबलता को दिखाया है वहीं उसकी क्षुद्रता को भी नहीं छिपाया. यह व्यक्ति के यौवन से लेकर वृद्धावस्था तक की आकांक्षाओं और इच्छाओं, अहं और गर्व को समेटती हुई एक कविता है. इस फिल्म का तकनीकी पक्ष भी महत्वपूर्ण है. वैल्स ने जब भी केन को कैमरे में लिया, कैमरे को नीचे के कोण पर रखा. इसके अतिरिक्त उसने वाइड एंगल तथा डीप फोकस लैंसों का इस्तेमाल करके पूरी भव्यता को बनाये रखा. केन की भूमिका स्वयं वैल्स ने की थी.

बाइसिकल थीव्ज

युद्ध के बाद इटली में एक नये सिनेमा आंदोलन का सूत्रपात हुआ, जिसका नाम था 'नव यथार्थवाद' या 'नूवो रियलिज्म', उसके सूत्रधार थे वित्तोरिया डी सिका, रोजेलिनी, विस्कौंती आदि. यह पहला बड़ा आंदोलन था, जिसने पूरी दुनिया के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्मकारों को प्रभावित किया. भारत में भी विमल राय से लेकर सत्यजित राय तक इससे अप्रभावित नहीं रह सके और 'दो बीघा जमीन', 'पथेर पंचाली' जैसी फिल्में बनायीं. इस पूरे आंदोलन में जिस फिल्म की सबसे अधिक चर्चा हुई, वह थी वित्तोरिया डी सिका की 'बाइसिकल थीव्ज'. कहानी मात्र इतनी है कि युद्ध के बाद टूटे हुए इटली में बेरोजगारी की जो भयंकर लहर आयी, उसमें अंतोनियो को किसी तरह पोस्टर चिपकाने की नौकरी मिल गयी, पर शर्त थी कि उसके पास अपनी साइकिल होनी चाहिए. वह घर की और चीजें गिरवी रखकर अपनी गिरवी रखी साइकिल छुड़ाता है, लेकिन दुर्भाग्य, नौकरी के पहले दिन ही उसकी साइकिल चोरी चली जाती है. पूरी फिल्म उस चोरी की साइकिल की तलाश की है, साइकिल ढूंढ़ने के लिए वह इतना परेशान है कि नौकरी और दूसरी बातें उसके आगे गौण हो जाती हैं और फिल्म देखते हुए दर्शकों की भी इच्छा होने लगती है कि वह खुद भी साइकिल ढूंढ़ने निकल पड़ें. इस फिल्म की सबसे बड़ी पूंजी इसकी सहजता है. स्टूडियो के भव्य सेटों से बाहर वास्तविक लोकेशन पर, चर्चित महान अभिनेताओं की जगह नये चेहरों को लेकर बनी यह फिल्म बहुत विश्वसनीय तथा अपने आसपास की लगती है. पटकथा से लेकर तकनीक पक्ष तक सब कुछ जैसे बड़ी सहजता से तैयार किया गया है, पर प्रभाव की दृष्टि से यह भीतर तक कुरेद जाती है. यही गुण इस फिल्म को शाश्वत मूल्य देता है.

रशोमन

योरोप और अमरीका के फिल्मकारों ने पचास के दशक से पहले एशिया के फिल्मकारों को कोई महत्व नहीं दिया था, पर पचास के दशक में जापान में अकिरा कुरोसावा और भारत में सत्यजित राय के अभ्युदय के बाद एशियाई सिनेमा को नजरंदाज करना उनके लिए संभव न रहा. 'रशोमन' (1951) कुरोसावा की एक बहुत ही जटिल फिल्म है. एक घटना है—एक डाकू जंगल में एक समुराई के सामने ही उसकी पत्नी के साथ बलात्कार करता है और समुराई मारा जाता है. चार व्यक्ति—डाकू, समुराई की पत्नी, समुराई (जिसकी आत्मा को एक माध्यम द्वारा अदालत में गवाही के लिए बुलाया जाता है) तथा इस घटना को छिपकर देखनेवाला एक लकड़हारा—इस घटना को अपने-अपने ढंग से सुनाते हैं और चारों के सत्य एक-दूसरे से भिन्न हैं. तेरहवीं सदी के जापान की पृष्ठभूमि की यह कथा हर देश और हर काल के इस सत्य को उद्घाटित करती है कि किसी भी व्यक्ति के लिए सत्य वह नहीं है, जो घटता है, बल्कि सत्य वह है, जैसा वह उसे घटते हुए देखना चाहता था. मनुष्य

'पथेर पंचाली' : मां की भूमिका में करुणा बनर्जी

और मनुष्यता के प्रति अविश्वास से शुरू हुई यह कहानी विश्वास पर खत्म होती है, जहां लकड़हारा स्वेच्छा से उस बच्चे को गोद लेने के लिए तैयार हो जाता है; जिसे कोई रशोमन गेट पर छोड़ गया था.

पथेर पंचाली

किसी भी संप्रेषणीय माध्यम का एक व्याकरण होता है. और उसमें कुछ ऐसी रचनाएं होती हैं, जिन्हें व्याकरण के अध्ययन के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ा जा सकता है. 'पथेर पंचाली' को हम फिल्म के व्याकरण की पाठ्य पुस्तक कह सकते हैं. पश्चिम में जिस समय गोदार और ब्रैसों इस व्याकरण को तोड़ रहे थे, वहां भारत में इसे स्थापित कर रहे थे सत्यजित राय. 'पथेर पंचाली' उनकी पहली फिल्म थी. 1955 में जब राय ने यह फिल्म बनायी थी, तब भारत एक सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था. लगभग इसी प्रकार सामाजिक परिवर्तन का दौर 1910 के आसपास भी था, जब भारत में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई थी. दोनों बार गांवों के लोग शहर की तरफ आने लगे थे. इसीलिए जब 1955 में राय ने 1910 की पृष्ठभूमि की कहानी उठायी तो वह पूरी तरह से सामयिक थी, पर राय ने जिस तरह परिवार में एक व्यक्ति और गांव में एक परिवार के अंतर्संबंधों का चित्र इस सामाजिक परिवर्तन के दौर में खींचा, वह अपने आप में अद्वितीय है. इस कहानी का सच जहां बंगाल के उस क्षेत्र विशेष का सच है, वहीं वह पूरे भारत का, पूरी दुनिया का और सार्वकालिक सच भी बन जाता है.

वाइल्ड स्ट्राबेरीज

इंगमार बर्गमैन की फिल्मों की खासियत यह है कि वे कैमरे से व्यक्ति के बाहर का ही नहीं, भीतर का भी साफ-साफ चित्र खींचते हैं. यथार्थ और फंतासी का एक अनोखा मिश्रण वे तैयार करते हैं कि दर्शक मंत्रमुग्ध होकर बैठा रह जाता है. फ्रेम की पवित्रता पर उन्हें विश्वास है. उनके फ्रेम में ऐसा कुछ नहीं आ सकता, जो अचानक या अनजाने में आ गया हो. बगीचे के किसी शाट में यदि कोई चिड़िया उड़ती हुई आपको दिखाई देती है तो सच मानिए, बर्गमैन की स्क्रिप्ट में वह चिड़िया उसी तरह उड़ायी गयी होगी वरना वह फ्रेम में नहीं आ सकती. यों उनकी किसी एक फिल्म का नाम लेकर नहीं कह सकते कि वह बाकी सबसे अच्छी है, पर जब एक का चुनाव करने की बाध्यता आ ही जाये तो मैं 'वाइल्ड स्ट्राबेरीज' का ही चुनाव करूंगा. यह बूढ़े इसाक बोर्ग के जीवन के एक दिन का चित्रण है. जब वह लूद विश्वविद्यालय से अपनी जुबली डाक्टरेट लेने के लिए कार से जा रहा है. यह यात्रा जितनी सड़क पर है, उतनी बोर्ग के भीतर भी, जहां उसका अतीत एक भयावह सपने की तरह उसे कोंचता रहता है. यह फिल्म उन्होंने 1957 में बनायी थी.

हिरोशिमा मोन अमार

फ्रांसीसी न्यू वेव सिनेमा ने गोदार, शबरोल, त्रुफो जैसे महान फिलमकार दुनिया को दिये हैं, पर जब दुनिया की दस कालजयी फिल्मों को चुनने की बात आती है तो मैं 'लेस कजिन्स' (शबरोल), 'ज्यूल्स एत जिम', '400 ब्लोज' (त्रुफो), 'वीकएंड', 'ब्रेथलेस' (गोदार) आदि की बजाय एलन रेने की फिल्म 'हिरोशिमा मोन अमार' (1959) का चुनाव करता हूं. रेने हालांकि उपर्युक्त तीनों से बड़े फिल्मकार नहीं हैं, पर 'हिरोशिमा मोन अमार' निश्चित रूप से इस आंदोलन की एक श्रेष्ठ फिल्म है. 1958 में एक फिल्म की शूटिंग के लिए एक फ्रांसीसी अभिनेत्री हिरोशिमा जाती है और वहां उसकी मुलाकात एक जापानी आर्किटेक्ट से होती है. लड़की युद्ध के दिनों में एक जर्मन सिपाही से प्रेम करती थी, जिसे गोली मार दी गयी थी. यह एक त्रासदी है उस लड़की की त्रासदी. उसे रेने जोड़ता है एक युग की त्रासदी से—हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरने की घटना से. ये दोनों व्यक्ति प्रतीक बन जाते हैं दो नगरों 'नेविए' (जहां लड़की रहती थी और उसके प्रेमी को गोली मारी गयी थी) तथा हिरोशिमा के फिल्मकार ने जानबूझ कर इन पात्रों को कोई नाम नहीं दिये ताकि दर्शक इन व्यक्तित्वों से उलझने के बजाय उन त्रासदियों पर केंद्रित हो सकें. □

आभार राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार, पुणे तथा दिल्ली फिल्म सोसायटी, जिनके सौजन्य से ये तथा अन्य कई फिल्में देखने का अवसर मिला —सु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्लैमर की अंधी गली से बाहर टंगे कुछ नाम

▣ सुमन सरीन

पिछले लगभग डेढ़ दशक से भारतीय सिनेमा ने जो करवट ली है और नारेबाजियों-लफ्फाजियों से परे, ग्लैमर और कोरी व्यावसायिकता से दूर अपने सीमित साधनों और भरपूर ईमानदारी से जो नया ट्रेंड देना शुरू किया है, वह धीरे-धीरे नया दर्शक वर्ग तैयार करता गया है और यह दर्शक वर्ग बढ़ता जा रहा है, मान्यता देता जा रहा है इस नयी लहर को. दरअसल चेंज न सिर्फ सिनेमा ट्रेंड के संदर्भ में हुआ है, यह चेंज अभिव्यक्ति और ट्रीटमेंट के स्तर पर भी हुआ है. हां, जिस तरह कथ्य और दृष्टि में भूचाल आया है, जिस तरह नित नये, सक्षम और बेहद सशक्त निर्देशकों ने सही फिल्म की बुनियाद मजबूत की है, उसी तरह पिछले दस-बारह वर्षों से निरंतर फिल्म से जुड़ रहे ऐसे प्रतिबद्ध कलाकार भी आते जा रहे हैं, जो ग्लैमर की अंधी गली में, खुशबू और रोशनी की खोखली चकाचौंध में नहीं, वरन एहसास की, त्रासदी की ठोस जमीन पर चरित्र गढ़ते रहे हैं. किसी न किसी रूप में हमारा, आपका, हम सबका प्रतिनिधित्व करते रहे हैं. ये कलाकार हैं...

ओम पुरी

गोविंद निहलानी ने 'अर्द्धसत्य' के संदर्भ में हुई बातचीत के क्रम में एक बार कहा था, "ओमपुरी बेहद इमोशनल है और बेहद इनवाल्व हो जाने वाला कलाकार भी." 'अर्द्धसत्य' का वह दृश्य--पूछताछ के लिए लॉकअप में रखा गया लड़का इंस्पेक्टर वेलणकर के हाथों बुरी तरह मार खा-खाकर मर चुका है. स्मिता से बाद में मिलकर ओम उसे अपने नपुंसक विद्रोह की बात करता हुआ तरल हो जाता है और सेट पर ही फूट-फूट कर रो उठता है. उसका रुदन फिर तेज सिसकियों में फूट पड़ता है. लोग, अवाक्, ओम आत्मलीन! यह संवेदना, यह सादगी भरी सहजता, चरित्र में समाहित हो जाने की यह विलक्षण क्षमता ही ओम की सबसे बड़ी विशेषता है.

नसीरुद्दीन शाह

कहते हैं, व्यावसायिक सिनेमा के स्टार रहे हैं अमिताभ बच्चन और कला फिल्मों के स्टार बन गये हैं नसीरुद्दीन शाह. लगता तो नहीं कि यह सच है, क्योंकि नसीर का उबाल उनकी विभिन्न फिल्मों में ही लावा बनकर फूट पड़ा है तो कहीं उस उबाल पर ठंडे पानी का छींटा पड़ गया है. कन्नड़, गुजराती और बंगला फिल्मों में भी नसीर ने अपनी अहमियत सिद्ध की है. मूल कन्नड़ फिल्म 'गोधूलि' की सराहना उसके हिंदी संस्करण से ज्यादा हुई और नसीर इसे स्वीकार भी करते हैं. 'निशांत' में श्याम बेनेगल ने नसीर को जो फुटेज दिया, वह उनके फिल्मी-जीवन की सही और सार्थक शुरुआत रही.

स्मिता पाटिल

प्रासंगिक फिल्मों का संदर्भ उठायें तो स्मिता पाटिल का नाम फट से मुंह पर आ जाता है. कला फिल्मों की स्टार स्मिता ने पिछले तीन वर्षों में अपनी भरपूर और सही-सार्थक पहचान बनायी है. वैसे सिलसिला तो श्याम बेनेगल की फिल्म 'निशांत' से ही शुरू हो गया था. हिंदी क्षेत्र में जब्बार पटेल की फिल्म 'जैत रे जैत' (मराठी), मुजफ्फरअली की 'गमन' और श्याम बेनेगल की 'भूमिका' में उसने अपनी संभावनाओं से दर्शकों का परिचय करा दिया था. 'जैत रे जैत' में उसे स्थानीय फिल्म का सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला. फिर आयी 'कोंडुरा', 'चक्र,' 'अकालेर संधाने' तथा 'भवनी भवाई' जिनसे स्मिता को राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय ख्याति भी मिली.

आते हुए लोग

अच्छी फिल्मों की बहस बहुत पुरानी है और कला फिल्म, न्यूवेव फिल्म, समानांतर फिल्म और न जाने किन-किन लेबलों से होती हुई अब अंततः सार्थक फिल्म के अर्थों तक पहुंची है. सवाल अब सिर्फ यह है कि इस आंदोलन में ताकत कितनी है, इसका आकार कितना है और इसकी पहुंच कितनी और कहां है. इससे फर्क पड़ता है. वह यों कि जब तक अच्छे सिनेमा का आंदोलन इतना विशालकाय नहीं हो जाता कि दर्शकों की एक बड़ी जमात को अपने आगोश में ले सके, अपनी आवाज से फिल्म उद्योग का तंत्र कंपकंपा सके, तब तक खुद उसकी अपनी सांसों को खतरा बना रहेगा. अच्छे सिनेमा की वास्तविक जगह हाशिए पर नहीं, मुख्य-मंच पर है. और यह एक शुभ-लक्षण है कि आते हुए लोग (प्रकाश झा, गौतम घोष, केतन मेहता, अरुणा देसाई, सिम्मी गरेवाल) यह लड़ाई लड़ने-दर्शक खींचने की लड़ाई-लड़ने पर आमादा दिखते हैं.--युगांक

शबाना आजमी

आर्ट फिल्मों से जुड़ा, बाक्स ऑफिस पर भी शायद सबसे ज्यादा बिकने वाला नाम. ऐसा नाम, जिसके बिना सार्थक सिनेमा जैसा विषय उठाया ही नहीं जा सकता. महेश भट्ट ने एक बार शबाना के बारे में कहा था—"वे आत्मकेंद्रित हैं, किसी अच्छाई के लिए आत्म-केंद्रित और समझदार भी. अगर वे ऐसी न होतीं तो आज यहां तक नहीं पहुंचतीं. वे बहुत स्पानटेनियस हैं."

इस स्पानटेनियस होने का सबसे बड़ा लाभ जो शबाना को मिला है, वह है उनकी आज की एकछत्र साम्राज्य की स्थिति. 'अंकुर' से हुई शुरुआत 'खंडहर', 'लोरी' और 'पार' तक आ पहुंची है, कितने मोड़-पड़ावों को पीछे छोड़कर

दीप्ति नवल

दीप्ति नवल—नाम आते ही एक ऐसी शोख और गंभीर, चुलबुली और परिपक्व लड़की का चेहरा ध्यान में आता है, जो एक ओर तो 'चश्मे-बद्दूर,' 'रंग-बिरंगी,' 'किसी से न कहना' जैसी मजाकिया और स्वस्थ हास्य से भरी फिल्में करती रही, दूसरी ओर 'श्रीमान-श्रीमती,' और 'क्रिकेटर' जैसी व्यावसायिक फिल्में और तीसरी ओर 'एक बार फिर', 'साथ-साथ', 'कथा', 'चिरुथा', 'हम पांच', 'अंगूर,' हिप-हिप हुर्रे', 'दामुल और 'कमला' जैसी गंभीर फिल्में भी. उसने हर बार अपनी दक्षता सिद्ध की है, दर्शकों की प्रशंसा पाकर.

कुलभूषण खरबंदा

सिनेमा की यह नयी लहर, सार्थक और प्रासंगिक सिनेमा के इस नये ट्रेंड ने नये निर्देशक, नये गीतकार-संगीतकार, तकनीशियन दिये. और दिये नये प्रतिबद्ध विचारों वाले कलाकार भी. बहुत जल्दी ही इन चेहरों के बीच एक और चेहरे ने अपनी पहचान बना ली है. और वह चेहरा जिस सख्स का है, उसे कहते हैं—कुलभूषण खरबंदा.

पहले छोटी भूमिकाओं में फिर खलनायक की बड़ी भूमिका में, फिर चरित्र भूमिकाओं में और अब केंद्रीय भूमिकाओं में आने वाले कुलभूषण ने अपना सुरक्षित स्थान बना लिया है, जहां उनके पैरों तले सही जमीन है और असुरक्षा भाव खत्म हो गया है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशनि संकेत

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय

झूठ, भूख से भी भला कोई मरा है! . . . जिस देश में खाने-पीने की इतनी चीजें हों, वहां लोग निराहार कैसे मर सकते हैं?—पूरे भारत के संदर्भ में भूख, जिंदगी और मौत की विडंबना के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती एक कहानी, जिस पर सन् १९७३ में सत्यजित राय के संगीत और निर्देशन में इसी शीर्षक से एक बहुचर्चित फिल्म भी बनी. प्रमुख भूमिकाओं में थे—सौमित्र चैटर्जी, संध्या राय, बबिता एवं नानी गांगुली आदि.

नदी के पास बसा नूतन गांव ज्यादा पुराना नहीं है. बशीरहाट के किसानों की जमीन जब नमक लगने से नष्ट हुई तो आज से बारह-तेरह वर्ष पहले वहां से सारे कापाली बोरिया-बिस्तर बांधकर नदी किनारेवाली इस गैर आबादीवाली भूमि को आबाद करने आ गये. इसीलिए नाम पड़ गया—नूतन गांव.

नदी से नहाकर लौटी हुई अनंग ने घर पहुंचते ही देखा—वैद्यनाथ कल्लू एक बर्तन में प्रायः अढाई सेर खांटी का तेल लाया है. तेल देकर वह बोला, "मां ठाकुरानी, और तेल की जरूरत तो नहीं पड़ेगी. . .?"

इसी समय गंगाचरण चक्रवर्ती घर में घुसते हुए बोला, "कहां हो भई! यह माछ पकड़ना. दीनू ने दिया है. कह रहा था, सात-आठ मछलियां पकड़ी हैं, एक माछ ब्राह्मण की सेवा में हमें दिया है."

बाहर से किसी ने पुकारा, "चक्कति महाशय घर में हैं क्या?"

गंगाचरण बाहर आया तो आगंतुक ने अपना दायां हाथ फैलाकर कहा, "जरा हाथ तो देखिए?" गंगाचरण धीमे स्वर में बोला, "भैया, यह हल-कुदाल चलाना नहीं है. यह सब डाक्टर-वैद्य का काम है."

औषधि लेकर रामलाल जाने लगा तो गंगाचरण ने कहा, "अरे भाई रामचरण, अच्छी याद आयी. इस बार नया सरसों फूला होगा खेतों में. जरा दो मुट्ठी भिजवा देना. भाई, बाजार का तेल मैं खाता नहीं, कल्लू के यहां पिसवा लेता हूं." रामलाल को विदा करके गंगाचरण ने सगर्व पत्नी से कहा, "देखा कितना मानते हैं लोग."

थोड़ी देर बाद चार-पांच छोटे-छोटे लड़के स्लेट-किताबें और रस्सी में दवात झुलाते पढ़ने के लिए आ गये. गंगाचरण मन लगाकर बच्चों को पढ़ाता था. नींद से उठकर वह बच्चों के साथ व्यस्त हो गया किसी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ा याद कराया, किसी को अंग्रेजी की पहली पोथी पढ़ाई. छुट्टी के बाद बाहर जा रहे थे कि उसने अनंग से कहा, "अब जरा विश्वास महाशय के यहां जाऊं. सारी बातें पक्की करनी हैं."

विश्वास महाशय ने यथेष्ट आग्रह दिखाया, गंगाचरण को इस गांव में बसाने के लिए बोले, "आप लोग हमारे माथे के मणि हैं. मैं आपके लिए सारी सुविधाएं जुटाऊंगा. सब हो जायेगा. अभी तो दसेक सेर धान और तीसेक सेर चावल से आपका काम हो जायेगा. बाकी रहा दाल-सब्जी, नून-तेल वह सब हो जायेगा पुरोहितगिरि से भी. . ."

गंगाचरण की पाठशाला अच्छी जम गयी. आज सात-आठ नये छात्र रस्सी से झूलती हुई दवात लेकर उपस्थित हो गये. गंगाचरण उनके साथ दोपहर तक व्यस्त रहा. सभी छात्र स्थूल बुद्धि के थे. उनके बाप-दादा ने कभी नाम लिखना भी नहीं सीखा था. खेती-किसानी और केला-बैंगन उपजाकर निर्वाह करते आ रहे थे.

दूसरे दिन विश्वास महाशय को अपने घर आते देखकर गंगाचरण विस्मित हुआ. लड़के को बुलाकर बोला, "पटला, जल्दी से डेक्स लेकर आ." डेक्स का मतलब किरासिन का खाली टिन था.

"हां, सवेरे-सवेरे कैसे?" गंगाचरण ने पूछा.

"एक बात थी. मेरे घर पर आपने संस्कृत बोली थी जिसे घर की औरतों ने सुना था. हमारे यहां महीने भर पहले गले में रस्सी फंस जाने से एक गाय की मृत्यु हो गयी. सबका मन इससे खराब है. मेरे नाती का बुखार भी तब से छूटता नहीं है. कल रात घरवाली ने कहा, उनके पास जाओ, वे पंडित आदमी हैं, कोई उपाय करवायेंगे."

गंगाचरण कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "भारी विपदा है. इस अमावस्या को किसी दिन स्वस्त्यापन कराना पड़ेगा. दस-पंद्रह रुपये खर्च हो जायेंगे." उद्विग्न होकर विश्वास महाशय बोले, "क्या-क्या लगेगा, जरा बता दीजिए ठाकुर महाशय." गंगाचरण ने अंदर जाकर अनंग से पूछा, "क्या लोगी बोलो, बढ़िया साड़ी या अठपहरी?" और बाहर आकर बोला, "हां भाई, विश्वास महाशय सुन लीजिए, एक बढ़िया लाल किनारी की साड़ी, आध सेर घी, तीन पाव ही समझ लीजिए. चीनी पांच पाव, पके केलों का गुच्छा, पांच पाव संदेश, दो गमछे, एक पीतल की थाली, एक कटोरी, एक पाव धूनी, एक कटोरी शहद, एक आसन. . ."

विश्वास महाशय का नाती शांति स्वस्त्यायन के बाद एकदम भला-चंगा होकर उठ गया. इससे गंगाचरण का प्रभाव गांव के लोगों में और भी बढ़ गया. एक दिन कामदेवपुर से एक आदमी आकर अनुरोध करने लगा, "हमारे गांव में चारों तरफ हैजा का दौर-दौरा है. आप चलकर गांव को बांध दीजिए." गंगाचरण गांव को बांधनेवाली बात न समझ सका, फिर भी अंदाज लगा लिया कि यह आदमी क्या कहना चाहता है. उसने स्थिर स्वर में कहा, "'बड़ा सख्त काम है, बड़ा सख्त. . ."

वह आदमी आकुलता बोला, "तो क्या आपकी दया न होगी?"

गंगाचरण कुछ क्षणों तक हिसाब करने की भंगिमा बनाकर बोला, "फर्द कर देता हूं, समझकर जाओ." उस आदमी ने निश्वास फेंकी जैसे वह उबार लिया गया हो. अंदर जाकर गंगाचरण ने पत्नी के साथ मिलकर जल्दी ही घर की आवश्यक चीजों की सूची तैयार कर ली.

वह आदमी सूची लेकर चला गया.

कामदेवपुर गांव जिस दिन गंगाचरण गया, उसी दिन वहां एक आदमी ने कहा, "पंडित महाशय, चावल का भाव चढ़ने जा रहा है, कुछ चावल इस समय खरीद लेना ठीक रहेगा." बात किसी के गले नहीं उतरी. गांव के सभी लोग गांव बांधने की सहायता में व्यस्त थे. गंगाचरण ने तीन मिट्टी की कलसियां सिंदूर से चित्रित की. तालपत्तों का तीर बनाकर उन्हें परस्पर जनेऊ से बांधकर चार कोनों में रखा. काठ की पुतली बनाकर उस पर मिट्टी छिड़की, तेल सिंदूर से लेपकर पुतली को गांव के मुख्य रास्ते में जमीन पर गाड़ा. क्या यह कम हंगामा था. सुबह से अब तक फरमाइशें पूरी करते-करते लोग परेशान हो उठे थे. . . शांति जल छिड़कते-छिड़कते तीन बज गये. एक ग्वाले के घर गंगाचरण के नाश्ते की व्यवस्था की गयी. गंगाचरण बोला, "डाब के जल के अलावा मैं कोई जल ग्रहण नहीं करूंगा. तुम लोग भी नदी के पानी का व्यवहार एकदम बंद कर दो. एक माह तक नदी का पानी कोई नहीं पियेगा. बासी या सड़ी-गली चीजें मत खाना. खाने पर जैसे ही मक्खी बैठे, वैसे ही फेंक देना."

वैशाख गुजरते न गुजरते बाजार में प्रत्येक वस्तु का भाव बढ़ता गया. चावल छह से दस रुपये मन हो गया था. किरासिन भी कहीं नहीं था. इसी विकट स्थिति में एक दिन गंगाचरण थैला लेकर चावल खरीदने गये. वहां चावलों का भाव दस से बारह रुपये हुआ था. खरीदूं, न खरीदूं, इसी विचार में जा रहा था कि पीछे से दो आदमियों ने पकड़कर थैला खींच लिया. वे उसे चोर समझ बांधने लगे. नूतन गांव के तीन आदमियों ने उसे चोरी के अभियोग से मुक्त कराया. उसके जीवन का यह पहला विकट अनुभव था. उस रात खाली थैला लेकर लौटने पर अनंग ने पड़ोसियों से मांगकर खिलाया.

पंद्रह दिन गुजर गये. गांव-गांव में लोग संत्रस्त हो उठे. चावल मिलना कठिन हो गया. राधिकानगर हाट में जहां पहले बीस-बीस गांवों के किसानों की औरतें चावल बेचने आती थीं वहां आजकल सात-आठ औरतें नजर आती थीं. बरगद के नीचेवाले मोड़ पर और सामने तालाब के किनारे खरीदारों की भीड़ खड़ी रहती और वहीं जो थोड़ा-बहुत चावल होता खरीदकर ले जाती. दो हाटों से गंगाचरण खरीद नहीं सका था इसलिए आज सतर्क होकर ताल के किनारे आकर खड़ा था एक पेड़ के नीचे. काफी तेज धूप थी.

तभी आकाईपुर से तीन औरतें चावल के बरते लेकर आयीं. सभी आगे बढ़ने लगे. एक ने पूछा, "कैसे दिया एक पाली (ढाई सेर)?"

"पांच चवन्नी?" सुनकर नवीन पाड़ुई का चेहरा मुर्झा गया. वह अपने साथ एक रुपया लाया था. एक रुपये के चावल कौन देगा? वह निरुपाय स्थिति में था.

एक दिन विश्वास महाशय के पास गंगाचरण चावल लेने गया. विश्वास महाशय ने उससे कहा, "आप ब्राह्मण आदमी हैं आपको कर्ज के रूप में चावल देना उचित नहीं. चार-पांच सेर ले जाइए. किंतु यह आखिरी बार है. इसके बाद गोले में धान नहीं बचेगा."

घर जाते हुए रास्ते में हीरू कपाली ने उसे चुपके से कहा, "विश्वास महाशय ने अपना सारा धान छुपा रखा है, पंडित महाशय अबकी बार जो नजर आ रहा है, उससे तो लग रहा है कि लोग भूखों मरेंगे." गंगाचरण को उसकी बात पर विश्वास नहीं आया. भूख से भला कोई मरा है? कभी नहीं देखा गया है कि कोई निराहार मर गया हो! जिस देश में खाने-पीने की इतनी चीजें हों, वहां लोग निराहार मरेंगे!

कुछ दिन बाद पाठशाला बंद करके गंगाचरण नरहरिपुर हाट में चावल की खोज में गया. इतने दिनों से अनंग धान कूटकर गुजारा कर रही थी. इसलिए वह हाट बाजार के चावल की दर नहीं जानता था. उसे चारों ओर अंधकार नजर आया. इतना बड़ा नरहरिपुर का हाट—दाल, चावल नदारद. परसों तक इतना दाम न था, दो दिनों में एक-डेढ़ रुपया सेर. वह भी मोटा, बासी और अखाद्य! गंगाचरण का सारा शरीर जैसे कांप गया. कैसे वह चल पायेगा? उसकी आंखों के आगे अनंग, हाबू, पटल . . आ गये. वह अधिक सोच ही नहीं सका.

उस रात विश्वास महाशय खाना खाने के बाद तालाब के दूसरी तरफ जा रहे थे. दो आदमियों को पेड़ के नीचे देखकर पूछा, "वहां कौन है?"

"तेरा बाप!" . . . इसके साथ ही उन दोनों ने विश्वास महाशय के सिर पर जोर से लाठी का प्रहार किया. विश्वास महाशय सिर की पीड़ा और रक्तस्राव से बेहोश हो गये. जब होश आया तो लड़की की तरफ देखकर चुप रहे. सौदामिनी ने पूछा, "अब कैसी तबीयत है बाबा?"

सतर्कता से दांये-बांये देखकर महाशय ने पूछा, "सब ले गये? ऊपर जो माल रखा था? . . . चौकी के नीचे जो बोरी . . .?"

"कुछ नहीं गया. सब ठीक है. . . कौन लेगा?"

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी गंगाचरण कमरे में आया और उन दोनों की बात बंद हो गयी. कुशल-मंगल पूछने के बाद गंगाचरण ने विज्ञ-जन की तरह चेहरा बनाकर विश्वास महोदय की नाड़ी परीक्षा करके कहा ... "हूं!"

सौदामिनी उद्विग्न स्वर में बोली, "क्या देखा, पंडित महाशय?"

"ठीक है, फिर भी कफ में तेज आया है. उम्र ज्यादा है न. कफ के आधिक्य से ..." विश्वास महाशय स्वयं इस बार विनतीपूर्वक बोले, "मुझे ठीक कर दीजिए पंडित महाशय. आप चाहें तो दस सेर चावल ले सकते हैं.

दो दिन बाद गंगाचरण ने सुना, विश्वास महाशय गांव छोड़कर जा रहे हैं. बाहर जमीन पर आठ-दस बैलगाड़ियों के चक्कों के निशान थे. गंगाचरण को समझते देर न लगी कि विश्वास महाशय ने रातों-रात सारा धान दूसरी जगह भेज दिया है. अनंग ने सुना तो बोली, "इस विपदा में उनका ही भरोसा था. कहीं चावल न मिलें वहां मिल ही जाते थे. अब गांव की दुर्दशा होगी."

एक दिन भातछाला से मति आकर हाजिर हुई. अनंग उसे देखकर बोली, "कैसी हो मति, इस तरह सूखकर कांटा क्यों हो गयी हो?"

"ठीक हूं दीदी. बिना खाये-पिये यह हालत हो गयी. इतने बड़े पाड़ा में कोई न रहा. सब भाग गये."

"कहां?"

"जिधर दो आंखें ले जाये. दीदी ठाकुरानी, मैंने सात दिनों से भात नहीं खाया. सिर्फ दूली माछ पकड़ती और साग-सब्जी से गुजारा करती. वह भी अब मिलता नहीं. भातछाला के पमबिल का पानी कीचड़ से लथपथ हो गया है. भोची पाड़ा, बागड़ी पाड़ा के लड़के-लड़कियां, जिसे देखो वही कमर तक पानी में उतरकर जीव-जंतुओं को पकड़ने पर उतारू हैं. धर-पकड़कर सब खत्म कर दिया.

"क्या कह रही हो मति?" मति की हालत देखकर अनंग बहू के मन में भय समा गया.

ऐसे ही असमय में एक दिन काफी देर गये कापालियों की छोटी बहू अनंग को नोनातला तालाब पर सुसनि का साग लेने साथ ले गयी. भीगी मिट्टी पर नया सुसनि साग खूब उगा देखकर अनंग के चेहरे पर मुस्कराहट आ गयी. बोली, "यह तो बहुत है." कापाली हंसकर बोली, "इसी को कहते है कंगाल को साग का खेत दिखाना. अभी तक किसी को पता नहीं चला है, तभी माल बचा है, नहीं तो अब का नामोनिशान न होता."

अनंग बहुत डरपोक औरत थी. झाड़-झंखाड़ की तरफ खर-खर की आवाज देखकर वह चौंक पड़ी, "यहां बाघ तो नहीं है?"

"बाघ नहीं, तेरा सिर बामन दीदी! देखती नहीं हो ..."

"तुमने कैसे इस जगह की खोज की? यहां तू आयी कैसे ? बता री, कब आयी? इस सूने में भला कोई आदमी आता है?"

"बस आ गयी.

"कैसे आयी?"

कापाली बहू का चेहरा सलज्ज हो उठा. बोली, "ऐसे ही."

"झूठी बात, ऐसे नहीं. मैं कहूं छुटकी, यह बहुत खराब बात है. पता है? ... स्वामी को ठगकर यह सब करना. . . छि ...!"

"हमें वह चावल देता है दीदी. उस दिन उपवास करना मेरे बस में नहीं था. मैं बचपन से ही भूख नहीं सह पाती. उस दिन भूख से बेहाल थी कि वह आकर बोला ..." लज्जा से कापाली का सिर झुक गया.

"क्या कहा उसने?"

"बोला, एक सेर दूंगा."

"और तू चली गयी?" अनंग उसके पास गयी. हाथ पकड़कर गंभीर स्वर में बोली, "छुटकी. . . तू मेरे पास क्यों नहीं आयी?"

"तुम खुद उस दिन मेरे यहां से साग ले गयी थीं." वह उसका दायां हाथ थामे खड़ी रही.

चावल की स्थिति शोचनीय थी. एक दिन कापाली साधू ने बताया कि कुलखालि में एक ग्वाले के पास थोड़े चावल बिक्री के लिए आये हैं. गंगाचरण को विश्वास नहीं हुआ. वह उसके साथ ही वहां चला गया. चावल नहीं मिले. कुछ दिन बाद अनंग बहू मति और कापाली साधू की बहू के साथ जंगल से आलू उखाड़ने गयी. अनंग पहली बार जंगल जा रही थी. कांटों ने खूब दुखी किया. आलू भी उसके कोमल हाथ उखाड़ न सके. कापाली बहू ने उसकी मदद की.

अचानक एक कांड हो गया. घनी झाड़ियों में किसी दाढ़ीवाले जवान का चेहरा नजर आया. संभवतः मैदान के रास्ते से ही इनके पीछे आया था. उसकी नजर सिर्फ अनंग बहू पर थी. वे तीनों भयभीत हो गयीं. वह बदमाश आगे बढ़ता गया. मति चीखी. कापाली बहू भी पीछे हटी. पास आकर वह अजीब नजरों से देख रहा था. मुंह से कुछ बोला नहीं. अनंग के सारे कपड़े कांटों में उलझ गये. वह उसी की तरफ आ रहा था. पास आकर उसने अनंग को पकड़ना चाहा. वह चीखी, "खबरदार!" मति ने प्राणपण शक्ति से उसे एक तरफ धक्का दिया और संबल लेकर रणचंडी की मूर्ति जैसी उस पर खड़ी रही. वह पीछे से ही भाग निकला.

तीन दिन निकल गये. आलू भी खतम हो गये. चावल तो दूर खाने की कोई भी चीज मिलनी दूभर हो गयी. चना सोलह रुपये मन, वह भी मिलना दुष्कर. कापाली बहू बिना खाये रोगी हुई थी. उसके चेहरे पर यौवन समाप्त होता जा रहा था. संध्या को वह अनंग के पास आकर बोली, "आज जाऊंगी!" विस्मय से अनंग ने पूछा, "कहां ईंटों के भट्टे पर ... वहां क्यों जाओगी?" इतने में कापाली बहू आंखें नीचे किये द्रुतगति से निकल गयी.

ईंटों के पुराने भट्टे के एक तरफ बड़े-से शिमूल गाछ के नीचे अंधकार में कोई खड़ा था. कापाली बहू अनाड़ियों की तरह गिरती-पड़ती वहां पहुंची. यदुजला उसे देखकर बोला, "ऐ इधर !"

कापाली बहू जलकर बोली, "इधर क्या? देख लिया है. भूतों का रूप देखकर डर जाऊंगी." वह रूखे स्वर में बोली, "चावल कहां है?"

"है, भई है."

"नहीं पहले दिखाओ, कितना है?"

"एक सेर, वह भी बहुत मुश्किल से मिला है."

सारिका

१६ मार्च, १९८५

उर्दू के महान साहित्यकार
राजेंद्र सिंह बेदी की स्मृति में-
राजेंद्र सिंह बेदी विशेषांक
(अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लें)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे घंटे के बाद कापाली बहू ईंटों के भट्ठे से बाहर आ गयी. आंचल में था सेर भर चावल.

दूसरे दिन गंगाचरण अनंग का शांखा का जोड़ा सुनार के पास बेच आया. शंकरपुर के निवारण घोष के यहां चावल मिलने की किसी ने खबर दी थी. सुबह-सवेरे उठकर वहां पहुंचा तो देखा कि दस लोग पहले ही झोला लिये वहां बैठे हैं. घर का मालिक अभी उठा नहीं था. निवारण के दरवाजा खोलते ही सबने उसे घेर लिया. वह बोला, "मेरे यहां चावल नहीं है." गंगाचरण वहीं बैठा रहा. बिना चावल लिये कैसे लौट सकता है, घर पर दो दिनों से किसी ने भात नहीं खाया था.

काफी देर बाद निवारण घोष दरवाजा खोलकर फिर बाहर आया. गंगाचरण को बैठा देखकर बोला, "बाबा ठाकुर, क्या सोचकर बैठे हो? चावल के लिए? वह नहीं दे पाऊंगा."

गंगाचरण उठने लगा तो निवारण घोष हाथ जोड़कर बोला, "ठाकुर महाशय ब्राह्मण देवता हैं. मैं चावल देता हूं. आप हमारे यहां रसोई बनाकर खा लीजिए. रसेदार माछ और भात. एक भी पैसा नहीं देना पड़ेगा." बहुत आग्रह के बाद गंगाचरण बोला, "अच्छा, अगर यहां खाऊं तो मुझे दो सेर चावल दोगे?"

एक सेर देने पर निवारण राजी हो गया.

गंगाचरण घर पर आ गया. रसेदार माछ और भात. इस अकाल में आज भी यहां भात खाने को मिल रहा है. बाद में खाने को मिलेगा कि नहीं, कौन जाने! निवारण की विधवा बड़ी लड़की ने भोजन पकाने की सारी व्यवस्था की. गुड़ और देसी घी लायी. गंगाचरण का खाना स्वादिष्ट हो, इस ओर उसने पूरा ध्यान दिया.

जब गंगाचरण खाने बैठा तो उसके गले से कौर नहीं उतरा— आश्चर्य की बात थी, हाबू के लिए दुख नहीं था, पटल के लिए भी नहीं. दुख था तो अनंग बहू के लिए. उसने दो दिनों से खाया नहीं, शायद इससे भी ज्यादा दिनों से. मुंह से हालांकि उसने कुछ नहीं कहा था. वह यहां मलाईदार दूध के साथ खाना खा रहा है और उधर शायद अनंग साग-पत्तों को लेकर बैठी होगी. मणि पान लेने गयी. पत्ते पर थोड़ा-सा भात बच गया था. गंगाचरण की प्रबल इच्छा हुई कि इसे घर ले जाये. लेकिन कैसे? गमछे के कोने में बांधकर. छी . . . सबको पता चलेगा. ब्राह्मण होकर जूठा भात गमछे के कोने में बांधेगा? वह सोचने लगा, क्या किया जाये? क्या वह कह सकेगा; उसके घर में कुत्ता है, उसके लिए जूठन ले जा रहा हूं. इससे वे क्या सोचेंगे? बड़ी शर्म की बात है. भात ज्यादा नहीं है, यही चार-पांच कौर होंगे. अनंग बहू के लिए. बड़े-बड़े चार-पांच कौर. . .वह ले ही जायेगा. शर्म कैसी? इसी समय मणि ने आकर पान दिया तो उसकी ओर देखते ही साहस जवाब दे गया.

घर में आते ही गंगाचरण ने अनंग बहू को चुपचाप लेटे हुए पाया. उसने पूछा, "लेटी क्यों हो. . .तबीयत ठीक है न?"

यंत्रणा से कातर हो अनंग बहू बोली, कापालियों की बड़ी बहू को जल्दी बुलाओ. तबीयत खराब है." वह यंत्रणा से चीखने लगी. गंगाचरण से अनंग बहू की चीखें सही नहीं जा रही थीं. उसकी आंखों में पानी भर आया. तब तक आसपास की सारी औरतें आ गयीं.

ठीक उसी मौके पर एक मृदु गड़बड़ हुई. शिशु के कंठ की कांय-कांय रोने की आवाज तेजी से सुनायी दी. सतीश कापाली की लड़की बिंदी कमरे से तेजी से निकलकर बोली, "ओ दादा बाबू, भाभी को लड़का हुआ है. . . अब संदेश निकालिए." गंगाचरण की आंखों से अब की बार सचमुच झर-झर करके आंसू निकल आये.

अनंग प्रसूति के बाद चल-फिर नहीं सकती थी. लेटी ही रहती थी. खाना बनाते गंगाचरण और बाबू. पाठशाला भी हर दिन न चल पाती. ऐसे दुर्दिन में आकस्मिक विपत्त पात जैसे दीनू भट्टाचार्य आ गये. गंगाचरण उसे देखकर चौक पड़ा. मन में उसे घर न लाने के बहाने सोचने लगा. क्या बहाना करें? कह दे कि अनंग बाप के घर गयी है या बीमार है? उहूं . . . इससे तो यह आफत उसे देखने के लिए जा सकती है. लेकिन यह सब कहने की गंगाचरण की हिम्मत नहीं. जैसे-जैसे समय गुजरता गया दीनू भट्टाचार्य बीच में पाठशाला से आता और रास्ते पर आकर मेखहारी मनियापुर की दिशा में देखता हुआ जाने क्या सोचता. दो-तीन बार यही करते देखकर गंगाचरण ने कौतूहल के स्वर में पूछा, "क्या देख रहे हो?"

"इतनी देर कैसे हो रही है, यह देख रहा हूं."

"कैसी देर?"

"वो जो बताया मैंने. . .घर के सब लोग आ रहे हैं. मैंने बच्चों से कह दिया था कि मैं पहले ही चलकर पंडित महाशय की पाठशाला में बैठता हूं, तुम लोग पीछे आना!"

सर्वनाश! इसका अर्थ है, दीनू कुटुंब सहित इस दुर्दिन में आ धमका!

कुछ दिन निकल गये. दीनू भिक्षाटन करके कुछ ले आता. कापालियों की छोटी बहू दो दिन लापता रही. मति भी असहाय अवस्था में गांव में पहुंची. ज्वर से उसका अंग-अंग फूला था. उसे पहचानना कठिन था. दोपहर गंगाचरण ने घर आते हुए मति को देखा और पुकारा. मति अत्यंत कष्ट से धीरे-धीरे बोली, "मैं, दादा ठाकुर, मति. . ." वह पड़ी रही. अनंग ने घर से हाबू के हाथ कंदमूल उबालकर भेजे. हाबू ने जाकर पुकारा, "मति दी, यह लो." क्षीण स्वर में मति बोली, "कौन?"

"मैं हाबू . . ."

मति कुछ नहीं बोली जैसे वह नींद में हो. हाबू वह खाने की चीज वहीं पास रखकर चला आया.

संध्या हो गयी. मेघ छाने लगे. शायद बारिश होगी. मति दी भीग जायेगी. हाबू ने अपनी मां से मति की सारी दशा कही. अनंग बोली, "मैना को साथ ले जाओ. दोनों उसे ले आओ और बाहरी दालान पर सुला दो." दोनों मिलकर गये. मति वैसी ही लेटी थी, एक तरफ करवट किये.

उसके सिरहाने कंदमूल और पास ही मिट्टी का कुल्हड़ पड़ा था. मैना ने पास जाकर पुकारा, "ओ मति . . ." कोई हरकत नहीं.

वह हाबू से काफी बड़ी थी. समझने-बूझने का ज्यादा अनुभव था. वह बोली, "चाचा घर पर हो तो उन्हें बुला लो."

गांव में रहना मुश्किल हो गया मति की मृत्यु के बाद. भूख से यह पहली मौत थी. इसके पहले कोई नहीं जानता था, विश्वास नहीं करता था कि अनाहार से मौत हो सकती है. लेकिन मति के मरने से सभी मान गये कि बिना खाये भी कोई मर सकता है.

दीनू भट्टाचार्य उस दिन दालान पर बैठा मन ही मन मृत्यु का दृश्य देख रहा था. गंगाचरण, दीनू भट्टाचार्य और कापालियों की छोटी बहू ने जाकर मति का अंतिम संस्कार किया.

दो दिन और निकल गये. सुना गया कि गांव छोड़कर कई लोग भाग रहे हैं. रात को कापाली पाड़ा के आधे लोग चले गये. कापालियों की छोटी बहू ने अनंग से आकर कहा कि वह भी जा रही है.

अनंग ने पूछा, "कहां जायेगी?"

"जहां सब जा रहे हैं . . . शहर. वहां सुनते हैं गौरमेंट खाने को देती है."

"किसके साथ जाओगी. तुम्हारा स्वामी जा रहा है?"

"वह तो घर पर है नहीं. कोई पांच-सात दिनों से बगन बेचने गया वापिस आया ही नहीं." अनंग ने उसे जाने से रोक लिया और कापाली बहू मान गयी. उसने अनंग के पास ही रहने का वचन दिया.

कुछ क्षणों में वह ईंटों के भट्ठे के पास गयी. यदुजला उसकी प्रतीक्षा कर रहा था. उसे देखकर बोला, "गाड़ी कब लाऊं . . . शाम के बाद?"

छोटी बहू बोली, "गाड़ी लाने की जरूरत नहीं." वह दौड़ती हुई भाग चली. यदुजला ने चीखकर पुकारा, "सुनो, एक बात है . . ."

कापाली बहू ने दूर जाकर एक बार पीछे मुड़कर देखा. जरा-सा बड़बड़ाई. इसके बाद एकदम से चल दी. □

संक्षिप्त रूपांतर : हिमा कौल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्थक सिनेमा से दर्शक विमुख क्यों?

सार्थक सिनेमा के अधिकांश फिल्मकारों ने आम आदमी की आसान-सी बात उठायी फिर क्या वजह है कि उनकी फिल्में आम आदमी ने स्वीकार नहीं कीं? क्या उनका प्रस्तुतीकरण जटिल था. . . . या कि सार्थक सिनेमा के नाम पर वे 'जटिल सिनेमा' का निर्माण करते रहे? यदि कल का अनपढ़ और गरीब' दर्शक सामाजिक समस्याओं को झेलती 'बंदिनी', 'सुजाता' या 'दो बीघा जमीन, देखता-समझता था, तो आज का दर्शक सार्थक सिनेमा से विमुख क्यों है? . . . . इन और ऐसे ही तमाम सवालों का जवाब दे रहे हैं सार्थक सिनेमा से जुड़े फिल्मकार कांतिलाल राठोड़, सईद मिर्जा और कुंदन शाह—

परिचर्चा आयोजक : प्रफुलशाह

● कुंदन शाह की फिल्म 'जाने भी दो यारों' का एक दृश्य.

निःसंदेह सिनेमा सर्वाधिक शक्तिशाली व लोकप्रिय कला-माध्यम है. ललित-कलाओं के संगम स्वरूप यह माध्यम सामाजिक-राजनीतिक चेतना का साधन बनने के साथ-साथ जनसामान्य को शिक्षण प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने की क्षमता रखता है. मगर दुख के साथ कहना पड़ता है कि भारत में बहु-उपयोगी सिनेमा-माध्यम को धनोपार्जन का साधन ही माना गया है और लोगों को सिर्फ सस्ता व भौंडा मनोरंजन ही परोसा जाता है.

एक तरफ सिर्फ पैसे से सरोकार रखनेवाले फिल्मकारों की बहुत बड़ी जमात है, जिसके बरक्स बहुत कम फिल्मकार कुछ नया, विचारोत्तेजक, समकालीन, कलात्मक व प्रयोगात्मक देने का प्रयास करते हैं. इन गिनेचुने फिल्मकारों को व्यावसायिक फिल्मकारों के साथ साधनों की अनुपस्थिति में असमान प्रतियोगिता करनी पड़ती है. उनका मार्ग कल भी कठिन था, आज भी कठिन है. आज भी उन्हें दूर-दूर तक मंजिल नहीं दीख रही है. वे अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए सदैव संघर्षशील रहते हैं.

'न्यू वेव', 'समांतर', 'आर्ट' या 'सार्थक' सिनेमा से संलग्न अधिकांश फिल्मकार दर्शकों का मन जीत पाने में असफल रहे हैं. आम आदमी को प्रतिबिंबित करनेवाली फिल्मों से दर्शक विमुख ही रहते हैं. क्या उन्हें अपने आसपास में दिलचस्पी नहीं है? शायद गलती दर्शकों की नहीं, सार्थक सिनेमा के नाखुदाओं की है. स्वयं को सार्थक सिनेमा का खुदा मानने वाले फिल्मकारों ने बेचारे दर्शकों के बारे में कभी एक क्षण भी नहीं सोचा. वे अपनी पसंद की फिल्मों के निर्माण में ही मस्त रहे और फिल्मों की नाकामयाबी के लिए दर्शकों को जिम्मेदार ठहराते रहे. सार्थक सिनेमावाले नारसीसस की तरह अपने विचारों के इश्क में डूबे रहे. वे स्वयं को समझदार और दर्शकों को नासमझ मानते रहे. दर्शक के स्तर पर आकर अपनी बात कहने की कोशिश कभी नहीं हुई. मणि कौल जैसे सृजक कहते रहे, "मैं अपनी पसंदगी की, अपनी तरह की ही फिल्में बनाता रहूंगा. मैं क्यों दर्शकों की चिंता करता बैठा रहूं?" शायद वे दर्शकों के लिए नहीं, अपने शयन में बैठकर देखने के लिए फिल्में बनाते होंगे.

हां, यह सच्चाई है कि सार्थक सिनेमा के अधिकांश फिल्मकारों ने आम आदमी की आसान-सी बात उठायी, किंतु प्रस्तुतीकरण इतना जटिल रहा कि बेचारा आम आदमी कुछ समझने के नाम पर माथा खुजलाता रहा. इन फिल्मकारों ने 'आर्ट', 'एक्सपेरीमेंट' 'इनोवेशन' व 'फार्म' के नाम पर 'सार्थक सिनेमा' को 'जटिल सिनेमा' बना दिया. अंततः उनकी फिल्में भी कुछ 'जानकार' फिल्म-समीक्षक व तथाकथित बौद्धिकों तक ही सीमित रहीं.

यदि कल का अनपढ़ व गरीब दर्शक सामाजिक समस्याओं को झेलती 'बंदिनी', 'सुजाता' या 'दो बीघा जमीन' देखता-समझता था, तो आज का दर्शक सार्थक सिनेमा से विमुख क्यों है? प्रेमचंद की 'गोदान' या 'शतरंज के खिलाड़ी' कितनी ही बार पढ़ने वाले पाठक, इसी कहानी पर आधारित फिल्म के दर्शक क्यों नहीं बन पाते? शायद वे अपनी प्रिय कहानी के जटिल स्वरूप से घबराते हैं.

यद्यपि पिछले दो-तीन वर्षों में 'मोहन जोशी हाजिर हो,' 'जाने भी दो यारों', 'अर्थ', 'अर्ध सत्य' व 'सारांश' आदि फिल्मों को दर्शकों ने खुशी से स्वीकृति दी है, किंतु आज भी सार्थक सिनेमा को 'सरदर्द सिनेमा' कहने वाले दर्शक भी कम नहीं हैं. सिर्फ जटिलता ही सार्थक सिनेमा के करीब आते दर्शकों के मन पर लगाम लगाती है. इसलिए यदि दर्शक सार्थक सिनेमा को कुछ संकोच के साथ ही सही स्वीकार करने को उत्सुक हैं तो फिल्मकार क्यों एक स्वर्णिम अवसर खो रहे हैं?

विश्व में सर्वाधिक फिल्मों का निर्माण करने वाले राष्ट्र के लिए इस प्रश्न का अन्वेषण प्रासंगिक भी है और अनिवार्य भी. इसलिए आइये इस संदर्भ में सार्थक सिनेमा के कुछ फिल्मकारों के विचार भी जान लिये जायें. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बाएं 'मोहन जोशी हाजिर हों' का एक दृश्य और ऊपर इस फिल्म के निर्माता निर्देशक सईद मिर्जा

जानबूझकर जटिलता नहीं लाते

—सईद अख्तर मिर्जा

समकालीन भारतीय सिनेमा के आशास्पद युवा फिल्मकारों में सईद अख्तर मिर्जा अनुभव समृद्धि के साथ निरंतर प्रगति कर रहे हैं. 'अरविंद देसाई की अजीब दास्तान,' 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है?' और 'मोहन जोशी हाजिर हो' में सईद मिर्जा सांप्रदायिक समस्या, असमानता, अन्याय और इनके प्रति कुछ न कर पाने की आम आदमी की लाचारी व आक्रोश को गुस्से के साथ व्यक्त कर पाये हैं. हमारे न्यायतंत्र पर प्रहार करती 'मोहन जोशी हाजिर हो. . .' में सईद दर्शक व सेल्यूलाइड के बीच का अंतर पाटने में कामयाब हुए हैं. आजकल हिंदू-मुस्लिम दंगों पर 'लंगड़े करीम को भीख मत दो' बनाने में व्यस्त सईद मिर्जा कहते हैं:—

"आप कुछ भी कहिए, मैं तो एक बात जानता हूं कि दर्शकों की रुचि तेजी से बदल रही है. यदि मैं दस साल पहले 'मोहन जोशी. . .' के साथ आया होता, तो आज जितना प्रोत्साहन न मिलता. हां, एक बात जरूर है. कि 'मोहन जोशी. . .' बनानेवाले से 'शोले' की सफलता की उम्मीद बांधना सरासर बेवकूफी है. मैं तो हर वक्त एक ही बात जेहन में रखता हूं कि वर्तमान फिल्म से इतनी आमदनी तो अवश्य हो कि मैं अगली फिल्म बना सकूं. . .

मैं नहीं चाहता कि सिर्फ हमारी शैली की फिल्में बनती रहें. मैं तो हिमायत करता हूं कि 'शोले' व 'मोहन जोशी. . . .' का निर्माण समानांतर रूप से होता रहे. इसी से दोनों का महत्व बना रहेगा. इतिहास की तहकीकात करने से संगीत, नृत्य व चित्रकला जैसे माध्यम में भी आपको शास्त्रीय व लोकप्रिय स्वरूप का सह-अस्तित्व मिलेगा. हिंदी साहित्य को ही देखिए, एक ओर प्रेमचंद की अपूर्व कलात्मक सृजनात्मकता है, तो दूसरी ओर गुलशन नंदा की लोकप्रियता भी है. . . . . .

मैं नहीं मानता कि कुछ फिल्मकार अपनी बात को जानबूझकर जटिल ढंग से पेश करते हैं. दरअसल, हर फिल्मकार विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सिनेमा का अलग-अलग फार्म पसंद करता है. कभी-कभी कोई फार्म अधिक कांप्लेक्स हो जाता है. फिर भी मेरी राय में दर्शकों को वैविध्य प्रदान करने के लिए अलग-अलग फार्म का उपयोग जरूरी भी है."

ईगो प्रॉब्लम का परिणाम

— कांतिलाल राठोड़

कांतिलाल राठोड़ की प्रथम फिल्म 'कंकु' की गिनती आज भी गुजराती की दो श्रेष्ठ फिल्मों में हो सकती है. 'कंकु' के पश्चात 'परिणय' व 'रामनगरी' के द्वारा अच्छी अर्थपूर्ण फिल्मों के अस्तित्व को टिकाये रखने में संघर्षरत कांतिलाल राठोड़ कहते हैं—

"हमारे शिक्षित फिल्मकार विश्व सिनेमा से अच्छी तरह परिचित होते हैं. वे भारतीय सिनेमा के परंपरागत स्वरूप को अपनाने के बजाये कुछ नया अर्थात विश्व गुजरता गया चाहते हैं. वे विश्व-सिनेमा के श्रेष्ठ सृजकों को चुनौती देना चाहते हैं कि हम किसी से कम नहीं. अंततः वे कला, श्रेष्ठता व प्रयोगिकता के नाम पर (भारतीय लिहाज से) कुछ नया करते रहते हैं. ये लोग मानें या न मानें मगर ईगो प्राब्लम के शिकार होकर वे सब-कांशियसली भी विश्व के उत्कृष्ट सृजकों से टक्कर लेना चाहते हैं और इस प्रतियोगिता में अंततः लाचार दर्शक ही मारा जाता है."

गुजराती के प्रसिद्ध लेखक पन्नालाल पटेल की कहानी पर 'कंकु' और राम नगरकर की मराठी आत्मकथा पर 'रामनगरी' बनाने के बाद आप बता सकते हैं कि पाठक द्वारा स्वीकृत साहित्य, दर्शक द्वारा स्वीकृत फिल्म में कोई तालमेल क्यों नहीं बैठ पाता?

"कहानी लेखक की कल्पना की संतान है. उसकी पसंद-नापसंद में पाठक की निजी अनुभूति भी काम करती है. कहानी पढ़ते वक्त पाठक शब्दों के सहारे कल्पना-सृष्टि बनाता है. एक ही कहानी पाठकों के मन में अलग-अलग रूपों में रच-बस सकती है. इसके विपरीत फिल्मकार को कहानी के आधार पर एक ऐसी कल्पना-सृष्टि खड़ी करनी होती है, जो लाखों दर्शकों की कल्पना-सृष्टि के करीब हो, उन्हें स्वीकार्य हो. कैमरे की आंख से कलम की बात पर्दे पर रूपांतरित करना आसान खेल नहीं है. . .

दो सौ पृष्ठों की कहानी की सभी घटनाओं को सिर्फ दो घंटे में समाविष्ट करना असंभव है. अंततः कुछ घटनाओं को छोड़ दिया जाता है अथवा उसका सारांश ही फिल्माया जाता है. यही वजह है कि प्रायः निर्देशक पर कहानी के प्रति ईमानदार न रहने का आरोप भी लगता रहता है. . .

कभी-कभी साहित्यिक कृति का मूल्यांकन करने में निर्देशक का दृष्टिकोण भी दर्शकों की विचारधारा से संगति स्थापित कर नहीं पाता है. कुछ साल पहले रूस में टॉल्स्तोय के 'वार एंड पीस' पर बारह घंटे की फिल्म बनी थी,

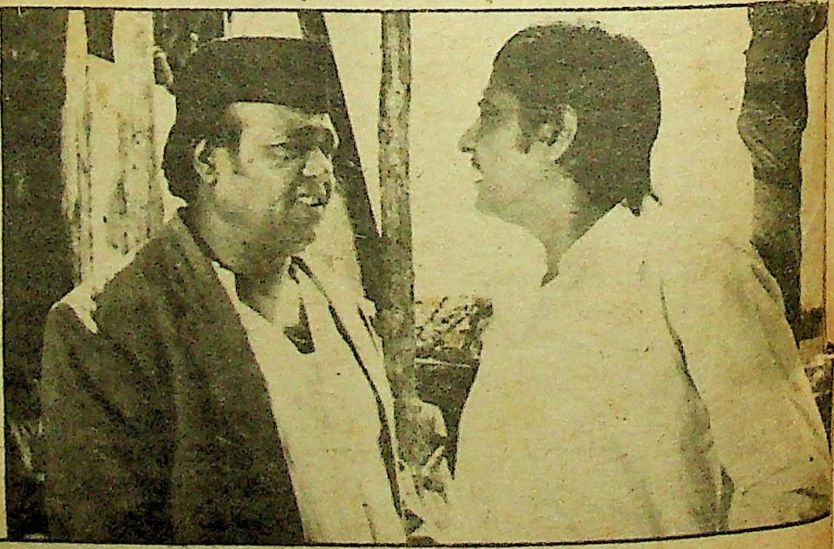

ऊपर निर्माता निर्देशक कांतिलाल राठोड़ और बाएं उनकी नयी फिल्म 'रामनगरी' का एक दृश्य.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर लोगों ने इसी कहानी पर बनी हॉलीवुड की डेढ़ घंटे की फिल्म ज्यादा पसंद की. . .

मेरी नवीनतम फिल्म 'रामनगरी' आत्मकथा पर आधारित है. न तो मैं आत्मकथा के सभी प्रसंग फिल्म में ले सकता था, न ही फिल्म को आत्मकथा की तरह अंतहीन छोड़ सकता था. मैंने लेखक राम नगरकर से सलाह-मश्वरा करने के बाद फिल्म में अंत के लिए एक नया प्रसंग जोड़ा, जो आत्मकथा लिखे जाने के बाद घटित हुआ. इस वक्त भी मैं गुजराती लेखक उमाशंकर जोशी की 40-50 साल पुरानी कहानी 'मुकुलना बहेन' पर 'सेतु' नामक लघुचित्र बना रहा हूं. कहानी में कोई भी तबदीली लेखक को अंधेरे में रखकर नहीं होनी चाहिए." □

कुछ फिल्में वक्त से आगे चलती हैं

—कुंदन शाह

भ्रष्टाचार जैसी समस्या पर गंभीर फिल्म ही बनाने का परंपरागत खयाल तोड़नेवाले युवा फिल्मकार कुंदन शाह ने अपनी पहली ही फिल्म 'जाने भी दो यारो' में वर्तमान समाज का एक्स-रे पेश किया है. हंसते-हंसते समाज के नासूरों को रेखांकित करनेवाले कुंदन की कैफियत है-

"संभव है कि आज जिन फिल्मों को जटिल मानकर सम्मान न मिला हो उन्हीं फिल्मों पर कल के दर्शक 'आफरीन-आफरीन' भी कहने लगें. कुछ फिल्में अपने वक्त से आगे होती हैं. और सालों गुजरने के बाद उनकी कदर होती है. 'कागज के फूल,' 'साहब बीबी और गुलाम,' 'बंदिनी' और 'धर्मपुत्र' जैसी कितनी ही फिल्में अपने वक्त से बहुत आगे थीं और तत्कालीन दर्शकों द्वारा पसंद नहीं की गयीं. 'साहब, बीबी और गुलाम' तो भारत की प्रथम सिनेमास्कोप फिल्म थी, मगर इस तकनीक के तहत नयेपन का जादू भी दर्शकों पर नहीं चला. गुरुदत्त को आज जितना मान-सम्मान दिया जाता है, उतना अतीत में नहीं दिया जाता था.

हमें एक बात दिमाग में जरूर रखनी चाहिए कि दर्शकों का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन था और रहेगा. हमारे दर्शक नेरेटिव फिल्में ज्यादा पसंद करते हैं. कोई फिल्मकार पर्दे पर कितनी अच्छी तरह से अपनी कहानी कह पाता है, उस पर ही फिल्म का सर्वस्व निर्भर है. 'मासूम' और 'आक्रोश' भी स्टोरी टेलिंग की सफलता के उदाहरण हैं. कुछ फिल्मकार डिस्क्रीप्टिव (वर्णनात्मक) स्टाइल अपनाते हैं. सत्यजीत राय जैसे सृजक फिल्म के माहौल व चरित्रों के अभ्यास को भी कहानी जितनी ही अहमियत देते हैं. इसीलिए सत्यजीत राय की फिल्में आम दर्शकों के पल्ले नहीं पड़तीं. मगर हमें याद रखना चाहिए कि सभी फिल्मकार जोखिम उठाकर दर्शकों के लिए फिल्म बनाते हैं. फौरी नाकामी से उनका अस्वीकार या उपहास नहीं होना चाहिए. हम सबका एक ही हेतु होना चाहिए कि दर्शकों को अच्छी फिल्में देखने व सराहने का नजरिया प्राप्त हो. यह काम कठिन है, क्योंकि सार्थक सिनेमा शास्त्रीय संगीत जैसा है. अच्छाई के बावजूद शास्त्रीय संगीत की तरह सार्थक सिनेमा देखने वालों की संख्या भी हमेशा कम ही रहेगी. हमें कोशिश सिर्फ यह करनी चाहिए कि इस संख्या में लगातार वृद्धि होती रहे.

अब रही साहित्य की बात. महान साहित्य पर हर वक्त महान फिल्म न बन पाने के अनगिनत कारण हैं. साहित्य व सिनेमा कला के अलग-अलग माध्यम हैं, उनका व्याकरण और प्रस्तुति भी भिन्न है. यही वजह है कि एक माध्यम का दूसरे माध्यम में रूपांतर होने पर फर्क महसूस होता है. साहित्यिक कृति के फिल्म रूपांतर से शायद ही कभी किसी को संपूर्ण संतोष मिला होगा. देखिए 'इडियट' की पांच, दोस्तोयवस्की की एक कहानी की बारह बार और 'हेमलेट' की कितनी ही फिल्मी आवृत्तियां बन चुकी हैं और भविष्य में भी बनेंगी. कुछ फिल्मकार अपने समय के मुताबिक भी रचना का नया अर्थ प्रस्तुत करते हैं. इससे कृति में तबदीली भी आती है. जैसे कि जापान के कुरोसावा 'मेकबेथ' के फिल्मीकरण के वक्त मूल नाटक की सीमा से कहीं आगे निकल गये थे. □

मुझे तो दोनों टाइप की फिल्मों में ईनाम मिले हैं

—शबाना आजमी

मुझ से अपने सवालों के जवाब में बस इकट्ठा ही जवाब सुन लीजिये. मेरी नसों में साहित्य और हड्डियों में एक्ट्रेस की क्वालिटीज भरी हुई हैं. घर में बचपन से शायरों और लिटरेरी लोगों का आना जाना रहा. मार्क्स और लेनिनवाद की पालिसी ही मेरे कानों में अजान की तरह पड़ती आयी है. फिल्मों में काम शुरू किया तो यह महसूस ही नहीं हुआ कि कोई नयी बात हो गयी है. एक तरफ श्याम बेनेगल जैसे डायरेक्टर के साथ काम किया जिसने फिल्म को लिटरेचर की ऊंचाइयों तक पहुंचा कर इंटरनेशनल ईनाम जीते और दूसरी तरफ साथ साथ उन प्रोड्यूसरों की फिल्मों में भी काम मिलना शुरू हो गया जिनके ताल्लुकात पहले से मेरे वालिद साहब से थे. तो मुझे वह फर्क भी महसूस नहीं हो पाया जो आर्ट फिल्म और कमर्शियल फिल्म में माना जाने लगा है. मुझे दोनों टाइप की फिल्मों में ईनाम मिले. दोनों क्लास की फिल्में कामयाब हुईं और मुझे यह महसूस कराने को जमीन मोहय्या की गयी कि मैं कहीं भी बिना एफर्ट के फिट हो जाती हूं. मेरा तो मैका ही नहीं ससुराल भी किताबों की दीवारों के बीच में आबाद है.

मगर अब जाकर मुझे लगने लगा है कि लिटरेचर का झंडा उठाने वाले भी फेवर और लिहाज से बचे नहीं हैं. मैं अपनी तरफ से किसी भी लिटरेरी या कमर्शियल फिल्म की कहानी में दखलअंदाजी नहीं करती. जो भी केरेक्टर मुझे दिया जाता है उसमें ब्लाउज की तरह फिट हो जाने की कोशिश करती हूं. न ग्लेमर की परवाह करती हूं न अपनी इमेज खराब होने की. कभी कभी तमन्ना होती है कि मैं ही 'कमला' क्यों न बनूं. 'अर्थ' की तरह बढ़िया रोल मुझे क्यों न मिले—जबकि मेरी एक्टिंग में कहीं भी कोई कमी नहीं है. मगर मैंने आज तक कभी भी कोई डिमांड नहीं की. अच्छा रोल मिला तब भी खुश. मामूली रोल मिला तब भी खुश. फिल्में देखने वालों की नजरें तो नहीं बदलीं मगर मेरे आसपास कुछ ऐसा माहौल पैदा किया जा रहा है जिससे मैं यह महसूस करूं कि पिछड़ रही हूं.

मलाल करने का वक्त मेरे पास नहीं है. मैं तो आर्ट के नाम पर स्टेज पर उतरने को तैयार रही हूं. तलाश है तो मुश्किल से मुश्किल केरेक्टर खेलने की. मिलेगा तो दिल लगा कर खेलूंगी चाहे 'अवतार' जैसी कमर्शियल फिल्म बनाने वाले वैसा रोल लायें चाहे सथ्यू या श्याम लेकर आयें. उनके पास चाहे मेरे लायक रिम्यूनरेशन हो चाहे न हो. बस. . .गॉड इज ग्रेट. □

प्रस्तुति : सत्यकुमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही सच है

मन्नू भंडारी

कानपुर

सामने आंगन में फैली धूप सिमटकर दीवारों पर चढ़ गयी और कंधे पर बस्ता लटकाये नन्हें-नन्हें बच्चों के झुंड के झुंड दिखाई दिये, तो एकाएक ही मुझे समय का आभास हुआ... घंटा भर हो गया यहां खड़े-खड़े और संजय का अभी तक पता नहीं. झुंझलाती-सी मैं कमरे में आती हूं. कोने में रखी मेज पर किताबें बिखरी पड़ी हैं, कुछ खुली, कुछ बंद. एक क्षण मैं उन्हें देखती हूं, फिर निरुद्देश्य-सी कपड़ों की अलमारी खोलकर सरसरी-सी नजर से कपड़े देखती हूं. सब बिखरे पड़े हैं. इतनी देर यों ही व्यर्थ खड़ी रही, इन्हें ही ठीक कर लेती.... पर मन नहीं करता और फिर बंद कर देती हूं.

नहीं आना था तो व्यर्थ ही मुझे समय क्यों दिया? फिर यह कोई आज ही की बात है. हमेशा संजय अपने बताये हुए समय से घंटे-दो घंटे देरी कर के आता है, और मैं हूं कि उसी क्षण से प्रतीक्षा करने लगती हूं. उसके बाद लाख कोशिश करके भी तो किसी काम में अपना मन नहीं लगा पाती. वह क्यों नहीं समझता कि मेरा समय बहुत अमूल्य है, थीसिस पूरी करने के लिए अब मुझे अपना सारा समय पढ़ाई में ही लगाना चाहिए, पर यह बात उसे कैसे समझाऊं.

मेज पर बैठकर मैं फिर पढ़ने का उपक्रम करने लगती हूं, पर मन है कि लगता ही नहीं. पर्दे के जरा-से हिलने से दिल की धड़कन बढ़ जाती है और बार-बार नजर घड़ी के सरकते हुए कांटों पर दौड़ जाती है. हर समय यही लगता है. वह आया... वह आया...

तभी मेहता साहब की पांच साल की छोटी बच्ची झिझकती-सी कमरे में आती है, "आंटी, हमें कहानी सुनाओगी?"

"नहीं, अभी नहीं, पीछे आना." मैं रुखाई से जवाब देती हूं. वह भाग जाती है.

ये मिसेज मेहता भी एक ही हैं. यों तो महीनों शायद मेरी सूरत नहीं देखतीं, पर बच्ची को जब-तब मेरा सिर खाने को भेज देती हैं.

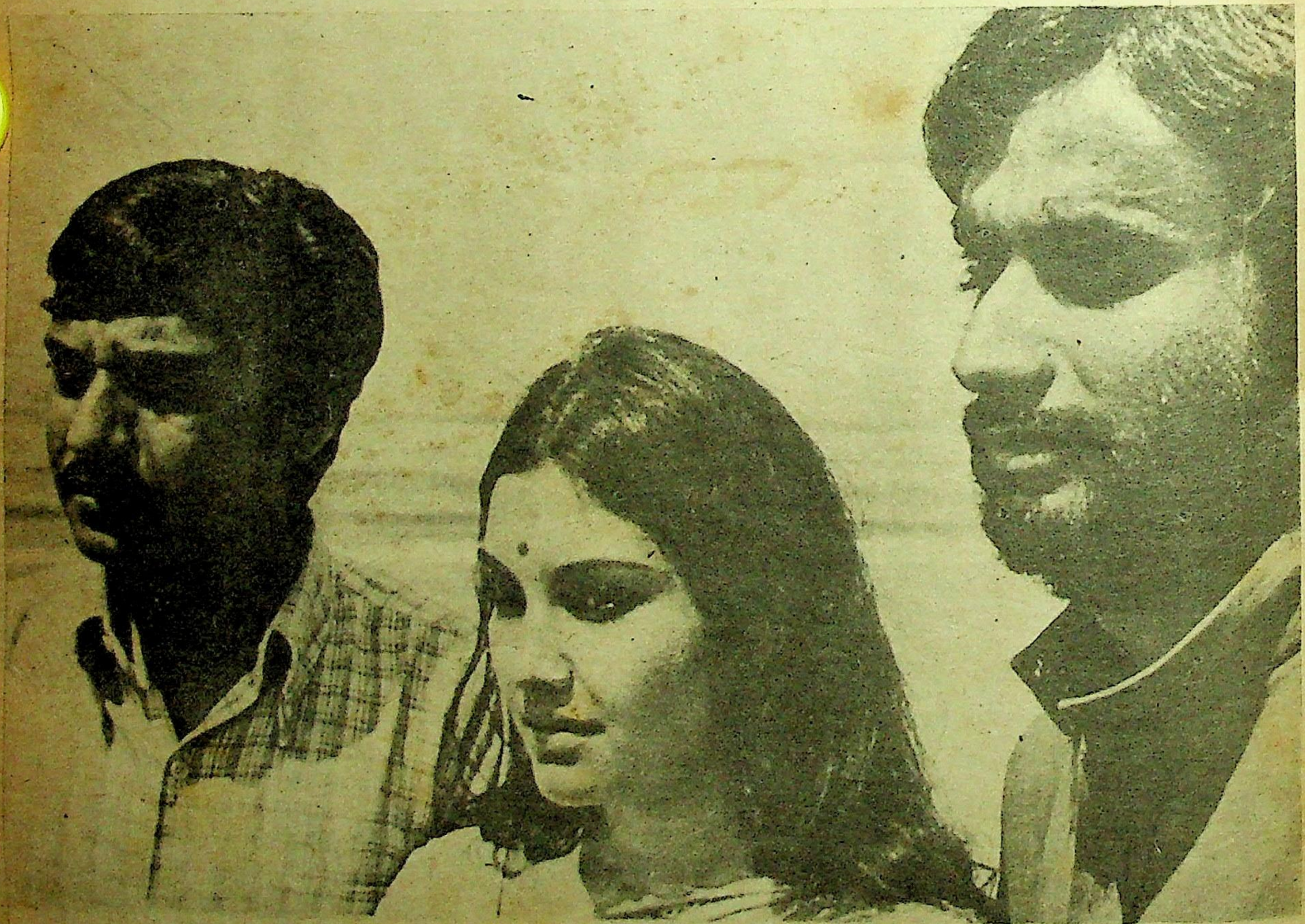

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारह वर्ष की आयु में किया प्यार भी कोई प्यार होता है भला! वह तो निरा बचपना होता है. . . . फिर भी उसके टूटने पर आह और आंसुओं के दौर से क्यों गुजरना पड़ता है. . . . क्या प्यार जीवन में एक ही बार, किसी एक से ही किया जा सकता है. . . . फिर साथी के दूर होते ही दूसरे साथी की तलाश क्यों होती है? नये प्रेमी के साथ संबंध पुख्ता होते न होते गर 'बचपने' का साथी फिर अचानक जीवन में आ जाये तब . . . .! प्रेमिका किसका वरण करे. . . .दोनों में से कौन सच्चा है? वह या यह, या जो सामने है वही सच है, शेष सब मिथ्या-मृगतृष्णा . . . . प्रेम संबंधों के दोराहे पर खड़ी एक युवती की प्रेम-गाथा जिस पर कुछ वर्ष पहले 'रजनीगंधा' फिल्म का निर्माण हुआ था . . .

मेहता साहब तो फिर भी कभी-कभी आठ-दस दिन में खैरियत पूछ ही लेते हैं, पर वे तो बेहद अकड़ू मालूम होते हैं. अच्छा ही है, ज्यादा दिलचस्पी दिखाती तो क्या मैं इतनी आजादी से घूम-फिर सकती थी?

खट-खट-खट. . . वही परिचित पद-ध्वनि. तो आ गया संजय. मैं बरबस ही अपना सारा ध्यान पुस्तक में केंद्रित कर लेती हूं. रजनीगंधा के ढेर-सारे फूल लिये संजय मुस्कराता-सा दरवाजे पर खड़ा है. मैं देखती हूं, पर मुस्कराकर स्वागत नहीं करती. हंसता हुआ वह आगे बढ़ता है. और फूलों को मेज पर पटककर, पीछे से मेरे दोनों कंधे दबाता हुआ पूछता है, "बहुत नाराज हो?"

रजनीगंधा की महक से जैसे सारा कमरा महकने लगता है.

"मुझे क्या करना है नाराज होकर?" रुखाई से मैं कहती हूं.

वह कुर्सी सहित मुझे घुमाकर अपने सामने कर लेता है और बड़े दुलार के साथ ठोड़ी उठाकर कहता है, "तुम्हीं बताओ, क्या करता? क्वालिटी में दोस्तों के बीच फंसा. बहुत कोशिश करके भी उठ नहीं पाया. सबको नाराज करके आना अच्छा भी नहीं लगता."

इच्छा होती है कह दूं, 'तुम्हें दोस्तों का खयाल है, उनके बुरा मानने की चिंता है. बस मेरी ही नहीं.' पर कह कुछ नहीं पाती, एकटक उसके चेहरे की ओर देखती रहती हूं. . .उसके सांवले चेहरे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं. कोई और समय होता तो मैंने अपने आंचल से इन्हें पोंछ दिया होता, पर आज नहीं. वह मंद-मंद मुस्करा रहा है, उसकी आंखें क्षमा याचना कर रही हैं, पर—मैं क्या करूं. . . तभी वह अपनी आदत के अनुसार कुर्सी के हत्थे पर बैठकर मेरे गाल सहलाने लगता है. मुझे उसकी इस बात पर गुस्सा आता है. हमेशा इसी तरह करेगा और फिर दुनिया भर का लाड़-दुलार दिखायेगा. वह जानता जो है कि इसके आगे मेरा क्रोध टिक नहीं पाता. . .फिर उठकर वह फूलदान के पुराने फूल फेंक देता है और नये फूल लगाता है. फूल सजाने में वह कितना कुशल है. एक बार मैंने यों ही कह दिया था कि मुझे रजनीगंधा के फूल बड़े पसंद हैं तो उसने नियम ही बना लिया कि हर चौथे दिन ढेर-सारे फूल लाकर मेरे कमरे में लगा देता है. और अब तो मुझे भी ऐसी आदत हो गयी है कि एक दिन भी कमरे में फूल न रहें तो न पढ़ने में मन लगता है, न सोने में. ये फूल जैसे संजय की उपस्थिति का आभास देते रहते हैं.

थोड़ी देर बाद हम घूमने निकल जाते हैं. एकाएक ही मुझे इरा के पत्र की बात याद आती है. जो बात सुनाने के लिए मैं सबेरे से ही आतुर थी, इस गुस्सेबाजी में उसे ही भूल गयी थी.

"सुनो, इरा ने लिखा है कि किसी दिन भी मेरे पास इंटरव्यू का बुलावा आ सकता है, मुझे तैयार रहना चाहिए."

"कहां, कलकत्ता से?" कुछ याद करते हुए संजय पूछता है और फिर एकाएक ही उछल पड़ता है, "यदि तुम्हें वह जॉब मिल जाये तो मजा आ जाये दीपा, मजा आ जाये."

हम सड़क पर हैं, नहीं तो अवश्य ही उसने आवेश में आकर कोई हरकत कर डाली होती. जाने क्यों, मुझे उसका इस प्रकार प्रसन्न होना अच्छा नहीं लगता. क्या वह चाहता है कि मैं उससे दूर चली जाऊं.

तभी सुनाई देता है, "तुम्हें यह जॉब मिल जाये तो सच मैं भी अपना तबादला कलकत्ता ही करवा लूं, हेड आफिस में. यहां की रोज की किच-किच से तो मेरा मन ऊब गया है. कितनी ही बार सोचा कि तबादले की कोशिश करूं, पर तुम्हारे खयाल ने हमेशा मुझे बांध लिया. आफिस में शांति हो जायेगी, पर मेरी शामें कितनी वीरान हो जायेंगी."

उसके स्वर की आर्द्रता ने मुझे छू लिया. एकाएक ही मुझे लगने लगा कि रात बड़ी सुहावनी हो चली है.

हम दूर निकलकर अपनी प्रिय टेकरी पर जाकर बैठ जाते हैं. दूर-दूर तक हलकी-सी चांदनी फैली हुई है. और शहर की तरह यहां का वातावरण धुएं से भरा हुआ नहीं है. वह दोनों पैर फैलाकर बैठ जाता है और घंटों मुझे अपने आफिस के झगड़े की बातें सुनाता है और फिर कलकत्ता जाकर साथ जीवन बिताने की योजनाएं बनाता है. मैं कुछ नहीं बोलती, बस एकटक उसे देखती हूं, देखती रहती हूं.

जब वह चुप हो जाता है तो बोलती हूं, "मुझे तो इंटरव्यू में जाते हुए बड़ा डर लगता है. पता नहीं, कैसे-क्या पूछते होंगे. मेरे लिए तो यह पहला ही मौका है."

वह खिलखिलाकर हंस पड़ता है.

"तुम भी एक ही मूर्ख हो. घर से दूर, यहां कमरा लेकर अकेली रहती हो, रिसर्च कर रही हो, दुनियाभर में घूमती-फिरती हो और इंटरव्यू के नाम से डर लगता है. क्यों?" और गाल पर हलकी-सी चपत जमा देता है. फिर समझाता हुआ कहता है, "और देखो, आजकल ये इंटरव्यू आदि तो सब दिखावा मात्र होते हैं. वहां किसी जान-पहचान वाले से इन्फ्लुएंस डलवाना जाकर."

"पर कलकत्ता तो मेरे लिए एकदम नयी जगह है. वहां इरा को छोड़कर मैं किसी को जानती भी नहीं. अब उन लोगों की कोई जान-पहचान हो तो बात दूसरी है." असहाय-सी मैं कहती हूं.

"और किसी को नहीं जानती?" फिर मेरे चेहरे पर नजरें गड़ाकर पूछता है, "निशीथ भी तो वहीं है!"

"होगा, मुझे क्या करना है उससे?" मैं एकदम ही भन्नाकर जवाब देती हूं. पता नहीं क्यों, मुझे लग ही रहा था कि अब वह यही कहेगा.

"कुछ नहीं करना?" वह छेड़ने के लहजे में कहता है.

और मैं भभक पड़ती हूं, "देखो संजय, मैं हजार बार तुमसे कह चुकी हूं कि उसे लेकर मुझसे मजाक मत किया करो. मुझे इस तरह का मजाक जरा भी पसंद नहीं है."

वह खिलखिलाकर हंस पड़ता है, पर मेरा तो मूड ही खराब हो जाता है.

हम लौट पड़ते हैं. वह मुझे खुश करने के इरादे से मेरे कंधे पर हाथ रख देता है. मैं झटककर हाथ हटा देती हूं, "क्या कर रहे हो? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

"कौन है यहां जो देख लेगा! और देख लेगा तो देख ले, आप ही कुढ़ेगा."

"नहीं, हमें पसंद नहीं है यह बेशर्मी." और सच ही मुझे रास्ते में ऐसी हरकतें पसंद नहीं हैं. चाहे रास्ता निर्जन ही क्यों न हो, पर है तो रास्ता ही, फिर कानपुर जैसी जगह.

कमरे पर लौटकर मैं उसे बैठने को कहती हूं, पर वह बैठता नहीं. बस, बांहों में भरकर एक बार चूम लेता है. यह भी जैसे उसका रोज का नियम है.

वह चला जाता है. मैं बाहर बालकनी में निकलकर उसे देखती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती हूं.....उसका आकार छोटा होते-होते सड़क के मोड़ पर जाकर लुप्त हो जाता है. मैं उधर ही देखती रहती हूं—निरुद्देश्य-सी, खोई खोई-सी. फिर आकर पढ़ने बैठ जाती हूं.

रात में सोती हूं तो देर तक मेरी आंखें मेज पर लगे रजनीगंधा के फूलों को ही निहारती रहती हैं. जाने क्यों अक्सर मुझे भ्रम हो जाता है कि ये फूल नहीं हैं, मानों संजय की अनेकानेक आंखें हैं, जो मुझे देख रही हैं, सहला रही हैं, दुलरा रही हैं. और अपने को यों असंख्य आंखों से निरंतर देखे जाने की कल्पना से ही मैं लजा जाती हूं.

मैंने संजय को भी एक बार यह बात बतायी थी तो वह खूब हंसा था और फिर मेरे गालों को सहलाते हुए उसने कहा था कि मैं पागल हूं, निरी मूर्खा हूं.

कौन जाने, शायद उसका कहना ही ठीक हो, शायद मैं पागल ही होऊं.

कानपुर

मैं जानती हूं. संजय का मन निशीथ को लेकर जब-तब सशंकित हो उठता है, पर मैं उसे कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैं निशीथ से नफरत करती हूं, उसकी याद-मात्र से मेरा मन घृणा से भर उठता है... फिर अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कुछ होता भला है. निरा बचपना होता है. महज पागलपन. उसमें आवेश रहता है, पर स्थायित्व नहीं, गति रहती है, पर गहराई नहीं. जिस वेग से वह आरंभ होता है, जरा-सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट भी जाता है.... और उसके बाद आहों, आंसुओं और सिसकियों का एक दौर, सारी दुनिया की निस्सारता और आत्महत्या करने के अनेकानेक संकल्प और फिर एक तीखी घृणा. जैसे ही जीवन का दूसरा आधार मिल जाता है, उन सबको भूलने में एक दिन भी नहीं लगता. फिर तो वह सब ऐसी बेवकूफी लगती है, जिस पर बैठकर घंटों हंसने की तबीयत होती है. तब एकाएक ही इस बात का एहसास होता है कि ये सारे आंसू, ये सारी आहें उस प्रेमी के लिए नहीं थीं, वरन् जीवन की उस रिक्तता और शून्यता के लिए थीं, जिसने जीवन को नीरस बनाकर बोझिल कर दिया था.

तभी तो संजय को पाते ही मैं निशीथ को भूल गयी. मेरे आंसू हंसी में बदल गये और आहों की जगह किलकारियां गूंजने लगीं, पर संजय है कि जब-तब निशीथ की बात को लेकर व्यर्थ ही खिन्न-सा हो उठता है. मेरे कुछ कहने पर वह खिलखिला अवश्य पड़ता है, पर मैं जानती हूं, वह पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं है.

उसे कैसे बताऊं कि मेरे प्यार का, मेरी कोमल भावनाओं का, भविष्य की मेरी अनेकानेक योजनाओं का एकमात्र केंद्र संजय ही है. यह बात दूसरी है कि चांदनी रात में, किसी निर्जन स्थान में, पेड़-तले बैठकर भी मैं अपनी थीसिस की बात करती हूं या वह अपने आफिस की, मित्रों की बातें करता है, या हम किसी और विषय पर बात करने लगते हैं..... पर इस सब का यह मतलब तो नहीं कि हम प्रेम नहीं करते. वह क्यों नहीं समझता कि आज हमारी भावुकता यथार्थ में बदल गयी है, सपनों की जगह हम वास्तविकता में जीते हैं. हमारे प्रेम को परिपक्वता मिल गयी है, जिसका आधार पाकर वह अधिक गहरा हो गया है, स्थायी हो गया है.

पर संजय को कैसे समझाऊं यह सब? कैसे उसे समझाऊं कि निशीथ ने मेरा अपमान किया है. ऐसा अपमान, जिसकी कचोट से मैं आज भी तिलमिला जाती हूं. संबंध तोड़ने से पहले एक बार तो उसने मुझे बताया होता कि आखिर मैंने ऐसा कौन-सा अपराध कर डाला था, जिसके कारण उसने मुझे इतना कठोर दंड दे डाला? सारी दुनिया की भर्त्सना, तिरस्कार, परिहास और दया का विष मुझे पीना पड़ा.... विश्वासघाती नीच कहीं का.... और संजय सोचता है कि आज भी मेरे मन में उसके लिए कोई कोमल स्थान है. छिः मैं उससे नफरत करती हूं. और सच पूछो तो अपने को भाग्यशालिनी समझती हूं कि मैं ऐसे व्यक्ति के चंगुल में फंसने से बच गयी, जिसके लिए प्रेम महज एक खिलवाड़ है.

संजय यह तो सोचो कि यदि ऐसी कोई भी बात होती तो क्या मैं तुम्हारे आगे, तुम्हारी हर उचित-अनुचित चेष्टा के आगे, यों आत्म-समर्पण करती? तुम्हारे चुंबनों और आलिंगनों में अपने को यों बिखरने देती? जानते हो, विवाह से पहले कोई भी लड़की किसी को इन सबका अधिकार नहीं देती, पर मैंने दिया. क्या केवल इसीलिए नहीं कि मैं तुम्हें प्यार करती हूं, बहुत-बहुत प्यार करती हूं. विश्वास करो संजय, तुम्हारा मेरा प्यार ही सच है, निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था.

कानपुर

परसों मुझे कलकत्ता जाना है. सच, बड़ा डर लग रहा है. कैसे क्या होगा? मान लो, इंटरव्यू में बहुत नर्वस हो गयी तो? संजय से कह रही हूं कि वह भी साथ चले, पर उसे आफिस से छुट्टी नहीं मिल सकती. एक तो नया शहर, फिर इंटरव्यू. सच, अपना कोई साथ होता तो बड़ा सहारा मिल जाता. मैं कमरा लेकर अकेली रहती हूं. यों अकेली घूम फिर भी लेती हूं तो संजय सोचता है, मुझमें बड़ी हिम्मत है, पर सच, बड़ा डर लग रहा है.

बार-बार मैं यह मान लेती हूं कि मुझे नौकरी मिल गयी है और मैं संजय के साथ वहां रहने लगी हूं. सच, कितनी सुंदर कल्पना है, कितनी मादक. पर इंटरव्यू का भय मादकता में भरे इस स्वप्न-जाल को छिन्न भिन्न कर देता है....

काश, संजय भी किसी तरह मेरे साथ चल पाता.

कलकत्ता

गाड़ी जब हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर प्रवेश करती है तो जाने कैसी विचित्र आशंका, विचित्र-से भय से मेरा मन भर जाता है.

प्लेटफार्म पर खड़े असंख्य नर-नारियों में मैं इरा को ढूंढ़ती हूं. वह कहीं दिखाई नहीं देती. नीचे उतरने की बजाय खिड़की में से ही दूर-दूर तक नजरें दौड़ाती हूं.... आखिर एक कुली को बुलाकर, अपना छोटा-सा सूटकेस और बिस्तर उतारने का आदेश दे, मैं नीचे उतर पड़ती हूं. उस भीड़ को देखकर मेरी दहशत जैसे और बढ़ जाती है. तभी किसी के हाथ के स्पर्श से मैं बुरी तरह चौंक जाती हूं. पीछे देखती हूं, तो इरा खड़ी है.

रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछते हुए कहती हूं, "सच, तुझे न देखकर मैं घबरा रही थी कि तुम्हारे घर भी कैसे पहुंचूंगी."

बाहर आकर हम टैक्सी में बैठते हैं. अभी तक मैं स्वस्थ नहीं हो पायी हूं. जैसे ही हावड़ा-पुल पर गाड़ी पहुंचती है, हुगली के जल को स्पर्श करती हुई ठंडी हवायें तन-मन को एक ताजगी से भर देती हैं. इरा मुझे इस पुल की विशेषता बताती है और मैं विस्मित-सी उस पुल को देखती हूं, दूर-दूर तक फैले हुगली के विस्तार को देखती हूं, बड़े-बड़े जहाजों को देखती हूं...

उसके बाद बहुत ही भीड़-भरी सड़कों पर हमारी टैक्सी रुकती-रुकती चलती है, ऊंची-ऊंची इमारतों और चारों ओर के वातावरण से कुछ विचित्र-सी विराटता का आभास होता है और इस सबके बीच जैसे मैं अपने को बड़ा खोया-खोया-सा महसूस करती हूं. कहां पटना और कानपुर और कहां यह कलकत्ता. सच, मैंने बहुत बड़े शहर देखे ही नहीं.

सारी भीड़ को चीरकर हम रैड-रोड पर आ जाते हैं. चौड़ी शांत सड़क. मेरे दोनों ओर लंबे-चौड़े खुले मैदान.

"क्यों इरा, कौन-कौन लोग होंगे इंटरव्यू में? मुझे तो सच बड़ा डर लग रहा है."

"अरे, सब ठीक हो जायेगा. तू और डर? हम जैसे डरें तो कोई बात भी है. जिसने अपना सारा कैरियर अपने आप बनाया, वह भला इंटरव्यू में डरे." फिर कुछ देर ठहरकर कहती है, "अच्छा, भैया-भाभी तो पटना ही होंगे? जाती है कभी उनके पास भी या नहीं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कानपुर आने के बाद एक बार गयी थी. कभी-कभी यों ही पत्र लिख देती हूं."

"भई कमाल के लोग हैं. बहन को भी नहीं निभा सके."

मुझे यह प्रसंग कतई पसंद नहीं. मैं नहीं चाहती कि कोई इस विषय पर बात करे. मैं मौन ही रहती हूं.

इरा का छोटा-सा घर है, सुंदर ढंग से सजाया हुआ. उसके पति के दौरे पर जाने की बात सुनकर पहले ही मुझे अफसोस हुआ था, वे होते तो कुछ मदद ही करते, पर फिर एकाएक लगा कि उनकी अनुपस्थिति में मैं शायद अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर सकूं. उनका बच्चा भी बड़ा प्यारा है.

शाम को इरा मुझे कॉफी हाउस ले जाती है. अचानक मुझे वहां निशीथ दिखाई देता है. मैं सकपकाकर नजर घुमा लेती हूं, पर वह हमारी मेज पर ही आ पहुंचता है. विवश होकर मुझे उधर देखना पड़ता है. नमस्कार भी करना पड़ता है, इरा का परिचय भी करवाना पड़ता है. इरा पास की कुर्सी पर बैठने का निमंत्रण देती है. मुझे लगता है, मेरी सांस रुक जायेगी.

"कब आयीं?"

"आज सवेरे ही."

"अभी ठहरोगी? ठहरी कहां हो?"

जवाब इरा देती है. मैं देख रही हूं, निशीथ बहुत बदल गया है. उसने कवियों की तरह बाल बढ़ा लिए हैं. यह क्या शौक चर्राया? उसका रंग स्याह पड़ गया है. वह दुबला भी हो गया है.

विशेष बातचीत नहीं होती और हम लोग उठ पड़ते हैं. इरा को मुन्नू की चिंता ही सता रही थी और मैं स्वयं घर पहुंचने को उतावली हो रही थी. कॉफी हाउस से धर्मतल्ला तक वह पैदल चलता हुआ हमारे साथ आता है. इरा उससे बात कर रही है, मानो वह इरा का ही मित्र हो. इरा अपना पता समझा देती है और वह दूसरे दिन नौ बजे आने का वायदा करके चला जाता है.

पूरे तीन साल बाद निशीथ का यों मिलना. न चाहकर भी जैसे सारा अतीत आंखों के सामने खुल जाता है. बहुत दुबला हो गया है निशीथ. . . लगता है, जैसे मन में कहीं कोई गहरी पीड़ा छिपाए बैठा है.

मुझसे अलग होने का दुःख तो नहीं साल रहा है इसे?

कल्पना चाहे कितनी मधुर क्यों न हो, एक तृप्ति-युक्त आनंद देने वाली क्यों न हो, पर मैं जानती हूं, यह झूठ है. यदि ऐसा ही था तो कौन उसे कहने गया था कि तुम इस संबंध को तोड़ दो? उसने अपनी इच्छा से ही तो यह सब किया था.

एकाएक ही मेरा मन कटु हो उठता है. यही तो वह व्यक्ति है, जिसने मुझे अपमानित करके सारी दुनिया के सामने छोड़ दिया था महज उपहास का पात्र बनाकर. हुंह, क्यों नहीं मैंने उसे पहचानने से इंकार कर दिया? जब वह मेज के पास आकर खड़ा हुआ तो क्यों नहीं मैंने कह दिया कि माफ कीजिए, मैं आपको पहचानती नहीं. जरा उसका खिसियाना तो देखती.

अच्छा है, आये कल. मैं उसे बता दूंगी कि जल्दी ही मैं संजय से विवाह करनेवाली हूं. यह भी बता दूंगी कि मैं पिछला सब कुछ भूल चुकी हूं. यह भी बता दूंगी कि मैं उससे घृणा करती हूं और उसे जिंदगी में कभी माफ नहीं कर सकती. . .

"मेरी कहानी 'एखाने आकाश नाय' (यह कहानी 1963 में सारिका में 'आकाश के आईने में' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी) मेरी नजर में बहुत अच्छी कहानी है. उस पर फिल्म बनी 'जीना यहां.' लेकिन वह चली नहीं. उसका पूर्वार्द्ध बहुत कमजोर था, उत्तरार्द्ध मास्टर-पीस था. हालांकि इसे बहुत अच्छी फिल्म बनना चाहिए था लेकिन अच्छी और सफल फिल्म बनी 'रजनीगंधा.' रजनीगंधा में बासु ने कहीं-कहीं बहुत ज्यादा लिबर्टी ली है. इस दृश्यचित्र (बाएं) में बासु ने जो लेस्बियन टच देकर व्यावसायिकता लाने की कोशिश की है उसकी कोई जरूरत नहीं थी. यह दृश्य न तो कहानी की मांग है और न फिल्म की."

—मन्नू भंडारी

यह सब सोचने के साथ-साथ जाने क्यों, मेरे मन में यह बात भी उठ रही है कि तीन साल हो गए, अभी तक निशीथ ने विवाह क्यों नहीं किया? करे न करे, मुझे क्या. . . .

क्या वह आज भी मुझसे उम्मीद रखता है? हुं, मूर्ख कहीं का.

संजय, मैंने तुमसे कितना कहा था कि तुम मेरे साथ चलो, पर तुम नहीं आये . . . . इस समय जबकि मुझे तुम्हारी इतनी-इतनी याद आ रही है, बताओ मैं क्या करूं?

कलकत्ता

नौकरी पाना इतना मुश्किल है, इसका मुझे गुमान तक नहीं था. इरा कहती है कि डेढ़-सौ की नौकरी के लिए खुद मिनिस्टर तक सिफारिश करने पहुंच जाते हैं. फिर यह तो तीन सौ का जॉब है. निशीथ सवेरे से शाम तक इसी चक्कर में भटका है, यहां तक कि उसने अपने आफिस से भी छुट्टी ले ली है. वह क्यों मेरे काम में इतनी दिलचस्पी ले रहा है? उसका परिचय बड़े-बड़े लोगों में है और वह कहता है कि जैसे भी होगा, वह यह काम मुझे दिलाकर ही मानेगा, पर आखिर क्यों?

कल मैंने सोचा था कि अपने व्यवहार की रुखाई से मैं स्पष्ट कर दूंगी कि अब वह मेरे पास न आये. पौने दो बजे के करीब, जब मैं अपने टूटे हुए बाल फेंकने खिड़की पर गयी तो देखा—घर से थोड़ी दूर पर निशीथ टहल रहा है. वही लंबे बाल, कुरता-पजामा. तो वह समय के पहले ही आ गया. संजय होता तो ग्यारह के पहले नहीं पहुंचता. समय पर पहुंचना तो वह जानता ही नहीं.

उसे यों चक्कर काटते देख मेरा मन जाने कैसा हो आया. . . . और जब वह आया तो मैं चाहकर भी कटु नहीं हो सकी. मैंने उसे कलकत्ते आने का मकसद बताया तो लगा कि वह बड़ा प्रसन्न हुआ. वहीं बैठे-बैठे फोन करके उसने इस नौकरी के संबंध में भारी जानकारी प्राप्त कर ली, कैसे क्या करना होगा, उसकी योजना भी बना डाली, बैठे-बैठे फोन से आफिस में सूचना भी दे दी कि आज वह आफिस नहीं आयेगा.

विचित्र स्थिति मेरी हो रही थी. उसके इस अपनत्वभरे व्यवहार को मैं स्वीकार भी नहीं कर पाती थी, नकार भी नहीं पाती थी. सारा दिन मैं उसके साथ घूमती रही पर काम की बात के अतिरिक्त उसने एक भी बात नहीं की. मैंने कई बार चाहा कि संजय की बात बता दूं, पर बता नहीं सकी. सोचा, कहीं यह सुनकर वह दिलचस्पी लेना कम न कर दे. उसके आज भर के प्रयत्नों से ही मुझे काफी उम्मीद हो चली थी. यह नौकरी मेरे लिए कितनी आवश्यक है, मिल जाये तो संजय कितना प्रसन्न होगा, हमारे विवाहित जीवन के आरंभिक दिन कितने सुख में बीतेंगे.

शाम को हम घर लौटते हैं. मैं उसे बैठने को कहती हूं, पर वह बैठता नहीं. बस खड़ा ही रहता है. उसके चौड़े ललाट पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं. एकाएक ही मुझे लगता है, इस समय संजय होता तो मैं अपने आंचल से उसका पसीना पोंछ देती और वह. . . . . वह क्या बिना बांहों में भरे, बिना प्यार किए यों ही चला जाता?

"अच्छा, तो चलता हूं."

यंत्र चालित-से मेरे हाथ जुड़ जाते हैं. वह लौट पड़ता है और मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोयी-सी देखती रहती हूं.

सोते समय मेरी आदत है कि मैं संजय के लाये हुए फूलों को निहारती रहती हूं. यहां वे फूल नहीं हैं तो बड़ा सूना-सूना-सा लग रहा है.

पता नहीं संजय, तुम इस समय क्या कर रहे हो. तीन दिन हो गये किसी ने बाहों में भरकर प्यार तक नहीं किया.

कलकत्ता

आज सवेरे मेरा इंटरव्यू हो गया. मैं शायद बहुत नर्वस हो गयी थी और जैसे उत्तर मुझे देने चाहिए, वैसे नहीं दे पायी, पर निशीथ ने आकर बताया कि मेरा चुना जाना करीब-करीब तय हो गया है. मैं जानती हूं, यह सब निशीथ की वजह से ही हुआ.

ढलते सूरज की धूप निशीथ के बायें गाल पर पड़ रही थी और सामने बैठा निशीथ इतने दिन बाद एक बार फिर मुझे बड़ा प्यारा-सा लगा.

मैंने देखा, मुझसे ज्यादा वह प्रसन्न है, वह कभी किसी का एहसान नहीं लेता, पर मेरी खातिर उसने न जाने कितने लोगों का एहसान लिया. आखिर क्यों? क्या वह चाहता है कि मैं कलकत्ता आकर रहूं उसके साथ, उसके पास? एक अजीब-सी पुलक से मेरा तन-मन सिहर उठता है. वह ऐसा चाहता है? उसका ऐसा चाहना बहुत गलत है, बहुत अनुचित है..... मैं अपने मन को समझाती हूं, ऐसी कोई बात नहीं है, शायद वह केवल मेरे प्रति किये गये अन्याय का प्रतिकार करने के लिए यह सब कर रहा है, पर क्या वह समझता है कि उसकी मदद से नौकरी पाकर मैं उसे क्षमा कर दूंगी या जो कुछ उसने किया है, उसे भूल जाऊंगी? असंभव, मैं कल ही उसे संजय की बात बता दूंगी.

"आज तो इस खुशी में पार्टी हो जाए."

काम की बात के अलावा यह पहला वाक्य मैं उसके मुंह से सुनती हूं. मैं इरा की ओर देखती हूं. वह प्रस्ताव का समर्थन करके भी मुन्नू की तबीयत का बहाना लेकर अपने को काट लेती है. अकेले जाना मुझे कुछ अटपटा-सा लगता है. अभी तक तो काम का बहाना लेकर घूम रही थी, पर अब? फिर भी मैं मना नहीं कर पायी. अंदर जाकर तैयार होती हूं. मुझे याद आता है, निशीथ को नीला रंग बहुत पसंद था, मैं नीली साड़ी ही पहनती हूं. बड़े चाव और सतर्कता से अपना प्रसाधन करती हूं और बार-बार अपने को टोकती जाती हूं—किसको रिझाने के लिए यह सब हो रहा है? क्या यह निरा पागलपन नहीं है?

सीढ़ियों पर निशीथ हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहता है, "इस साड़ी में तुम बहुत सुंदर लग रही हो."

मेरा चेहरा तमतमा जाता है, कनपटियां सुर्ख हो जाती हैं. मैं सचमुच ही इस वाक्य के लिए तैयार नहीं थी. यह सदा चुप रहने वाला निशीथ बोला भी तो ऐसी बात.

मुझे ऐसी बातें सुनने की जरा भी आदत नहीं है. संजय न कभी मेरे कपड़ों पर ध्यान देता है, न ऐसी बातें करता है, जबकि उसे पूरा अधिकार है. और यह बिना अधिकार ऐसी बातें करे. . .

पर जाने क्या है कि मैं उस पर नाराज नहीं हो पाती हूं, बल्कि एक पुलकमय सिहरन महसूस करती हूं. सच, संजय के मुंह से ऐसा वाक्य सुनने को मेरा मन तरसता रहता है. पर उसने कभी ऐसी बात नहीं की. पिछले ढाई साल से मैं संजय के साथ रह रही हूं. रोज ही शाम को हम घूमने जाते हैं. कितनी ही बार मैंने शृंगार किया, अच्छे कपड़े पहने, पर प्रशंसा का एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं सुना. इन बातों पर उसका ध्यान ही नहीं जाता, वह देखकर भी जैसे यह सब नहीं देख पाता. इस वाक्य को सुनने के लिए तरसता हुआ मेरा मन जैसे रस से नहा जाता है, पर निशीथ ने यह बात क्यों कही? उसे क्या अधिकार है?

जाने कैसी मजबूरी है, कैसी विवशता है कि मैं इस बात का जवाब नहीं दे पाती हूं. निश्चयात्मक दृढ़ता से नहीं कह पाती कि साथ चलते इस व्यक्ति को सचमुच ही मेरे विषय में ऐसी अवांछित बात कहने का कोई अधिकार नहीं है.

हम दोनों टैक्सी में बैठते हैं. मैं सोचती हूं, आज मैं इसे संजय की बात बता दूंगी.

"स्काई रूम." निशीथ टैक्सीवाले को आदेश देता है.

'टुन' की घंटी के साथ मीटर डाउन होता है और टैक्सी हवा से बात करने लगती है. निशीथ बहुत सतर्कता से कोने में बैठा है, बीच में इतनी जगह छोड़कर कि यदि हिचकोला खाकर भी टैक्सी रुके तो हमारा स्पर्श न हो. हवा के झोंके से मेरी रेशमी साड़ी का पल्लू उसके समूचे बदन को स्पर्श करता हुआ उसकी गोदी में पड़कर फरफराता है. वह उसे हटाता नहीं है. मुझे लगता है, यह रेशमी, सुवासित पल्लू उसके तन-मन को रस में भिगो रहा है, यह स्पर्श उसे पुलकित कर रहा है, मैं विजय के अकथनीय आल्हाद से भर जाती हूं.

चाहकर भी मैं संजय की बात नहीं कह पाती. अपनी इस विवशता पर मुझे भी खीज आती है, पर मेरा मुंह है कि खुलता ही नहीं. मुझे लगता है कि मैं जैसे कोई बहुत बड़ा अपराध कर रही होऊं, पर फिर भी बात मैं नहीं कह सकती.

यह निशीथ कुछ बोलता क्यों नहीं? उसका यों कोने में दुबककर निर्विकार भाव से बैठे रहना मुझे कतई अच्छा नहीं लगता. एकाएक ही मुझे संजय की याद आने लगती है. इस समय वह यहां होता तो उसका हाथ मेरी कमर में लिपटा होता. यों सड़क पर ऐसी हरकतें मुझे स्वयं पसंद नहीं, पर आज जाने क्यों, किसी की बाहों की लपेट के लिए मेरा मन ललक उठता है, मैं जानती हूं कि जब निशीथ बगल में बैठा हो, उस समय ऐसी इच्छा करना या ऐसी बात सोचना भी कितना अनुचित है, पर मैं क्या करूं? जितनी द्रुत-गति से टैक्सी चली जा रही है, मुझे लगता है, उतनी ही द्रुतगति से मैं भी बही जा रही हूं, अनुचित, अवांछित दिशाओं की ओर.

टैक्सी झटका खाकर रुकती है तो मेरी चेतना लौटती है. मैं झटके से दाहिनी ओर का फाटक खोलकर कुछ इस हड़बड़ी से उतर पड़ती हूं, मानो अंदर निशीथ मेरे साथ कोई बदतमीजी कर रहा हो.

"अजी, इधर से उतरना चाहिए कभी." टैक्सीवाला कहता है तो अपनी गलती का भान होता है. उधर निशीथ खड़ा है, इधर मैं, बीच में टैक्सी.

पैसे लेकर टैक्सी चली जाती है तो हम दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने हो जाते हैं. एकाएक ही मुझे खयाल आता है कि टैक्सी के पैसे आज तो मुझे देने चाहिए थे, पर अब क्या हो सकता था? चुपचाप हम दोनों अंदर जाते हैं. आस-पास बहुत कुछ है. चहल-पहल, रोशनी, रौनक, पर मेरे लिए जैसे सबका अस्तित्व ही मिट जाता है. मैं अपने को सब की नजरों से ऐसे बचाकर चलती हूं, मानो मैंने कोई अपराध कर डाला हो, और कोई मुझे पकड़ न ले.

क्या सचमुच ही मुझसे कोई अपराध हो गया है?

आमने-सामने हम दोनों बैठ जाते हैं. मैं होस्ट हूं, फिर भी उसका पार्ट वही अदा कर रहा है. वही आर्डर देता है. बाहर की हलचल और उससे अधिक मन की हलचल में मैं अपने को खोया-खोया-सा महसूस करती हूं.

हम दोनों के सामने बैरा कोल्ड-कॉफी के गिलास और खाने का कुछ सामान रख जाता है. मुझे बार-बार लगता है कि निशीथ कुछ कहना चाह रहा है. मैं उसके होठों की धड़कन तक महसूस करती हूं. वह जल्दी से कॉफी का स्ट्रॉ मुंह से लगा लेता है.

मूर्ख कहीं का. वह सोचता है, मैं बेवकूफ हूं. मैं अच्छी तरह जानती हूं कि इस समय वह क्या सोच रहा है.

तीन दिन साथ रहकर भी हमने उस प्रसंग को नहीं छेड़ा. शायद नौकरी की बात ही हमारे दिमागों पर छाई हुई थी, पर आज . . आज अवश्य ही वह बात आयेगी. न आये, यह कितना अस्वाभाविक है, पर नहीं, स्वाभाविक शायद यही है. तीन साल पहले जो अध्याय सदा के लिए बंद हो गया, उसे उलटकर देखने का साहस शायद हम दोनों में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अभी भी साहित्य से रस्सा तुड़ाकर भागा नहीं हूं —बासु चटर्जी

'रजनीगंधा' जैसी सफल फिल्म के निर्देशक वासु चटर्जी ने और भी कई साफ-सुथरी, सोद्देश्य व मनोरंजक फिल्में दी हैं, लेकिन जहां उनकी फिल्में दर्शकों द्वारा सराही गयीं वहीं उन पर कई विवाद भी उठे. . . प्रस्तुत है उन्हीं विवादों के जवाब तलाशती यह बातचीत--

जब हाथों के तोते उड़ जाते हैं तो कहीं जाकर बैठते ही होंगे. हम उन्हें फौलो क्यों नहीं करते? जब नयन लड़ जाते हैं तो पुलिस केस क्यों नहीं बनता? जब प्रेम अंधा माना जाता है तो ईर्ष्यालुओं को औरों से भी ज्यादा क्यों दिखाई पड़ता है? बिल्ली को दस्ताने पहनाओगे तो वह चूहे कैसे पकड़ेगी? आंख के अंधे नाम नैनसुख. तो जिनका नाम नैनसुख है उन्हें अंधा मानना चाहिए?. . ही ही ही, देखो कितने मनोरंजक वाक्य हैं. सब के सब साहित्यिक कृतियों से लिये गये हैं. मूलतः मैं कार्टूनिस्ट हूं न. गंभीर साहित्य में से भी ऐसी झलकियां मुझे मिल जाती हैं. राजेंद्र यादव के 'सारा आकाश', मन्नू भंडारी के 'रजनी गंधा' और शरत बाबू के 'स्वामी' में यही सब कुछ देकर दर्शकों का साहित्यिक मनोरंजन करने का प्रयास किया. मैं समझता हूं यह साहित्य की ही देन है जो मेरा जीवन इस तरह रचा गया है.

इनसे आप को उत्तम नाम और आर्थिक सफलता भी मिली फिर व्यवसायी सिनेमा की ओर जाने की जरूरत क्यों महसूस हुई? 'स्कूल फार स्काउंड्रल्स' की नकल 'छोटी सी बात' बनाकर क्या अनावश्यक ही आपने झंडे नहीं डाले थे?

यही तो हमारी ट्रेजेडी है. उस फिल्म से ऐसी सफलता मिली कि भौतिक संसार में रहने का मुझे लाइसेंस मिल गया. उस फिल्म में मेरा योगदान नहीं के बराबर था और उसने ही मेरा भविष्य सुरक्षित करने में सबसे ज्यादा सहयोग दिया. वह यहूदी कहावत सुनी है? 'जिंदगी रईसों के लिए हंसी मजाक है, मूर्खों के लिए खेल है. बौद्धिक वर्ग के लिए स्वप्न है और निर्धनों के लिए यातना.' तो जिसने मुझे यातना से निवृत्ति दिलायी मेरे लिए वह किसी भी साहित्य से कम नहीं है. आपने पूछा था न, कई प्रोड्यूसर रिमेक जैसा सड़ियल काम करने क्यों खड़े हो जाते हैं? इसी आर्थिक सुरक्षा के लिए. उसी यातना से दूर भागने के लिए. वे समझते हैं कि जो फिल्म प्रथम संस्करण में सफल रही वह द्वितीय में भी रहेगी. आपको याद होगा प्यारे लाल संतोषी जैसे प्रतिभावान व्यक्ति को 'हम एक हैं' ने कुछ नहीं दिया मगर जब बाद में मुखर्जी साहब की छत्रछाया में घटिया फिल्में बनायीं तो उनका कायाकल्प ही हो गया. चिंतन शैली बदल गयी और 'मुझे राम से कोई मिला दो' लिखनेवाला 'आना मेरी जान संडे के संडे' लिखने लगा.

यूं मैं अब भी साहित्य से रस्सा तुड़ाकर भागा हुआ नहीं हूं. हर नये प्रयास के समय मेरी कोशिश साहित्य से ही कोई चीज चुनने की रहती है. अलबत्ता साथ में मुझे औरों को भी राजी करना पड़ता है.

जहां साथियों को राजी कर पाते हैं वहां पटकथा लिखने में कितनी स्वतंत्रता लेते हैं?

सिर्फ उतनी जितनी फिल्म माध्यम के लिए लेनी जरूरी होती है और जहां मेरे अंदर छिपा निर्देशक कुछ कह सकने लायक जगह खोज लेता है वहां. बहरहाल जब खुद ही कहानी पसंद करके बनाने की सोचता हूं तो उसे बिगाड़ूंगा नहीं, सजाऊंगा ही. □

प्रस्तुति : सत्यकुमारी

किसी में नहीं है? जो संबंध टूट गये, टूट गये. अब उन पर कौन बात करे? मैं तो कभी नहीं करूंगी, पर उसे तो करनी चाहिए. तोड़ा उसने था, बात भी वही आरंभ करे. मैं क्यों करूं, और मुझे क्या पड़ी है? मैं जल्दी ही संजय से विवाह करनेवाली हूं. क्यों नहीं मैं इसे अभी संजय की बात बता देती? पर जाने कैसी विवशता है, जाने कैसा मोह है कि मुंह नहीं खोल पाती. एकाएक मुझे लगता है कि जैसे उसने कुछ कहा . . .

"आपने कुछ कहा?"

"नहीं तो!"

मैं खिसिया जाती हूं.

फिर वही मौन! खाने में मेरा जरा भी मन नहीं लग रहा है; पर यंत्रचालित-सी मैं खा रही हूं. शायद वह भी ऐसे ही खा रहा है. मुझे फिर लगता है कि उसके होंठ फड़क रहे हैं और स्ट्रॉ पकड़े हुए अंगुलियां कांप रही हैं. मैं जानती हूं, वह पूछना चाहता है, 'दीपा, तुमने मुझे माफ तो कर दिया न!'

वह पूछ ही क्यों नहीं लेता? मान लो, यदि पूछ ही ले, तो क्या मैं कह सकूंगी कि मैं तुम्हें जिंदगी भर माफ नहीं कर सकती. मैं तुमसे नफरत करती हूं, मैं तुम्हारे साथ घूम-फिर ली या कॉफी पी ली, तो यह मत समझो कि मैं तुम्हारे विश्वासघात की बात को भूल गयी हूं.

और एकाएक ही पिछला सब कुछ मेरी आंखों के आगे तैरने लगता है, पर यह क्या? असह्य अपमानजनित पीड़ा, क्रोध और कटुता नहीं याद आती? मेरे सामने तो पटना में गुजरी सुहानी संध्याओं और चांदनी रातों के वे चित्र उभर आते हैं, जब घंटों समीप बैठे मौन-भाव से हम एक-दूसरे को निहारा करते थे. बिना स्पर्श किये भी जाने कैसी मादकता तन-मन को विभोर किये रहती थी, जाने कैसी तन्मयता में हम डूबे रहते थे . . . एक विचित्र-सी स्वप्निल दुनिया में . . . मैं कुछ बोलना भी चाहती तो वह मेरे मुंह पर उंगली रखकर कहता, "आत्मीयता के ये क्षण अनकहे ही रहने दो दीपा!"

आज भी तो हम मौन ही हैं, एक दूसरे के निकट ही हैं. क्या आज भी हम आत्मीयता के उन्हीं क्षणों में गुजर रहे हैं? मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर चीख पड़ना चाहती हूं नहीं! . . . नहीं! . . . नहीं! . . . पर कॉफी सिप करने के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कर पाती. मेरा यह विरोध हृदय की न जाने कौन-सी अतल गहराइयों में डूब जाता है.

निशीथ मुझे बिल नहीं देने देता. एक विचित्र-सी भावना मेरे मन में उठती है कि छीना-झपटी में किसी तरह मेरा हाथ इसके हाथ से छू जाये. मैं अपने स्पर्श से उसके मन के तारों को झनझना देना चाहती हूं, पर वैसा अवसर नहीं आता. बिल वही देता है, मुझसे तो विरोध भी नहीं किया जाता.

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में प्रचंड तूफान! पर फिर भी निर्विकार-भाव से मैं टैक्सी में आकर बैठती हूं . . . फिर वही मौन, वही दूरी, पर जाने क्या है कि मुझे लगता है कि निशीथ मेरे बहुत निकट आ गया है, बहुत ही निकट. बार-बार मेरा मन करता है कि क्यों नहीं निशीथ मेरा हाथ पकड़ लेता, क्यों नहीं मेरे कंधे पर हाथ रख देता? मैं जरा भी बुरा नहीं मानूंगी, जरा नहीं, पर वह कुछ भी नहीं करता.

सोते समय रोज की तरह मैं आज भी संजय का ध्यान करते हुए ही सोना चाहती हूं, पर निशीथ है कि बार-बार संजय की आकृति को हटाकर स्वयं आ खड़ा होता है . . .

कलकत्ता

अपनी मजबूरी पर खीझ-खीझ जाती हूं. आज कितना अच्छा मौका था सारी बात बता देने का, पर मैं जाने कहां भटकी थी कि कुछ भी नहीं बता पायी.

शाम को मुझे निशीथ अपने साथ 'लेक' ले गया. पानी के किनारे हम घास पर बैठ गये. कुछ दूर पर काफी भीड़-भाड़ और चहल-पहल थी, पर यह स्थान अपेक्षाकृत शांत था. सामने लेक के पानी में छोटी-छोटी लहरें उठ रही हैं. चारों ओर से वातावरण का कुछ विचित्र-सा भाव मन पर पड़ा था.

"अब तो तुम यहां आ जाओगी." मेरी ओर देखकर उसने कहा.

"हां."

"नौकरी के बाद क्या इरादा है?"

मैंने देखा, उसकी आंखों में कुछ जानने की आतुरता फैलती जा रही है, शायद कुछ कहने की भी. मुझसे कुछ जानकर वह अपनी बात कहेगा.

"कुछ नहीं!" जाने क्यों मैं यह कह गयी. कोई है जो मुझे कचोटे तुम्हारी है. . . . और मैं?

लगता है, इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस मुझमें नहीं है. मुझे डर है कि जिस आधार पर मैं तुमसे नफरत करती थी, उसी आधार पर कहीं मुझे अपने से नफरत न करनी पड़े.

लगता है, रात आधी से भी अधिक ढल गयी है.

मन में उत्कट अभिलाषा होते हुए भी निशीथ की आवश्यक मीटिंग की बात सुनकर मैंने कह दिया था कि तुम स्टेशन मत आना. इरा आयी थी, पर गाड़ी पर बिठाकर ही चली गयी या कहूं कि मैंने जबरदस्ती ही उसे भेज दिया. मैं जानती थी कि लाख मना करने पर भी निशीथ आयेगा और विदा के उन अंतिम क्षणों में मैं उसके साथ अकेली ही रहना चाहती थी. मन में एक दबी-सी आशा थी कि चलते समय ही शायद वह कुछ कह दे.

गाड़ी चलने में जब दस मिनट रह गये तो देखा—बड़ी व्यग्रता से डिब्बों में झांकता-झांकता निशीथ आ रहा था . . . पागल, इसे इतना तो समझना चाहिए कि उसकी प्रतीक्षा में मैं यहां बाहर खड़ी हूं.

मैं दौड़कर उसके पास जाती हूं, "आप क्यों आये?" पर मुझे उसका आना बड़ा अच्छा लगता है. वह बहुत थका हुआ लग रहा है. शायद सारा दिन बहुत व्यस्त रहा और दौड़ता-दौड़ता मुझे सी-ऑफ करने यहां आ पहुंचा. मन करता है, कुछ ऐसा करूं, जिससे इसकी सारी थकान दूर हो जाये, पर क्या करूं? हम डिब्बे के पास आ जाते हैं.

"जगह अच्छी मिल गयी?" वह अंदर झांकते हुए पूछता है.

"हां."

"पानी-वानी तो है?"

"है!"

वह पूछ ही क्यों नहीं लेता? मान लो, यदि पूछ ही ले, तो क्या मैं कह सकूंगी कि मैं तुम्हें जिंदगी भर माफ नहीं कर सकती, मैं तुमसे नफरत करती हूं. मैं तुम्हारे साथ घूम-फिर ली या कॉफी पी ली, तो यह मत समझो कि मैं तुम्हारे विश्वासघात की बात को भूल गयी हूं . . .

डाल रहा है. क्यों नहीं मैं बता देती कि नौकरी के बाद मैं संजय से विवाह करूंगी, मैं संजय से प्रेम करती हूं, वह भी मुझसे प्रेम करता है. वह बहुत अच्छा है, बहुत ही. वह मुझे तुम्हारी तरह धोखा नहीं देगा, पर मैं कुछ भी तो नहीं कह पाती. अपनी इस बेबसी पर मेरी आंखें छलछला आती हैं. मैं दूसरी ओर मुंह फेर लेती हूं.

"तुम्हारे यहां आने से मैं बहुत खुश हूं."

मेरी सांस जहां-की-तहां रुक जाती है. आगे के शब्द सुनने के लिए, पर शब्द नहीं आते. बड़ी कातर, करुण और याचना-भरी दृष्टि से मैं उसे देखती हूं, मानो कह रही होऊं कि तुम कह क्यों नहीं देते निशीथ, कि आज भी तुम मुझे प्यार करते हो, तुम मुझे सदा अपने पास रखना चाहते हो, जो कुछ हो गया है, उसे भूलकर तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो. कह दो, निशीथ, कह दो! . . . यह सुनने के लिए मेरा मन अकुला रहा है, छटपटा रहा है. मैं बुरा नहीं मानूंगी, जरा भी बुरा नहीं मानूंगी. मान ही कैसे सकती हूं निशीथ? इतना सब हो जाने के बाद भी शायद मैं तुम्हें प्यार करती हूं—शायद नहीं, सचमुच ही मैं तुम्हें प्यार करती हूं.

मैं जानती हूं—तुम कुछ नहीं कहोगे, सदा के ही मित-भाषी जो हो. फिर भी कुछ सुनने की आतुरता लिए मैं तुम्हारी तरफ देखती रहती हूं, पर तुम्हारी नजर तो लेक के पानी पर जमी हुई है . . . शांति, मौन!

आत्मीयता के ये क्षण अनकहे भले ही रह जायें, पर अनबूझे नहीं रह सकते. तुम चाहे न कहो, पर मैं जानती हूं, तुम आज भी मुझे प्यार करते हो, बहुत प्यार करते हो. मेरे कलकत्ता आ जाने के बाद इस टूटे संबंध को फिर से जोड़ने की बात ही तुम इस समय सोच रहे हो. तुम आज भी मुझे अपना ही समझते हो, तुम जानते हो, आज भी दीपा

"बिस्तर फैला लिया?"

मैं खीझ पड़ती हूं. वह शायद समझ जाता है, सो चुप हो जाता है. हम दोनों एक क्षण को एक-दूसरे की ओर देखते हैं. मैं उसकी आंखों में विचित्र-सी छायाएं देखती हूं, मानो कुछ है, जो उसके मन में घुट रहा है, उसे मथ रहा है, पर वह कह नहीं पा रहा है. वह क्यों नहीं कह देता, क्यों नहीं अपने मन की इस घुटन को हलका कर लेता?

"आज भीड़ विशेष नहीं है." चारों ओर नजर डालकर वह कहता है.

मैं भी एक बार चारों ओर देख लेती हूं, पर नजर मेरी बार-बार घड़ी पर ही जा रही है. जैसे-जैसे समय सरक रहा है, मेरा मन किसी गहरे अवसाद में डूब रहा है. मुझे कभी उस पर दया आती है तो कभी खीझ. गाड़ी चलने में केवल तीन मिनट बाकी रह गये हैं. एक बार फिर हमारी नजरें मिलती हैं.

"ऊपर चढ़ जाओ, अब गाड़ी चलनेवाली है."

बड़ी असहाय-सी नजर से मैं उसे देखती हूं, मानो कह रही होऊं, तुम्हीं चढ़ा दो . . . और फिर धीरे-धीरे चढ़ जाती हूं. दरवाजे पर मैं खड़ी हूं और वह नीचे प्लेटफार्म पर.

"जाकर पहुंच की खबर देना. जैसे ही मुझे इधर कुछ निश्चित रूप से मालूम होगा, तुम्हें सूचना दूंगा."

मैं कुछ बोलती नहीं, बस, उसे देखती रहती हूं . . .

सीटी . . . हरी झंडी . . . फिर सीटी. मेरी आंखें छलछला आती हैं. गाड़ी एक हलके-से झटके के साथ सरकने लगती है. वह गाड़ी के साथ कदम आगे बढ़ाता है और मेरे हाथ पर धीरे से अपना हाथ रख देता है. मेरा रोम-रोम सिहर उठता है. मन करता है चिल्ला पड़ूं—मैं सब समझ गयी निशीथ, सब समझ गयी. जो कुछ तुम इन चार दिनों में नहीं कह पाये, वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कह दिया. विश्वास

Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो यदि तुम मेरे हो तो मैं भी तुम्हारी हूं, केवल तुम्हारी, एकमात्र तुम्हारी . . . पर मैं कुछ कह नहीं पाती. बस, साथ चलते निशीथ को देखती-भर रहती हूं. गाड़ी के गति पकड़ते ही वह हाथ को जरा-सा दाबकर छोड़ देता है. मेरी छलछलायी आंखें मुंद जाती हैं. मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, बाकी सब झूठ है, अपने आप को भूलने का, भरमाने का, छलने का असफल प्रयास है.

आंसू-भरी आंखों से मैं प्लेटफार्म को पीछे छूटता हुआ देखती हूं. सारी आकृतियां धुंधली-सी दिखाई देती हैं. असंख्य हिलते हुए हाथों के बीच निशीथ के हाथ को, उस हाथ को, जिसने मेरा हाथ पकड़ा था, ढूंढ़ने का असफल-सा प्रयास करती हूं. गाड़ी प्लेटफार्म को पार कर जाती है, और दूर-दूर तक कलकत्ता की जगमगाती बत्तियां दिखाई देती हैं. धीरे-धीरे वे सब भी दूर हो जाती हैं, पीछे छूटती जाती हैं. मुझे लगता है यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर से कहीं दूर ले जा रही है—अनदेखी, अनजानी राहों में गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए.

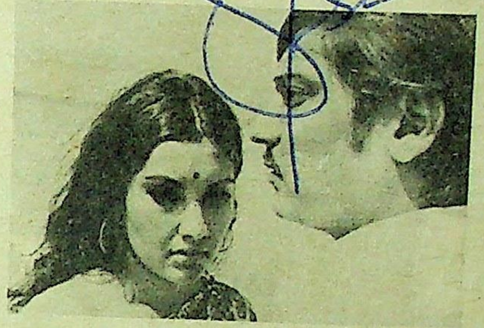

मुझे क्षमा कर दो संजय और लौट जाओ. तुम्हें मुझ जैसी अनेक दीपाएं मिल जायेंगी, जो सचमुच ही तुम्हें प्रियतम की तरह प्यार करेंगी. आज एक बात अच्छी तरह जान गयी हूं कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है.

बोझिल मन से मैं अपने फैलाये हुए बिस्तर पर लेट जाती हूं. आंखें बंद करते ही सबसे पहले मेरे सामने संजय का चित्र उभरता है . . . कानपुर जाकर मैं उसे क्या कहूंगी? इतने दिनों तक उसे छलती आयी, अपने को छलती आयी, पर अब नहीं. मैं उसे सारी बात समझा दूंगी. कहूंगी, संजय जिस संबंध को टूटा हुआ जानकर मैं भूल चुकी थी, उस की जड़ें हृदय की किन अतल गहराइयों में जमी हुई थीं, इसका एहसास कलकत्ता में निशीथ से मिलकर हुआ. याद आता है, तुम निशीथ को लेकर सदैव ही संदिग्ध रहते थे, पर तब मैं ईर्ष्यालु समझती थी, आज स्वीकार करती हूं कि तुम जीते, मैं हारी.

सच मानना संजय, ढाई साल मैं स्वयं भ्रम में थी और तुम्हें भी भ्रम में डाल रखा था, पर आज भ्रम के, छलना के सारे ही जाल छिन्न-भिन्न हो गये. मैं आज भी निशीथ को प्यार करती हूं और यह जानने के बाद, एक दिन भी तुम्हारे साथ और छल करने का दुस्साहस कैसे करूं? आज पहली बार मैंने अपने संबंधों का विश्लेषण किया तो जैसे सब कुछ ही स्पष्ट हो गया और जब मेरे सामने सब कुछ स्पष्ट हो गया तो तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊंगी, तुम्हारे सामने मैं चाहूं तो भी झूठ नहीं बोल सकती.

आज लग रहा है, तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो भी भावना है, वह प्यार की नहीं, केवल कृतज्ञता की है. तुमने मुझे उस समय सहारा दिया था, जब अपने पिता और निशीथ को खोकर मैं चूर-चूर हो चुकी थी. सारा संसार मुझे वीरान नजर आने लगा था, उस समय तुमने अपने स्नेहिल स्पर्श से मुझे जिला दिया, मेरा मुरझाया, मरा मन हरा हो उठा, मैं कृत-कृत्य हो उठी और समझने लगी कि मैं तुमसे प्यार करती हूं, पर प्यार की बेसुध घड़ियां, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल, जहां शब्द चुक जाते हैं, हमारे जीवन में कभी नहीं आये. तुम्हीं बताओ, आये कभी? तुम्हारे असंख्य आलिंगनों और चुंबनों के बीच भी, एक क्षण के लिए भी तो मैंने कभी तन-मन की सुध बिसरा देनेवाली पुलक या मादक मादकता का अनुभव नहीं किया.

सोचती हूं, निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में एक विराट शून्यता आ गयी थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की. तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी.

मुझे क्षमा कर दो संजय और लौट जाओ. तुम्हें मुझ जैसी अनेक दीपाएं मिल जायेंगी, जो सचमुच ही तुम्हें प्रियतम की तरह प्यार करेंगी. आज एक बात अच्छी तरह जान गयी हूं कि प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है. बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का, भरमाने का प्रयास-मात्र होता है . . .

इसी तरह की असंख्य बातें मेरे दिमाग में आती हैं, जो मैं संजय से कहूंगी. कह सकूंगी यह सब? लेकिन कहना तो होगा ही. उसके साथ अब एक दिन भी छल नहीं कर सकती. मन से किसी और की आराधना करके तन से उसकी होने का अभिनय करती रहूं? छि . . . .

नहीं जानती, यही सब सोचते-सोचते मुझे कब नींद आ गयी. लौटकर अपना कमरा खोलती हूं तो देखती हूं, सब कुछ ज्यों का त्यों है, सिर्फ फूलदान के रजनीगंधा मुरझा गये हैं. कुछ फूल झड़कर जमीन पर इधर-उधर बिखर भी गये हैं.

आगे बढ़ती हूं तो जमीन पर पड़ा एक लिफाफा दिखाई देता है. संजय की लिखाई है, खोला तो छोटा-सा पत्र था.

दीपा,

तुमने तो कलकत्ता जाकर कोई सूचना ही नहीं दी. मैं आज ऑफिस के काम से कटक जा रहा हूं. पांच-छः दिन में लौट आऊंगा. तब तक तुम आ ही जाओगी. जानने को उत्सुक हूं कि कलकत्ता में क्या हुआ.

तुम्हारा
संजय

एक लंबा निःश्वास निकल आता है. लगता है, एक बड़ा बोझ हट गया. इस अवधि में तो मैं अपने को अच्छी तरह तैयार कर लूंगी.

नहा-धोकर सबसे पहले मैं निशीथ को पत्र लिखती हूं. उसकी उपस्थिति से जो हिचक मेरे होंठ बंद किये हुए थी, दूर रहकर वह अपने आप ही टूट जाती है. मैं स्पष्ट शब्दों में लिख देती हूं कि चाहे उसने कुछ नहीं कहा, फिर भी मैं सब कुछ समझ गयी हूं. साथ ही यह भी लिख देती हूं कि मैं उसकी उस हरकत से बहुत दुखी थी, बहुत नाराज भी, पर उसे देखते ही जैसे सारा क्रोध बह गया. इस अपनत्व में क्रोध भला टिक भी कैसे पाता? लौटी हूं, तब से न जाने कैसी रंगीनी और मादकता मेरी आंखों के आगे छायी है . . . !

एक खूबसूरत से लिफाफे में उसे बंद करके मैं स्वयं पोस्ट करने जाती हूं. रात में सोती हूं तो अनायास ही मेरी नजर सूने फूलदान पर जाती है. मैं करवट बदलकर सो जाती हूं.

कानपुर

आज निशीथ को पत्र लिखे चौथा दिन है. मैं तो कल ही उसके पत्र की राह देख रही थी, पर आज भी दोनों डाकें निकल गयीं. जाने कैसा सूना-सूना, अनमना-अनमना लगता रहा सारा दिन. किसी भी तो काम में जी नहीं लगता. क्यों नहीं लौटती डाक से ही उत्तर दे दिया उसने? समझ में नहीं आता, कैसे समय गुजारूं.

मैं बाहर बालकनी में जाकर खड़ी हो जाती हूं. एकाएक खयाल आता है, पिछले ढाई सालों से करीब इसी समय, यहीं खड़े होकर संजय की प्रतीक्षा की है. क्या आज मैं संजय की प्रतीक्षा कर रही हूं या मैं निशीथ के पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूं. शायद किसी की नहीं, क्योंकि जानती हूं कि दोनों में से कोई भी नहीं आयेगा. फिर?

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुद्देश्य-सी कमरे में लौट पड़ती हूं. शाम का समय मुझसे घर में नहीं काटा जाता. रोज ही तो संजय के साथ घूमने निकल जाया करती थी. लगता है, यहीं बैठी रही तो दम ही घुट जायेगा. कमरा बंद करके मैं अपने को धकेलती-सी सड़क पर ले आती हूं. . . शाम का धुंधलका मन के बोझ को और भी बढ़ा देता है. कहां जाऊं? लगता है जैसे मेरी राहें भटक गयी हैं, मंजिल खो गयी है. मैं स्वयं नहीं जानती, आखिर मुझे जाना कहां है. फिर भी निरुद्देश्य-सी चलती रहती हूं, पर आखिर कब तक यों भटकती रहूं? हारकर लौट पड़ती हूं.

आते ही मेहता साहब की बच्ची तार का एक लिफाफा देती है. धड़कते दिल से मैं उसे खोलती हूं. इरा का तार था.

नियुक्ति हो गयी है. बधाई.

इतनी बड़ी खुशखबरी पाकर भी जाने क्या है कि खुश नहीं हो पाती. यह खबर तो निशीथ भेजनेवाला था. एकाएक ही एक विचार मन में आता है. क्या जो कुछ मैं सोच गयी, वह निरा भ्रम ही था, मात्र मेरी कल्पना, मेरा अनुमान. नहीं-नहीं. उस स्पर्श को मैं भ्रम कैसे मान लूं, जिसने मेरे तन-मन को डुबो दिया था, जिसके द्वारा उसके हृदय की एक एक परत मेरे सामने खुल गयी थी? लेक पर बिताये उन मधुर क्षणों को भ्रम कैसे मान लूं, जहां उसका मौन ही मुखरित होकर सब कुछ कह गया था? आत्मीयता के वे अनकहे-क्षण. तो फिर उसने पत्र क्यों नहीं लिखा. क्या कल उसका पत्र आयेगा? क्या आज भी उसे वही हिचक रोके हुए है?

तभी सामने की घड़ी टन्-टन्-टन् करके नौ बजाती है. मैं उसे देखती हूं. यह संजय की लायी हुई है . . . लगता है जैसे यह घड़ी घंटे सुना-सुनाकर मुझे संजय की याद दिला रही है. फहराते ये हरे पर्दे, यह हरी बुक-रैक, यह टेबल, यह फूलदान, सभी तो संजय के ही लाये हुए हैं. मेज पर यह पेन उसने मुझे साल-गिरह पर लाकर दिया था.

अपनी चेतना के इन बिखरे सूत्रों को समेटकर मैं फिर पढ़ने का प्रयास करती हूं. पर पढ़ नहीं पाती, हारकर मैं पलंग पर लेट जाती हूं.

सामने फूलदान का सूनापन मेरे मन के सूनेपन को और अधिक बढ़ा देता है. मैं कसकर आंखें मूंद लेती हूं . . . एक बार फिर मेरी आंखों के आगे लेक का स्वच्छ, नीला जल उभर आता है, जिसमें छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं. उस जल की ओर देखते हुए निशीथ की आकृति उभर कर आती है. वह लाख जल की ओर देखे, पर चेहरे पर अंकित उसके मन की हलचल को मैं आज भी, इतनी दूर रहकर भी, महसूस करती हूं. कुछ न कह पाने की मजबूरी, उसकी विवशता, उसकी घुटन आज भी मेरे सामने साकार हो उठती है. धीरे-धीरे लेक के पानी का विस्तार सिमटता जाता है, और एक छोटी-सी राइटिंग टेबुल में बदल जाता है, और मैं देखती हूं कि एक हाथ में पेन लिए और दूसरे हाथ की उंगलियों को बालों में उलझाये निशीथ बैठा है . . . वही मजबूरी, वही विवशता, वही घुटन लिए. . .वह चाहता है, पर जैसे लिख नहीं पाता. वह कोशिश करता है, पर उसका हाथ बस कांपकर रह जाता है . . .ओह! लगता है, उसकी घुटन मेरा दम घोंटकर रख देगी . . . मैं एकाएक ही आंखें खोल देती हूं. वही फूलदान, पर्दे, मेज, घड़ी . . . !

कानपुर

आखिर आज निशीथ का पत्र आ गया. धड़कते दिल से मैंने उसे खोला. इतना छोटा-सा पत्र!

प्रिय दीपा,

तुम अच्छी तरह पहुंच गयी यह जानकर प्रसन्नता हुई.

तुम्हें अपनी नियुक्ति का तार तो मिल ही गया होगा. मैंने कल ही इराजी को फोन करके सूचना दे दी थी, और उन्होंने बताया था कि तार दे देंगी. आफिस की ओर से भी सूचना मिल जायेगी.

इस सफलता के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करना. सच, मैं बहुत खुश हूं कि तुम्हें यह काम मिल गया. मेहनत सफल हो गयी. शेष फिर.

शुभेच्छु
निशीथ

बस? धीरे-धीरे पत्र के सारे शब्द आंखों के आगे लुप्त हो जाते हैं, रह जाता है केवल 'शेष फिर!'

तो अभी उसके पास 'कुछ' लिखने को शेष है? क्यों नहीं लिख दिया उसने अभी? क्या लिखेगा वह?

"दीप!"

मैं मुड़कर दरवाजे की ओर देखती हूं, रजनीगंधा के ढेर सारे फूल लिये मुस्कराता-सा संजय खड़ा है. एक क्षण में संज्ञा-शून्य-सी उसे इस तरह देखती हूं, मानो पहचानने की कोशिश कर रही होऊं. वह आगे बढ़ता है तो खोई चेतना लौटती है और विक्षिप्त-सी दौड़कर मैं उससे लिपट जाती हूं.

"क्या हो गया है तुम्हें, पागल हो गयी हो क्या?"

"तुम कहां चले गये थे संजय?" और मेरा स्वर टूट जाता है. अनायास ही आंखों से आंसू बह चलते हैं.

"क्या हो गया? कलकत्ता का काम नहीं मिला क्या? . . मारो भी गोली काम को. तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो उसके लिए?"

पर मुझसे कुछ नहीं बोला जाता. बस, मेरी बांहों की जकड़ कसती जाती है. कसती जाती है. रजनीगंधा की महक धीरे-धीरे मेरे तन-मन पर छा जाती है. तभी मैं अपने भाल पर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूं, और मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था . . .

और हम दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बंधे रहते हैं—चुंबित, प्रतिचुंबित! □

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मिलने लगा है

डीलक्स निरोध

चिकनाईयुक्त

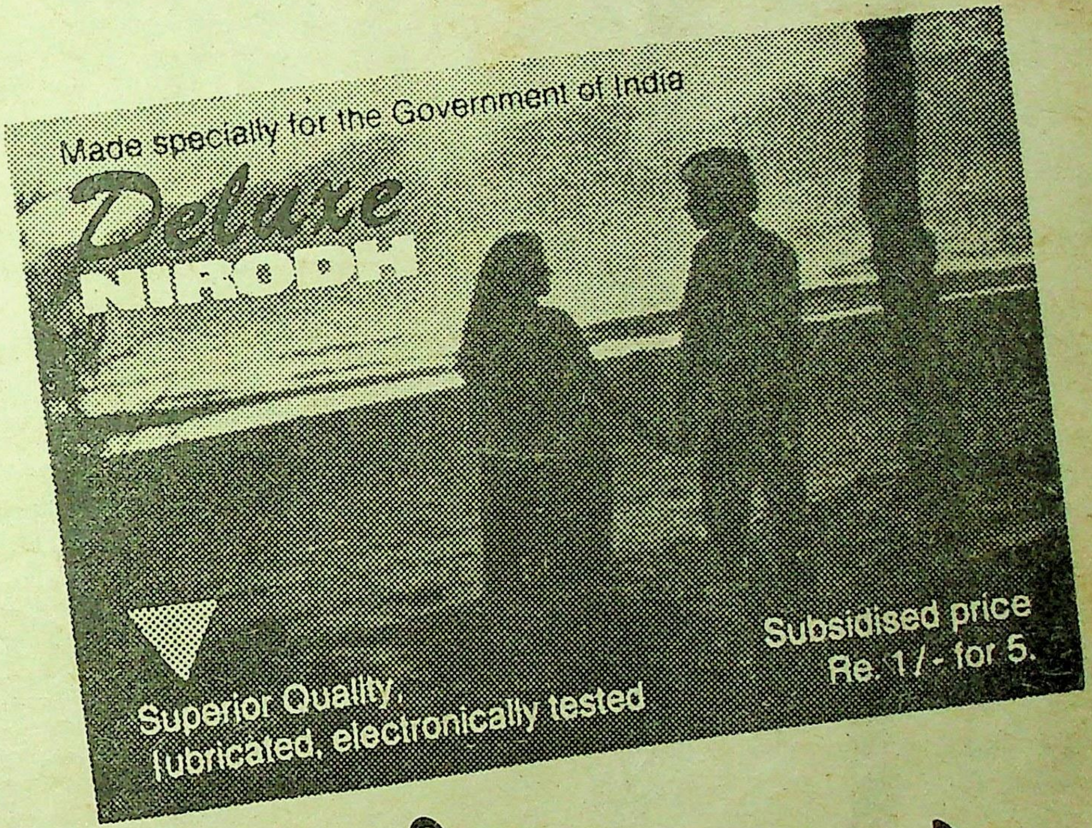

बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

1 रु० के 5

*उत्तम कोटि

*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 84/28

CC-0. In Public Do

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है व्यावसायिक विश्व में साहित्य का स्थान

—प्रस्तुति : सत्य कुमारी

आम धारणा है कि सिनेमा में साहित्य अपना वह स्थान नहीं बना पाया, जो कि उसे वास्तव में अब तक बना लेना चाहिए था. पर ऐसा क्यों नहीं हुआ?—प्रस्तुत है तीन विशिष्ट फिल्मकारों से बातचीत के तहत उनकी राय और टिप्पणियां कि साहित्य उनकी 'फिल्म-शैली' में किस रूप में समाहित हो पाता है और वे उसका फिल्मांकन किस अंदाज से करते हुए, क्या कुछ कर गुजरना चाहते हैं—

साहित्यिक रचना को आम दर्शकों की रुचि में नहीं उतारा जा सकता

—अरुणा विकास (देसाई)

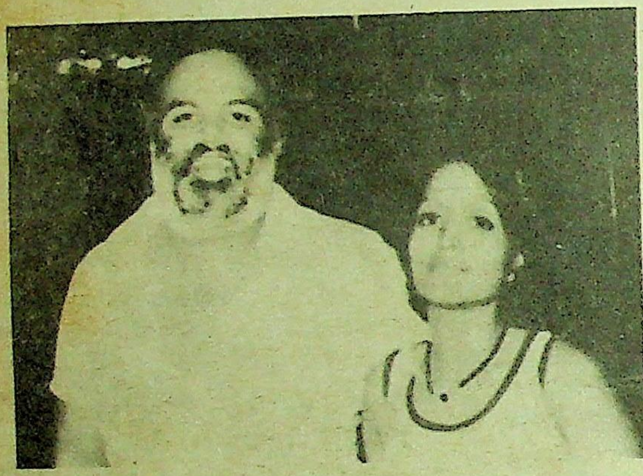

हमारी ये त्रासदी है कि साहित्य से कहानियां लेकर फिल्माना चाहते हैं और उनमें अपनी मरजी से कुछ भी हेर-फेर करने की स्वतंत्रता भी चाहते हैं. इसमें सिद्ध लेखकों को तो आपत्ति होना स्वाभाविक है. . . मगर वास्तव में फिल्म माध्यम को ध्यान में रखकर रची हुई कृतियां कितनी हैं?

जिस अंग्रेजी उपन्यास पर 'शक' आधारित थी वह तो स्वयंसिद्ध था. उसमें तो आपको कहीं भी कुछ बदलने की जरूरत नहीं पड़ी. . . और अंत में जहां बदला वहीं फिल्म मार खा गयी.

यह आपका खयाल है. अव्वल तो हमने कहीं यह नहीं स्वीकारा कि वह अंग्रेजी उपन्यास से लिया गया था. अतः बदलने का सवाल ही पैदा नहीं होता. हम तो यही कहेंगे कि उत्तम साहित्य की पेशकश करने में हम आम दर्शकों के स्तर तक नहीं पहुंच पाये. वैसे यह भी सही है कि अंग्रेजी उपन्यासों में पटकथा अनायास ही आती हुई दिखायी पड़ती है. और हिंदी में जो लेखक पटकथा की नजर से उपन्यास लिख रहे हैं उनमें न तो भाषा का लालित्य मिलता है न नवीनता का और न स्वाभाविक प्रवाह-वाली घटनाओं का.

तो क्या 'गहराई' में वह सब एक साथ मिला था?

'गहराई' अक्षरशः रुपया कमाने के इरादे से गढ़ी गयी थी. हमारा और निर्माता का भी यह खयाल था कि 'ओमेन' शैली की फिल्म हमारे दर्शकों को खूब पसंद आनी चाहिए.

मगर आयी नहीं.

इसलिए कि हमने उसे भी कलात्मक और साहित्य का परिवेश देने की कोशिश की. वास्तव में हमें इस बात को कतई भूल जाना चाहिए कि साहित्यक रचना को आम दर्शकों की रुचि में उतारा जा सकता है. जब तक इस कॉकटेल से नहीं बचेंगे तब तक हम दलदल से निकल नहीं पायेंगे. अब देखिए जब हम ही अपने काम के प्रति ईमानदार नहीं हैं तो भला. .

खैर छोड़िए इस चर्चा को. कई साहित्यिक रचनाओं पर उत्तम और सफल फिल्में बनी हैं. 'देवदास.' . .

'देवदास' ही नहीं शरत बाबू की लगभग सब कहानियां फिल्मायी जा चुकी हैं. रवींद्रनाथ ठाकुर की भी 'नौका डूबी' जब बंबई टाकीज में 'मिलन' बनकर आयी तो सफल रही थी. मगर ये सब खजाने खत्म हो गये. अब उन्हें कब तक बार-बार फिल्माते रहेंगे. 'साहब बीवी और गुलाम' भी झंडे नहीं गाड़ सकी जबकि गुरुदत्तजी ने उसे सर्वांग सुंदर बनाया था. बंबई के फिल्म व्यवसाय में जो निर्माता पैसों में खेल रहे हैं और उसके बल पर नाम, इज्जत, पोजीशन पा रहे हैं उन्होंने कभी फूटी आंखों भी किसी साहित्यिक रचना को देखने की जरूरत नहीं समझी. वे यही दावा करते हैं कि फिल्म माध्यम को सही संदर्भ में उन्होंने समझा है. फिल्म में कहानी का नगण्य-सा महत्व है. पूछ लीजिए मनमोहन देसाई, प्रकाश मेहरा, प्रमोद चक्रवर्ती, नासिर हुसैन, शशधर मुखर्जी, सुबोध मुखर्जी, जी. पी. सिप्पी, रमेश सिप्पी, एन. एन. सिप्पी, बी. आर. चोपड़ा, यश चोपड़ा और हैदराबाद, मद्रास तथा त्रिवेंद्रम के सभी प्रोड्यूसरों से. . .

'अर्थ' से मैं अपने फार्म में आया

—महेश भट्ट

मैं तो इसे संयोग ही कहूंगा कि जो फिल्में मैंने बनायी वे साहित्य से ली हुई लगती हैं. हिंदुस्तानी फिक्शन में जो कुछ पढ़ने को मिला वह आमतौर पर आदर्शवाद की चाशनी में पका हुआ मिला, जिससे मैं दूर भागता हूं. मेरे सीनियर रिश्तेदारों को यह शिकायत रही है कि मेरा दिमाग बस आउट लाइन की बातें ही सोचता है. शायद उसकी वजह यह रही हो कि मेरे पिताश्री और दूसरे संबंधी जो फिल्मों से जुड़े हुए थे आमतौर पर पौराणिक फिल्में बनाया करते थे. रणजीत स्टूडियोवाले रत्तीभाई पुनातर तो साफ कहते थे कि मेरी चिंतन-शैली ही भ्रष्ट है. वास्तव में मैं वह सब कुछ ढूंढ़ता था जो दीन-दुनिया में होता हुआ देखता हूं.

यानी जैसे देव आनंद ने आर. के नारायण के उपन्यास पर 'गाइड' बनायी थी. वैसी. . ."

कुछ-कुछ. . .वैसे देखिए उसकी नायिका की प्रेक्टिकल परेशानी थी अपने पति की व्यस्तता से उपजी बोरियत और शारीरिक असंतुष्टि. ऐसे विषय पर तब फिल्में नहीं बनती थीं.

काश, वह कहानी महेश भट्ट बनाते तो विजय आनंद ने जो कुछ बदलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

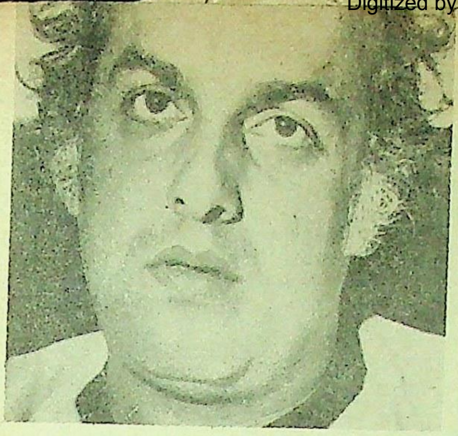

उजली चादर में ढक देने का प्रयास किया वह नहीं होता और इसी बात पर विजय आनंद की आलोचना भी हुई. खैर, फिलहाल हम विषय से न हटें. 'मंजिलें और भी हैं' अमरीकी पुरस्कृत फिल्म 'बुच केसिडी एंड सन डांस किड' से. . .

. . .उसकी नकल हरगिज नहीं थी प्रभावित जरूर थी. वह वास्तव में उत्तम साहित्य था. यों अपराध फिल्म थी मगर उसने कितने ही टेक्निकल ईनाम जीते थे. और वह फिल्म किस तरह बन पायी इसकी अलहदा से एक फिल्म तैयार की गयी थी. खैर, 'मंजिलें. . .'ने नाम दिया न पैसा. वह मेरी जबरदस्त हार थी. फिर 'लहू के दो रंग' जैसी निपट व्यवसायी फिल्म बनाकर जीने का जुगाड़ जुटाया. हां 'अर्थ' से मैं अपनी फार्म में आ गया.

अनायास ही या कोशिश करके?

बहुत कोशिश करके. मालूम है, वह फिल्म न जाने किन-किन तकलीफों में बनायी और आखिर तक कोई डिस्ट्रीब्यूटर लेने को नहीं आया. उन्हें साहित्य जैसी कृतियों से इस कदर चिढ़ होती है. उस परेशानी से बचने के लिए ही मुझे 'सारांश' के लिए ऐसा प्रोड्यूसर ढूंढना पड़ा जिसके पास विश्व भर में डिस्ट्रीब्यूशन दफ्तर हैं, थियेटर हैं और कैसी भी फिल्म बनाने लायक रुपया भी है. सुविधाएं मुझे न मिलतीं तो यह तय ही था कि 'सारांश' नहीं बन पाती.

ये दोनों फिल्में भले ही किसी साहित्यिक कृति पर आधारित न हों पर उत्तम साहित्यक हैं.

कोशिश तो यही रहेगी कि ऐसे ही उत्तम कथ्यों पर फिल्में बनायें. अब देखना है उनको बनाने के लिए साधन उपलब्ध होते रहते हैं या नहीं. देखिए, देव आनंद ने 'गाइड' के बाद साहित्यिक रचना पर कोई फिल्म नहीं बनायी. बी. आर. चोपड़ा ने 'धर्मपुत्र' के बाद वैसा कुछ नहीं बनाया. साधन मिलते रहना बहुत बड़ी बात है. और तो और, राजकपूर तक ने सर्वोत्तम जर्मन पुरस्कार पानेवाली 'जागते रहो' जैसी साहित्यिक फिल्म बनाने के बाद वैसा कोई प्रयास नहीं किया. यह है व्यवसायिक विश्व में साहित्य का स्थान. □

मैं लेखक को निर्देशक से ऊपर स्थान देता हूं

—गोविंद निहलानी

—प्रस्तुति : महेंद्र सरल

जिसमें दर्शकों का हित निहित हो वैसी फिल्म यदि कलात्मकता से बनायी जाये तो वह साहित्यिक परिवेश में नजर आती है चाहे वह किसी साहित्य पर आधारित हो चाहे काल्पनिक हो. 'आक्रोश' इसी तरह का प्रयास था जो फिल्म साहित्य में विशिष्ट स्थान पा गया है. उसी तरह यों तो 'अर्धसत्य' श्री. दा. पानवलकर की एक लघुकथा 'सूर्य' पर आधारित थी मगर पटकथा तैयार करते-करते उसके बस पात्र ही रह पाये. जो रचना तैयार हुई वह हर किसी के हृदय में बसी हूक बन गयी . . . उज्जवल साहित्य हो गयी.

'चित्रलेखा' उत्तम उपन्यास पर आधारित थी. मगर जो चुनौती 'स्वयं सिद्धा' में थी, वह लाजवाब थी. दोनों कलकत्ता में बनीं. कलात्मकता में भी पिछड़ी हुई नहीं थीं. मेरी पसंद के साहित्य में इस चुनौती का होना आवश्यक है. यों भी कह सकते हैं कि मुझे ऐसी रचनाओं में फिल्म के लिए ज्यादा उपयुक्त तत्व नजर आते हैं.

वे दोनों फिल्में दोबारा भी बनीं. मगर वह कलात्मकता, वह ईमानदारी उन संस्करणों में नहीं मिली. हालांकि पहले संस्करणों में भाषाई त्रुटियां थीं मगर उत्तम कथ्य में वे त्रुटियां दबकर रह गयी थीं. रि-मेक करते समय निर्माता के दिमाग में यह सत्य तैरता रहता है कि प्रथम संस्करण बाक्स आफिस पर सफल हुआ था, वह उसी सफलता को भुनाना चाहता है इसलिए मार खा जाता है. चाहे वह शांताराम हों, केदार शर्मा हों, बी. आर. चोपड़ा हों या शक्ति सामंत. (जिन्होंने क्रम से 'शकुंतला', 'चित्रलेखा', 'अफसाना' और 'आनंदमठ' का रि-मेक किया था)

उत्तम रचना चाहे पुस्तक रूप में हो चाहे फिल्म के रूप में साहित्य के क्षेत्र में होती है. घटिया चीजें साहित्य में भी छपती हैं फिल्मों में भी आती हैं. मुझे वह साहित्य पसंद आता है जो मुझे प्रभावित करे. जी. के. चेस्टरटन की 'निबंध' की व्याख्या मेरे लिए गुरुवाक्य है. निबंध व्यक्तिवादी होता है. मैं उसी व्यक्तिवाद को कहानी में खोजता हूं. लेखक का व्यक्तिवाद ही नवीनता लाता है. फिर उसमें यदि मानवीय परिस्थितियां हों तो क्या कहने. फिर मैं सोचने लगता हूं कि उस कहानी में ऐसी क्या बात है जो मैं भी कहने के लिए बेचैन रहता हूं.

समांतर सिनेमा में मैं ही एक हूं जो लेखक को निर्देशक से ऊपर का स्थान देता हूं. कभी भी लेखक पर हावी होने की कोशिश नहीं करता. (जो कि सभी समांतर सिनेमा के प्रतिवादी सहन नहीं करते और वे खुद ही लेखक पर हावी होना अपना अधिकार समझते हैं. सत्यजीत राय भी अब इसीलिए पिछड़ गये हैं.)

मेरी कोशिश लेखक को उभारकर पेश करने की रहती है क्योंकि मेरा भला उसी में छिपा होता है. अब देखिए 'पार्टी' में वार्तालाप ही ज्यादा है. क्यों, वह कहानी ही एक दावत की है जहां बस बातें ही होती हैं. और 'आघात' में ट्रेड यूनियनों का पक्ष-विपक्ष पेश करने की कोशिश की है. निश्चित रूप से दोनों ही 'उत्तम साहित्य' तैयार हुए हैं. मेरी हर फिल्म में एक ऐसा हीरो होता है जो परिस्थितिवश फंसता है और वहां वह अपने भावी जीवन के लिए संघर्ष का संकल्प करता है. अपने रास्ते का चुनाव करता है. फिर मैं उसे अपनी शैली में साहित्य का रूप देता हूं जिसमें फोटोग्राफी का बहुत बड़ा हाथ है. . . सौंदर्य और ले-आउट के साथ. □

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्गति

प्रेमचंद

दुखी चमार ꣲ꣰ पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया घर को गोबर से लीप रही थी. दोनों अपने-अपने काम से फुर्सत पा चुके तो चमारिन ने कहा, "तो जाके पंडित बाबा से कह आओ न? ऐसा न हो, कहीं चले जायें."

दुखी, "हां, जाता हूं, लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर?"

झुरिया, "कहीं से खटिया न मिल जायेगी? ठकुराने से मांग लाना."

दुखी, "तू तो कभी-कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है. ठकुरानेवाले मुझे खटिया देंगे? आग तक तो घर से निकलती नहीं. खटिया देंगे. कैथाने में जाकर एक.लोटा पानी मांगूं तो न मिले. भला, खटिया कौन देगा. हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही हैं कि जो चाहें, उठा ले जायें. ला, अपनी खटोली धोकर रख दें. गरमी के तो दिन हैं. उनके आते-आते सूख जायेगी."

झुरिया, "वह हमारी खटोली पर बैठेंगे नहीं. देखते नहीं, कितने नेम-धरम से रहते हैं."

दुखी ने जरा चिंतित होकर कहा, "हां, यह बात तो है. महुए के पत्ते तोड़कर एक पत्तल बना लूं तो ठीक हो जाये. पत्तल में बड़े-बड़े आदमी खाते हैं. वह पवित्तर है. ला तो डंडा, पत्त तोड़ लूं."

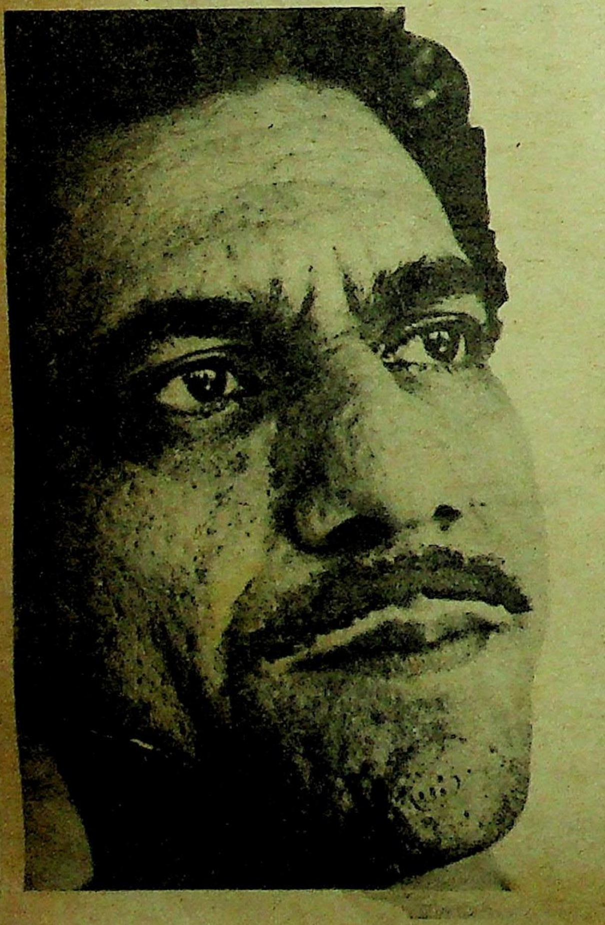

झुरिया, "पत्तल मैं बना लूंगी. तुम जाओ, लेकिन हां, उन्हें सीधा भी तो देना होगा. अपनी थाली में रख दूं."

दुखी, "कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाये और थाली भी फूटे. बाबा थाली उठाकर पटक देंगे. उनको बड़ी जल्दी किरोध चढ़ जाता है. किरोध में पंडिताइन तक को छोड़ते नहीं, लड़के को ऐसा पीटा कि आज तक टूटा हाथ लिये फिरता है. पत्तल में सीधा भी देना, हां, मुदा तू छूना मत. झरी गोंड़ की लड़की को लेकर साहू की दूकान से सब चीजें ले आना. सीधा भरपूर हो. सेर भर आटा, आधा सेर चावल, पाव भर दाल, आध पाव घी, नोन, हल्दी और पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे रख देना. गोंड़ की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़कर ले जाना. तू कुछ मत छूना, नहीं गजब हो जायेगा."

इन बातों की ताकीद करके दुखी ने लकड़ी उठायी और घास का एक बड़ा-सा गट्ठर लेकर पंडितजी से अर्ज करने चला. खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता? नजराने के लिए उसके पास घास के सिवाय और क्या था? उसे खाली हाथ देखकर तो बाबा दूर ही से दुतकारते.

पंडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे. नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते. मुंह-हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी था. उसके बाद आध घंटे तक चंदन की गोल-गोल मुद्रिकाएं बनाते. फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चंदन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घंटी बजाते. दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते. तब तक दो-चार जजमान द्वार पर आ जाते. ईशोपासन का तत्काल फल मिल जाता. यही उनकी खेती थी.

क्या प्रारंभिक नीतिकारों ने कभी सोचा होगा कि उनके द्वारा किया गया वर्ण विभाजन इतना विकृत रूप भी ले सकता है, जिसमें आदमी-आदमी के साथ जानवरों जैसा व्यवहार करने लगेगा? स्वातंत्र्य पूर्व भारत में यह व्यवस्था अपने विकृततम रूप में मौजूद थी. उसी का एक रूप प्रस्तुत किया है कथा सम्राट प्रेमचंद ने इस कहानी में, जिस पर सत्यजित राय जैसे महान फिल्मकार ने फिल्म बनायी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज वह पूजनगृह से निकले तो देखा, दुखी चमार घास का एक गट्ठा लिये बैठा है. दुखी उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और उन्हें साष्टांग दंडवत करके हाथ बांधकर खड़ा हुआ. वह तेजस्वी मूर्ति देखकर उसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया. कितनी दिव्य मूर्ति थी. छोटा-सा गोल-मटोल आदमी, चिकना सिर, फूले गाल, ब्रह्म तेज से प्रदीप्त आंखे. रोरी और चंदन देवताओं की प्रतिभा प्रदान कर रही थी. दुखी को देखकर श्रीमुख से बोले, "आज कैसे चला रे दुखिया?"

दुखी ने सिर झुकाकर कहा, "बिटिया की सगाई कर रहा हूं महाराज. कुछ साइत-सगुन विचारना है. कब मर्जी होगी?"

घासी, "आज मुझे छुट्टी नहीं. हां, सांझ तक आ जाऊंगा."

दुखी, "नहीं महाराज, जल्दी मर्जी हो जाये. सब सामान ठीक कर आया हूं. यह घास कहां रख दूं?"

घासी, "इसे गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ कर दे. यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गयी. उसे भी गोबर से लीप दे. तब तक मैं भोजन कर लूं. फिर जरा आराम करके चलूंगा. हां, यह लकड़ी भी चीर देना. खलिहान में चार खाची भूसा पड़ा है. उसे भी उठा लाना और भुसौल में रख देना."

दुखी फौरन हुक्म की तामील करने लगा. द्वार पर झाड़ू लगायी, बैठक को गोबर से लीपा. तब तक बारह बज गये. पंडितजी भोजन करने चले गये. दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था. उसे भी जोर की भूख लगी, पर वहां खाने को क्या धरा था? घर यहां से मील भर था. वहां खाने चला जाये तो पंडितजी बिगड़ जायें. बेचारे ने भूख दबायी और लकड़ी फाड़ने लगा. लकड़ी की मोटी-सी गांठ थी, जिस पर पहले कितने ही भक्तों ने अपना जोर आजमा लिया था. वह उसी दम-खम के साथ लोहे से लोहा लेने के लिए तैयार था. दुखी घास छीलकर बाजार ले जाता था. लकड़ी चीरने का उसे अभ्यास न था. घास उसके खुरपे के सामने सिर झुका देती थी. यहां कस-कसकर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ लगाता, पर उस गांठ पर निशान तक न पड़ता था. कुल्हाड़ी उलट जाती. पसीने से तर था, हांफता था, थककर बैठ जाता फिर उठता था, हाथ उठाते न उठते थे, पांव कांप रहे थे, कमर सीधी न होती थी, आंखों तले अंधेरा हो रहा था. सिर में चक्कर आ रहे थे, तितलियां उड़ रही थीं, फिर भी अपना काम किये जाता था. अगर एक चिलम तंबाकू पीने को मिल जाती तो शायद कुछ ताकत आती. उसने सोचा, यहां चिलम और तंबाकू कहां मिलेगी? ब्राह्मनों का पुरा है. ब्राह्मन लोग हम नीच जातों की तरह तमाखू थोड़े ही पीते हैं. सहसा उसे याद आया कि गांव में एक गोंड भी रहता है. उसके यहां जरूर चिलम-तमाखू होगी. तुरंत उसके घर दौड़ा. खैर, मेहनत सुफल हुई. उसने तमाखू भी दी और चिलम दी, पर आग

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां न थी. दुखी ने कहा, "आग की चिंता न करो भाई. मैं जाता हूं, पंडितजी के घर से मांग लूंगा. वहां तो अभी रसोई बन रही थी."

यह कहता हुआ वह दोनों चीजें लेकर चला आया और पंडितजी के घर में बरोठे के द्वार पर खड़ा होकर बोला, "मालिक, रचिक आग मिल जाये तो चिलम पी लें."

पंडितजी भोजन कर रहे थे. पंडिताइन ने पूछा, "यह कौन आदमी आग मांग रहा है?"

पंडित, "अरे, वही ससुरा दुखिया चमार है. कहा है, थोड़ी-सी लकड़ी चीर दे. आग तो है, दे दो."

पंडिताइन ने गरजकर कहा, "वह घर में आया क्यों?"

पंडित ने हारकर कहा, "ससुरे का अभाग था और क्या?"

पंडिताइन, "अच्छा, इस बखत तो आग दिये देती हूं, लेकिन फिर जो इस तरह कोई घर में आयेगा तो उसका मुंह ही जला दूंगी."

दुखी के कानों में इन बातों की भनक पड़ रही थी. पछता रहा था, नाहक आया. सच तो कहती है. पंडित के घर में चमार कैसे चला आये? बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग, तभी तो संसार पूछता है, तभी तो इतना मान है. भर-चमार थोड़े ही हैं. इसी गांव में बूढ़ा हो गया, मगर मुझे इतनी अकल भी न आयी.

इसलिए जब पंडिताइन आग लेकर निकलीं तो वह मानों स्वर्ग का वरदान पा गया. दोनों हाथ जोड़कर जमीन पर माथा टेकता हुआ बोला, "पड़ाइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई कि घर में चला आया. चमार की अकल ही तो ठहरी. इतने मूरख न होते तो लात क्यों खाते?"

पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लायी थीं. पांच हाथ दूर से घूंघट की आड़ से दुखी की तरफ आग फेंकी. आग की बड़ी-सी चिनगारी दुखी के सिर पर पड़ गयी. जल्दी से पीछे हटकर सिर को झोटे देने लगा. उसके मन ने कहा—यह एक पवित्तर बराहमन के घर को अपवित्तर करने का फल है. भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया. इसी से तो संसार पंडितों से डरता है. और सबके रुपये मारे जाते हैं. बराहमन के रुपये भला कोई मार तो ले. घर भर का सत्यानाश हो जाये.

बाहर आकर उसने चिलम पी और फिर कुल्हाड़ी लेकर जुट गया. खटखट की आवाजें आने लगीं.

उस पर आग पड़ गयी तो पंडिताइन को उस पर कुछ दया आ गयी. पंडितजी भोजन करके उठे तो बोलीं, "इस चमरवा को भी कुछ खाने को दे दो, बेचारा कब से काम कर रहा है. भूखा होगा."

पंडितजी ने इस प्रस्ताव को व्यावहारिक क्षेत्र समझकर पूछा, "रोटियां हैं?"

पंडिताइन, "दो-चार बच जायेंगी."

पंडित, "दो-चार रोटियों में क्या होगा? चमार है, कम से कम सेर भर चढ़ा जायेगा."

पंडिताइन कानों पर हाथ रखकर बोलीं, "अरे, बाप रे! सेर भर! तो फिर रहने दो."

दुखी ने चिलम पीकर फिर कुल्हाड़ी संभाली. दम लेने से जरा हाथों में ताकत आ गयी थी. कोई आधे घंटे तक फिर कुल्हाड़ी चलाता रहा. फिर बेदम होकर वहीं सिर पकड़ के बैठ गया.

इतने में गोंड आ गया. बोला, "क्यों जान देते हो बूढ़े दादा, तुम्हारे फाड़े यह गांठ न फटेगी. नाहक हलाकान होते हो."

सद्गति कहानी पर सत्यजित राय ने दूरदर्शन के लिए हिंदी में फिल्म बनायी थी. निर्देशन के अतिरिक्त इसकी पटकथा और संगीत भी सत्यजित राय ने ही तैयार किये. इसमें काम करने वाले कलाकारों में मुख्य थे पंडित घासीराम की भूमिका में मोहन आगाशे, दुखी चमार की भूमिका में ओम पुरी तथा झुरिया की भूमिका में स्मिता पाटिल.

दुखी ने माथे का पसीना पोंछकर कहा, "अभी गाड़ी भर भूसा ढोना है भाई."

गोंड, "कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं. जाके मांगते क्यों नहीं?"

दुखी, "कैसी बात करते हो चिखुरी, बाम्हन की रोटी हमको पचेगी?"

गोंड, "पचने को पच जायेगी, पहले मिले तो. मूछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया. जमींदार भी कुछ खाने को देता है. हाकिम भी बेगार लेता है तो थोड़ी बहुत मजूरी दे देता है. यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं."

दुखी, "धीरे-धीरे बोलो भाई, कहीं सुन लें तो आफत आ जाये." यह कहकर दुखी फिर संभल पड़ा और कुल्हाड़ी की चोट मारने लगा. चिखुरी को उस पर दया आयी. आकर कुल्हाड़ी उसके हाथ से छीन ली और कोई आध घंटे खूब कसकर-कसकर कुल्हाड़ी चलायी, पर गांठ में एक दरार भी न पड़ी. तब उसने कुल्हाड़ी फेंक दी और यह कहकर चला गया, "तुम्हारे फाड़े यह न फटेगी. जान भले निकल जाये."

दुखी सोचने लगा, बाबा ने यह गांठ कहां रख छोड़ी थी कि फाड़े नहीं फटती. कहीं दरार तक तो पड़ती नहीं. मैं कब तक इसे चीरता रहूंगा? अभी घर पर सौ काम पड़े हैं. कारज-परोजन का घर है, एक न एक चीज घटी ही रहती है, पर इन्हें क्या चिंता? चलूं, जब तक भूसा ही उठा लाऊं. कह दूंगा बाबा. आज तो लकड़ी नहीं फटी, कल आकर फाड़ दूंगा.

उसने झौवा उठाया और भूसा ढोने लगा. खलिहान यहां से दो फरलांग से कम न था. अगर झौवा खूब भर-भरकर लाता तो काम जल्द खत्म हो जाता, लेकिन फिर झौवे को उठाता कौन? अकेला भरा हुआ झौवा उससे न उठ सकता था. इसलिए थोड़ा-थोड़ा लाता था. चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ. पंडितजी की नींद भी खुली. मुंह-हाथ धोया. पान खाया और बाहर निकले. देखा, तो दुखी झौवे पर सिर रखे सो रहा है. जोर से बोले, "अरे दुखिया, तू सो रहा है? लकड़ी तो अभी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है. इतनी देर तू क्या करता रहा? मुट्ठी भर भूसा ढोने में सांझ कर दी. उस पर सो रहा है. उठ, ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल. तुझसे जरा-सी लकड़ी नहीं फटती. फिर साइत भी वैसी निकलेगी, मुझे दोष मत देना. इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसकी आंखें बदली."

दुखी ने फिर कुल्हाड़ी उठायी. जो बातें पहले से सोच रखी थीं. वह सब भूल गयीं. पेट पीठ में धंसा जाता था, आज सबेरे जलपान तक न किया था. अवकाश ही न मिला. उठना भी पहाड़ मालूम होता था. जी डूबा जाता था, पर दिल को समझाकर उठा. पंडितजी हैं, कहीं साइत ठीक न विचारें तो फिर सत्यानाश ही हो जाये. जभी तो संसार में इतना मान है. साइत ही का तो सब खेल है. जिसे चाहे बिगाड़ दें. पंडितजी गांठ के पास आकर खड़े हो गये और बढ़ावा देने लगे, "हां. मार कसके, और मार. . .कसके मार. . .अब जोर से मार. . .तेरे हाथ में तो जैसे दम ही नहीं है. . लगा कसके, खड़ा सोचने क्या लगता है. . .हां. . .बस, फटा ही चाहती है. दे उसी दरार में."

दुखी अपने होश में न था. न जाने कौन-सी गुप्त शक्ति उसके हाथों को चला रही थी. थकन, भूख, कमजोरी सब मानों भाग गयी. उसे अपने बाहुबल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था. एक-एक चोट वज्र की तरह पड़ती थी. आध घंटे तक वह इसी तरह उन्माद की दशा में हाथ चलाता रहा, यहां तक कि लकड़ी बीच से फट गयी—और दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूटकर गिर पड़ी. इसके साथ ही वह भी चक्कर खाकर गिर पड़ा. भूखा, प्यासा, थका हुआ शरीर जवाब दे गया.

पंडितजी ने पुकारा, "उठके दो-चार हाथ और लगा दे. पतली-पतली चैलियां हो जायें."

दुखी न उठा. उन्होंने भी अब उसे दिक करना उचित न समझा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक फिल्मों से अभिनय में निखार आता है

—स्मिता पाटिल

फ्रांस में रेट्रोस्पेक्टिव आयोजित होने के बाद पद्मश्री स्मिता पाटिल के साथ एक बातचीत

अब तो आप पद्मश्री स्मिता हो गयीं.

सरकार ने ये आदर इसलिए दिया होगा कि सिल्क स्मिता को और मुझे लोग एक न समझें.

फ्रांस में आपकी फिल्मों का खास सप्ताह मनाया गया. अब तक ढेर सारे इनाम भी बटोर लिये हैं. वे भी क्या सिल्क से अलग व्यक्तित्व के लिए...? (वे गंभीर हो गयीं यह सुनकर.)

तमाम श्रेय लेखकों के उत्तम चरित्रचित्रण और निर्देशकों की गहरी नजर को जाना चाहिए?

आपको नहीं?

बस उतना ही कि लेखक और निर्देशक को निराश नहीं किया.

साहित्य से ली गयी कहानियों में या हरेक में.

निराश तो कहीं भी नहीं किया. अलबत्ता मुझे संतोष उत्तम चरित्र चित्रण को खेलने में बहुत आसानी से मिल जाता है.

तो अनाड़ी चरित्र चित्रण वाली फिल्मों को स्वीकार ही क्यों करती हैं?

क्योंकि अनाड़ीपन का अंदाज शुरू में नहीं लग सकता.

और शुरू करने के बाद इनकार हो नहीं सकता

बिलकुल.

पटकथा तो 'हां' करने के पहले पढ़ती होंगी.

वह तो अक्सर फिल्म बनते-बनते भी बदली जाती रहती है.

वह सवाल फिर से सामने आता है कि जब समांतर सिनेमा से आपको नाम और पुरस्कार मिलता है तो व्यवसायी फिल्में स्वीकार ही क्यों करती हैं?

व्यवसाय के लिए. कमाने के लिए. आखिर मैं कोई साधु-संन्यासिनी तो हूं नहीं.

यानी अगर कोई साहित्यिक कहानी पर फिल्म बनाने आये और उसके पास पर्याप्त रुपया न हो तो मना कर देंगी?

अब तक तो कभी नहीं किया. हां, व्यवसायी सिनेमा के कई प्रस्ताव छोड़ चुकी हूं.

उनके मोटे पारिश्रमिक के बावजूद?

बिलकुल.

फिर भी वैसी फिल्में स्वीकार जरूर करती हैं.

उनसे अभिनय में निखार आता है. आत्म-विश्वास बढ़ता है. आखिर अभिनय हर जगह करना ही होता है, व्यवसायी सिनेमा हो या समांतर, टी. वी. फिल्म हो या रंगमंच.

आपने फिल्म अभिनय सीखने के लिए कभी कोई इंस्टीट्यूट ज्वाइन किया?

सीखी भी नहीं. मैं तो बस जैसी हूं, वैसी ही रहती हूं. वही अभिनय समझ लिया जाता है. इसे अपनी खूबी कहूं या भाग्य? ☐

प्रस्तुति : सत्य कुमारी

पंडितजी ने भीतर जाकर बूटी छानी, शौच गये, स्नान किया और पंडिताई बाना पहनकर बाहर निकले. दुखी अभी तक वहीं पड़ा हुआ था. जोर से पुकारा, "अरे, क्या पड़े ही रहोगे दुखी? चलो, तुम्हारे घर चल रहा हूं. सब सामान ठीक-ठाक है न?"

दुखी फिर भी न उठा.

अब पंडितजी को कुछ शंका हुई. पास जाकर देखा तो दुखी अकड़ा पड़ा हुआ था. बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बोले, "दुखिया तो जैसे मर गया."

पंडिताइन हकबकाकर बोलीं, "वह तो अभी लकड़ी चीर रहा था न."

पंडित, "हां, लकड़ी चीरते-चीरते मर गया. अब क्या होगा?"

पंडिताइन ने शांत होकर कहा, "होगा क्या, चमरौने में कहला भेजो, मुर्दा उठा ले जायें."

एक क्षण में गांव भर में खबर हो गयी. पूरे ब्राह्मणों की ही बस्ती थी. केवल एक घर गोंड का था. लोगों ने उधर का रास्ता छोड़ दिया. कुएं का रास्ता उधर ही से था. पानी कैसे भरा जाये. चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाये. एक बुढ़िया ने पंडितजी से कहा, "अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं? कोई गांव में पानी पियेगा या नहीं?"

इधर गोंड ने चमरौने में जाकर सबसे कह दिया, "खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना. अभी पुलिस की तहकीकात होगी. दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले लो. पंडित होंगे तो अपने घर के होंगे. लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़े जाओगे."

इसके बाद ही पंडितजी पहुंचे, पर चमरौने का कोई आदमी लाश उठा लाने को तैयार न हुआ. हां, दुखी की स्त्री और कन्या दोनों हाय-हाय करती वहां चलीं और पंडितजी के द्वार पर आकर सिर पीट-पीटकर रोने लगीं. उनके साथ दस-पांच और चमारिनें थीं. कोई रोती थी, कोई समझाती थी, पर चमार एक भी न था. पंडितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की, पर चमारों के दिल पर पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न मिनका. आखिर निराश होकर लौट आये.

आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा. देवताओं का सोना मुश्किल हो गया, पर लाश उठाने कोई चमार न आया, और ब्राह्मण चमार की लाश कैसे उठाते. भला, ऐसा किसी शास्त्र-पुराण में लिखा है? कहीं कोई दिखा दे.

पंडिताइन ने झुंझलाकर कहा, "इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली. सभों का गला भी नहीं थकता."

पंडित ने कहा, "रोने दो चुडैलों को, कब तक रोयेंगी? जीता था, तो कोई बात न पूछता था. मर गया तो कोलाहल मचाने के लिए सब आ पहुंची."

पंडिताइन, "चमार का रोना मनहूस है."

पंडित, "हां, बहुत मनहूस."

पंडिताइन, "अभी से दुर्गंध उठने लगी."

पंडित, "चमार था समुरा कि नहीं. खाद्य-अखाद्य किसी का विचार है इन सबों को?"

पंडिताइन, "इन सबों को घिन भी नहीं लगती."

पंडित, "भ्रष्ट हैं सब."

रात तो किसी तरह कटी, मगर सबेरे भी कोई चमार न आया. चमारिनें भी रो-पीटकर चली गयीं. दुर्गंध कुछ-कुछ फैलने लगी.

पंडितजी ने एक रस्सी निकाली. उसका फंदा बनाकर मुर्दे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया. अभी कुछ-कुछ धुंधला था. पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गांव के बाहर घसीट ले गये. वहां से आकर तुरंत स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का.

उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे. यही जीवन-पर्यंत की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उषावार्ता' का संवाददाता दिगू टिपणीस खर्राटे भरता हुआ सो रहा था. अचानक उसका फोन घनघनाने लगा. दिगू ने पुस्तकों के ढेर पर रखे फोन का चोंगा उठाया. आवाज आयी, "दिग्या कंबख्त! तू अभी तक सो रहा है और वहां आग लगी है. . ."

फोन अर्जुन मोरे का था. वह कह रहा था, "वित्त मंत्री विश्वास राव ने त्यागपत्र दे दिया है. दोपहर तक सी. एम. के पास पहुंच जायेगा."

"क्यों अफवाह उड़ा रहे हो?"

"क्या मतलब? कान्टैक्ट पी. एम. . पार्टी-अध्यक्ष."

अर्जुन मोरे विधायक था. वह टिप दे रहा था तो दिगू कैसे चुप पड़ा रह सकता था. उसने मन ही मन कुछ जोड़-भाग किया और उठ बैठा. चोंगा उठाकर उसने मुख्यमंत्री का नंबर मिलाया. वहां बात करने के बाद उसने वित्त मंत्री को फोन मिलाया.

दिगू कोई ऐरा-गैरा पत्रकार नहीं था. अब तक उसने चार मुख्य मंत्रियों को परखा था. उनमें से तीन को दिगू के समाचारों के आधार पर ही त्यागपत्र देने पड़े थे. राज्य की सभी छोटी-मोटी घटनाओं की, कई पेचीदा राजनीतिक मसलों की तथा ऐसी सभी गतिविधियों की बाकयदा जानकारी दिगू के पास रहा करती है. बंबई के राजनीतिक संवाददाताओं में उसकी खबर पर कोई शक कर ही नहीं सकता. विधायक ही नहीं, कई मंत्री भी दिगू से सलाह-मशवरा करते हैं. इसीलिए दो उन्मत्त सांडों को एक साथ छेड़ते हुए उसे बिल्कुल भी भय नहीं था. बल्कि वह बड़े मजे से चुस्कियां ले रहा था. कुछ ही क्षणों में वह फिर खर्राटे भरने लगा.

मराठी उपन्यास

सिंहासन

—अरुण साधू

दिगू भले ही खर्राटे भर रहा हो, लेकिन ऐसे अवसरों पर अफवाहों की जो हवा बहा करती है, उसने अब जोर पकड़ लिया था. फोन बिजी रहने लगे थे. नागपुर, बंबई, औरंगाबाद, रत्नागिरी, नासिक, अमरावती, पुणे आदि शहरों में ट्रंक-कॉलों की लाइन लग गयी थी. विधायक, मंत्रि-पद पाने के इच्छुक विधायक, असंतुष्ट दल के नेता, मंत्रीगण उनके सलाहकार, हितैषी आदि सभी लोगों में हलचल शुरू हो गयी थी, लेकिन एक सीमित दायरे के भीतर ही. सत्ता से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए, या सत्ता में जगह हासिल करने के इच्छुक—आम जनता की समस्याओं से कटे हुए व्यक्तियों का एक सीमित संसार, इस दायरे के बाहर की जनता को अभी यह खबर नहीं मिली है. इतना भर वे जानते हैं कि भीतर ही भीतर कुछ पक रहा है.

सी. एम. जग गये हैं. विधान-सभा और अपने पक्ष के समर्थक सदस्यों की सूची उलट-पुलटकर बार-बार देख रहे हैं, जरूरी नहीं कि यह काम स्वयं सी. एम. ही कर रहे हैं, क्योंकि उनके पास तो काम करनेवालों की भीड़ लगी रहती है. वित्त मंत्री का गुट तो पहले ही तैयार खड़ा है. बस, देर है तो हुक्म की—'फायर.' हमेशा की ही तरह दल के अध्यक्ष गफलत में हैं. और मामला इस कदर संगीन हो चुका है फिर 'हम बेखबर हैं' वाले लहजे में जल-भुन रहे होते हैं और सी. एम. व वित्तमंत्री के बंगलों से फोन पर 'साहब घर पर नहीं हैं' का दो टूक जवाब सुनकर तो उनका खून और भी खौल उठता है. इसीलिए स्थिति नियंत्रण से बाहर जानकर वह अखिल भारतीय अध्यक्ष के साथ दिल्ली में फोन से संपर्क स्थापित करने की फिराक में लगे रहते हैं. जरूरत पड़ने पर सीधे पी. एम. से भी लाइन मिलाने की उनकी तैयारी है. मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य खुश नजर आ रहे हैं. वे भी अपने-अपने गुटों के मोर्चे संभाले हुए हैं. विधान सभा के महत्वाकांक्षी एवं प्रभावशाली विधायक भी अब अखाड़े में उतरेंगे. कइयों को लाइसेंस चाहिए. कोई कारों की वरीयता सूची में शीर्ष स्थान पर आना चाहता है तो कोई बंबई में एकाध फ्लैट प्राप्त करना चाहता है. आम चुनावों के लिए तो अभी दो साल बाकी हैं. ऐसे मौके यदा-कदा ही हाथ लगते हैं, लेकिन जब हाथ लग ही जाते हैं तो उससे फायदा अवश्य उठा लेना चाहिए.

विधान सभा के स्पीकर नाना साहब गुप्ते आज अतिशय खिन्न और उद्विग्न लग रहे थे. विधान-सभा का वर्षाकालीन सत्र बहुत जल्द शुरू होने जा रहा था. कार्यभार बढ़ गया था. सत्र की रूपरेखा बनाना, सरकारी और गैरसरकारी बिलों की छानबीन कर उनका क्रम निर्धारित करना, प्रश्नों का क्रम निश्चित करना आदि काम चल रहे थे. फलां प्रश्न विचाराधीन रखा जाना चाहिए, फलां मसला लंबित कर देना चाहिए, फलां सवाल अतारांकित सूची में दर्ज करना चाहिए, फलां नंबर का अत्यंत असुविधाजनक मसला सत्र में विचारार्थ रखा ही नहीं जाना चाहिए आदि. उन्हें सतर्क करने वाली सूचनाएं मंत्रियों की तरफ से आ रही थीं. लेकिन ये मामूली चीजें नाना साहब के फौलादी व्यक्तित्व पर भला क्या असर डाल सकती हैं.

लेकिन आज नाना साहब के मन की शांति मिटाने वाली बातें कुछ दूसरे किस्म की और भयंकर थीं. बीते इतिहास का एक भुतहा पन्ना अपनी समूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकटता और क्रूरता के साथ फिर कभी सामने आयेगा—उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था.

नाना साहब ने स्पीकर बनते ही तकनीकी दृष्टि से दल से अपने संबंध समाप्त कर लिये थे. अब वे स्पीकर थे और सी. एम., सी. एम. थे, लेकिन सी. एम. से हुई फोन वार्ता ने उन्हें डरा दिया था.

चीफ मिनिस्टर ने सांकेतिक ढंग से फोन पर कहा था. . ."पंद्रह-सोलह साल पुरानी स्मृतियां अभी तक मेरा पीछा नहीं छोड़ रही हैं. . . लाख कोशिश के बावजूद भूले नहीं भुलायी जातीं वे घटनाएं. ये डिपार्टमेंट के लोग भी कंबख्त बड़े जल्लाद होते हैं. सब चीजें फाइलों में डाल देते हैं. . ."

और पंद्रह साल पहले जब नाना साहब स्पीकर नहीं थे तो उनके घर में एक हादसा हो गया था. समुद्र तट पर घूमते समय उनकी पत्नी लहरों में डूब-उतराकर सागर की गहराइयों में खो गयी थी, लेकिन एक प्रतिष्ठित समाज सेविका ने पुलिस में रिपोर्ट लिखायी थी कि उसने गुप्ते साहब को अपनी पत्नी को सागर में धकेलते हुए देखा है.

इस सारे झंझट से सी. एम. ने उन्हें बचाया था, क्योंकि वे उस समय

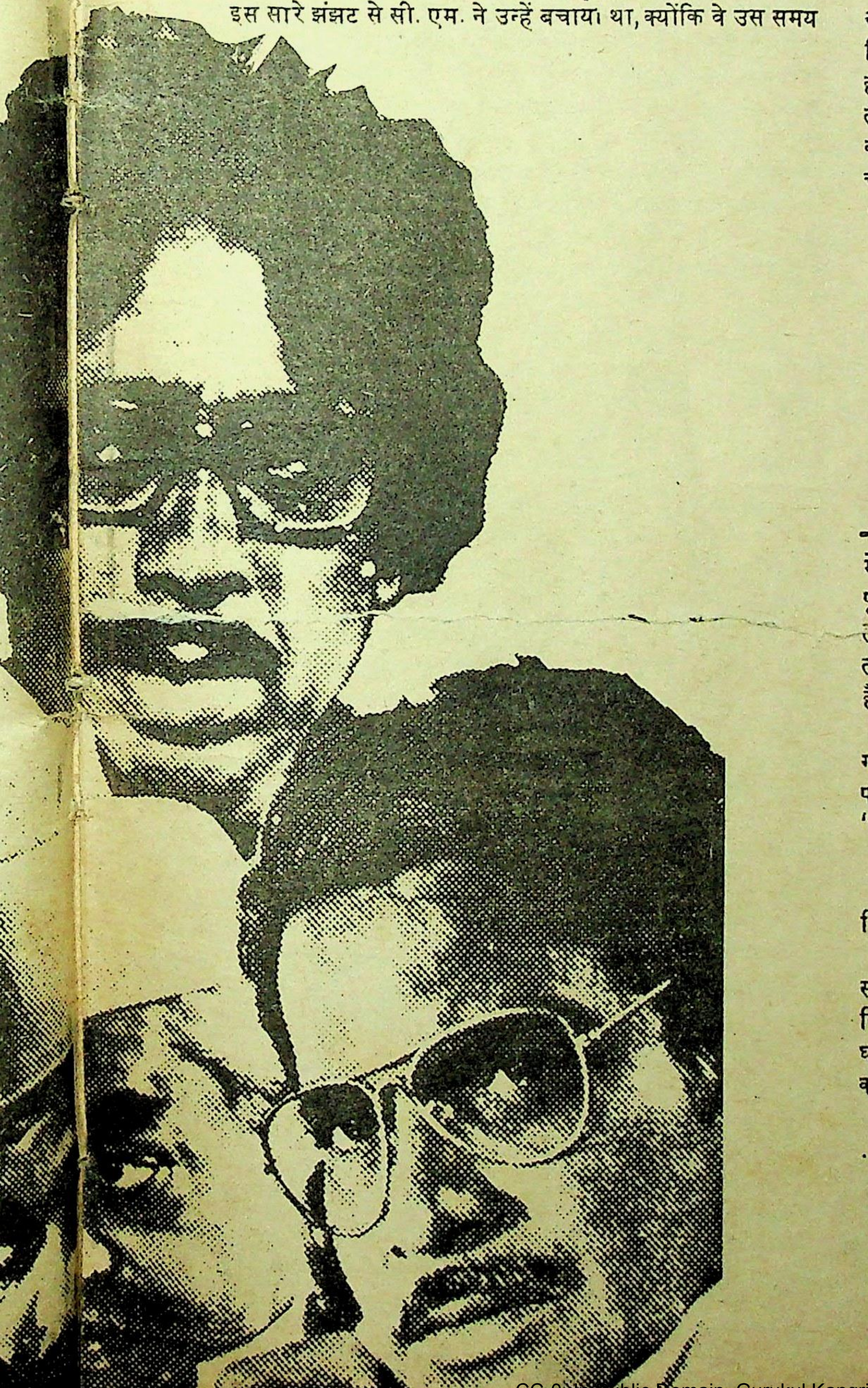

गृह मंत्री थे. समाज सेविका अस्सी.की होते हुए भी चल-फिर सकती थीं. वह जोर दे देकर बता रही थीं, "येस, आई. सॉ इट. ही पुश्ड हर. ही किल्ड हर."

सी. एम. ने मामले को शांतिपूर्वक सुलझाया था. आयुक्त को समझाया था. बुढ़िया के लड़के को घुट्टी पिलाकर बुढ़िया को उसके साथ स्विटजरलैंड भिजवा दिया था, जहां छह माह के भीतर ही वह स्वर्ग सिधार गयी थी और मामला खत्म हो गया था. कम से कम आज सवेरे सी. एम. का फोन आने तक तो नाना साहब इसी गलतफहमी में थे. लेकिन अभी यह मामला खत्म नहीं हुआ था. रहस्य को रहस्य ही बने रहने देने की कीमत सी. एम. आज मांग रहे थे.

नाना साहब के खास आदमी हैं समाज कल्याण उपमंत्री—बुधा जी गोडघाटे. वे वित्त मंत्री विश्वासराव के समर्थक माने जाते हैं. गोडघाटे निचली जाति के विधायक हैं. उनके अनेक विधायक हैं. यदि वे सी. एम. को समर्थन दें तो वित्त मंत्री को ललकारा जा सकता है.

इन्हीं बुधाजी गोडघाटे से संबद्ध एक प्रश्न रामचंद्र जाधव ने विधान सभा को भेजा था. उस प्रश्न को स्वीकर नाना साहब ने अलग रख दिया था. गोडघाटे में कई कमियां थीं. युवावस्था में इंसान गलती करता ही है. कुछ गलतियां संगीन भी हो सकती हैं. लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि उसके बल पर विधान सभा में किसी की इज्जत पर छींटा कसा जाये. इससे पहले भी ऐसे मामलों को नियम बाह्य करार दिया जा चुका है. लेकिन जाधव का सवाल बड़ा विशिष्ट था. उन्होंने अपने सवाल

यह क्यों संभव नहीं होता राजनीति में कि लोग अपने निहित स्वार्थों को छोड़कर देशहित में लग जायें? क्यों राजनेता एक-दूसरे की टांग खींचने के लिए मौके की तलाश में रहते हैं? सिंहासन के लिए ऐसी ही एक छीना-झपटी की कहानी आपको सुना रहे हैं मराठी के कथाकार अरुण साधू. इस पर मराठी में ही फिल्म भी बनायी थी युवा फिल्मकार जब्बार पटेल ने.

में केस नंबर भी लिखे थे. फिर भी उसे अलग रखने का नाना साहब का पूरा अधिकार था. सी. एम. ने ठीक उसी सवाल की ओर इशारा किया तो नाना साहब कुछ क्षणों के लिए चुप हो गये. सी. एम. ने ही मौन तोड़ते हुए कहा, "समझ गये न आप? देखिए आप क्या कुछ कर सकते हैं."

संसदीय प्रजातंत्रात्मक पद्धति के विश्वविश्रुत विद्वान गुप्ते समझ गये कि सी. एम. सवाल को आने देना चाहते हैं, लेकिन वे नियमों के पंडित हैं. स्पीकर सी. एम. के अधीन नहीं होता. इसलिए गुप्ते बोले, "इट इज डिफिकल्ट टू अकोमोडेट इट."

"अच्छा, ऐसी बात है. देख लीजिए आप. . ."

"मूलभूत बात यह है कि यहां की परंपरा के अनुसार ही नहीं, बल्कि नियमानुसार भी इस तरह के सवालों को हम स्थान नहीं देते."

और तब सी. एम. को पंद्रह वर्ष पूर्व की स्मृतियों ने आ घेरा. और स्पीकर को पुनर्विचार के लिए समय मांगना पड़ा. सी. एम. ने उन्हें समय दिया. परिणामस्वरूप टेलीफोन कर नाना साहब गुप्ते ने बुधाजी गोडघाटे को अपने घर बुला लिया. सवाल की बाबत उन्हें बताया और कहा, "तुम्हें मेरे साथ ही सी. एम. के घर चलना होगा."

बुधाजी जैसे व्याकुल हो उठे. वे बुदबुदाये, "लेकिन साहब, मैं और . . आप. . ?"

"चलना पड़ेगा तुम्हें." नाना के स्वर में दृढ़ता थी.

"और मैं न जाऊं तो?"

"तो मजबूर होकर सवाल सूची में शामिल करना पड़ेगा."

मजबूर होकर बुधाजी सी. एम. के घर जाने के लिए राजी हो गये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि मंत्री माणिकराव पाटील घर पर हीं फाइलें देख रहे थे. शाम के पौने सात बज चुके थे. तभी विधायक अर्जुन मोरे आया. माणिकराव बोले, "आज कैसे रास्ता भटक गये भाई?"

अर्जुन मोरे आश्चर्य के साथ कहने लगा, "इसका मतलब है, आपको कुछ पता ही नहीं है."

"क्यों, ऐसी कौन-सी बड़ी बात हुई है?"

मोरे ने कलाई उलटी-सीधी कर घड़ी देखी और पास के स्टूल पर रखे ट्रांजिस्टर को उठा लाया. बोला, "मेरे मुंह से सुनने के बजाय रेडियो पर ही सुन लीजिए."

थोड़ी देर में ट्रांजिस्टर पर समाचार आने लगे—

"इस बार विधान सभा का वर्षाकालीन सत्र आगामी सोमवार से शुरू करने का प्रस्ताव किया गया था. अब यह एक सप्ताह देर से शुरू होगा. राज्यपाल ने एक विशेष अधिसूचना जारी कर इस आशय की घोषणा की है. वर्षा न होने की वजह से राज्य में भयंकर सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गयी है. पत्रकारों से बातचीत करते हुए मुख्यमंत्री ने बताया कि सूखे की स्थिति से केंद्र सरकार को अवगत कराने के लिए वे कल दिल्ली जा रहे हैं. पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर देते हुए मुख्यमंत्री ने कहा कि सत्र चूंकि देर से शुरू हो रहा है, अत विधायकों की दल बैठक भी अब बाद में होगी. विधायक दल के नेता होने के नाते उन्होंने अपना यह निर्णय व्यक्त किया. एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि वित्त मंत्री श्री विश्वासराव दामाडे ने अपने पद से त्यागपत्र देने की बात मौखिक रूप से कही थी. लिखित रूप से अभी तक उन्हें त्यागपत्र प्राप्त नहीं हुआ है. इस संबंध से और सवालों का जवाब देना उन्होंने स्वीकार नहीं किया. एक अन्य प्रश्न के उत्तर में मुख्यमंत्री ने बताया कि कुछ विभागों के कार्याधिक्य को देखते हुए मंत्रिमंडल की वर्तमान सदस्य संख्या में वृद्धि किये जाने की संभावना है..."

माणिकराव ने बीच ही में ट्रांजिस्टर बंद कर लिया और वह हताश से बैठ गये. शुरू-शुरू में उन्हें कुछ बौखलाहट भी हुई. फिर एक-एक बात उनकी समक्ष में आने लगी. उनकी आंखों में खून उतरने लगा. मोरे की ओर देखते हुए कुछ जोर से ही उन्होंने कहा, "अरे, क्या वह तीसमारखां है?...कहीं वह पागल तो नहीं हो गया. सत्र आगे खिसकाने के लिए उसने किसी से पूछा भी है? आखिर मंत्रिमंडल के सदस्यों से सलाह-मशवरा तो उसे करना ही चाहिए था."

"ये हुई न बात. मैं भी तो यही कह रहा हूं मामा साहब. आपको भी यह खबर रेडियो पर सुननी पड़े, गजब है." बड़ी गंभीरता से मोरे ने आग में घी उंडेल दिया.

माणिक राव तैश में आ चुके थे. अंत में मोरे ने फिर कहा, "मान लिया, किसी कारणवश आप तक खबर नहीं पहुंच पायी, लेकिन और लोग भी तो थे."

"और लोगों से मुझे क्या लेना-देना? लेकिन सी. एम. ने मुझसे यह बात जरूर छिपायी. इसके पीछे कुछ न कुछ राज जरूर है. कंबख्त सी. एम. ने अभी मामा साहब का कमाल देखा ही कहां है."

"हां, सी. एम. को आपकी सामर्थ्य का पता ही कहां है? मामा साहब, आप विश्वासराव को फोन करके पूछ लीजिए. पता नहीं उन्हें भी सी. एम. ने खबर की थी या नहीं."

"विश्वासराव को? और मैं? मुझे क्या पड़ी है फोन करने की. उनकी गरज होगी तो वह करेंगे अपने आप."

लेकिन मोरे ने उन्हें मना लिया. उसने खुद वित्त मंत्री को फोन मिलाया और मामा साहब को चोंगा पकड़ा दिया.

"दामाडे जी, कल तो बैठक थी ही. यदि तब तक इंतजार कर लेते तो ऐसी कौन-सी आफत आ जाती?"

एक कड़ुवा घूंट निगलकर विश्वासराव ने कहा, "वेल, ही इज द चीफ मिनिस्टर."

"येस, ही इज. लेकिन देन दैट इज नो रीजन कि ही शुड नॉट कन्सल्ट हिज़ कलीग्ज, क्यों?"

यह सुनते ही विश्वासराव दामाडे बड़ी ही सौम्यता से कहने लगे, "मामा साहब, आप हमारे बड़े भाई जैसे हैं. आप पूरे अधिकार से हमें कह सकते हैं. हमारा तो कहना है कि ऐसी खतरनाक स्थिति में आप ही हमारा साहस बंधा सकते हैं. जी हां, हमारी यह हार्दिक इच्छा है. अब कुछ ज्ञान की बातें बताइए. हमें आपकी बहुमूल्य सलाह की आवश्यकता है. ऐसे सनकी आदमी से भला अपनी निभ सकती है? आप ही बताइए, मामा साहब, क्या आपके लिए यह संभव हो सकता है?"

"दामाडे जी, ठीक है, हम जैसे बूढ़ों का मखौल आप जरूर उड़ाइए. यह तो आपकी अपनी मरजी है. हम हद से हद दो साल बड़े होंगे आपसे, लेकिन राजनीति के क्षेत्र में तो आप ही हमसे ज्येष्ठ हैं. क्यों?"

"नहीं, मामा साहब. सलाह की आपको नहीं, हमें आवश्यकता है. फोन पर बात करना उचित नहीं. आप मुझे समय दीजिए."

"आपको? और समय?"

"तो अभी, इसी वक्त आ जाऊं?"

"बेशक आ जाइए."

दामाडे पल भर को ठिठक गये. फिर टोह लेने के लहजे में बोले, "दत्ताजी जाधव का फोन आया था?"

"नहीं तो, आपको?"

"मुझे भी नहीं."

उस दिन शाम के सात बजे के प्रादेशिक समाचारों से वर्तमान राजनीतिक वातावरण में कोई खास फर्क नहीं पड़ता था, राज्य के किसी शहर या गांव की दैनिक गतिविधियों में इससे कोई अंतर पड़ने वाला नहीं था. अव्वल तो औसतन नब्बे प्रतिशत लोगों ने यह समाचार सुना ही नहीं होगा.

इन समाचारों ने विधायकपुरी, मंत्रियोंके निवास स्थानों और राज्य में यत्र-तत्र फैले हुए राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं में तहलका मचा दिया था, बरं के छत्ते को छेड़ने जैसा माहौल था. विधायकपुरी में तो कई विधायक अपने कमरों से बाहर आकर, कइयों को बधाइयां देने लगे. कइयों ने फोन के चोंगे उठाये तो कुछ लोग अलग-अलग गुट बनाकर चर्चा करने लगे तो कुछ अत्यधिक सक्रिय सदस्य कार, टैक्सी या अन्य किसी भी वाहन से वांछित स्थानों पर जाने लगे.

ऐसे कौन से खास समाचार थे वे? मुंह बाये खड़े अकाल की विकराल सूचना?...ना...ना...अकाल तो यहां हर साल का मेहमान है.

सत्रारंभ में विलंब? यह भी कोई उतनी महत्वपूर्ण खबर तो है नहीं. परसों न सही, सप्ताह भर बाद सत्र शुरू होना ही है. भत्ते तो मिलने ही हैं.

बिजली के करेंट-सी उन्हें हड़बड़ाकर जगाने वाली खबर थी—मंत्रिमंडल का संभावित विस्तार. मंत्री तो अपने विभाग का सर्वेसर्वा हुआ करता है. सचिवालय की छठी मंजिल पर उसका कक्ष, फाइलें, चपरासी, सचिव, नौकर, कार, बंगला, यात्राएं, फोटो, भाषण, प्रसिद्धि, संवाददाता सम्मेलन, पत्रकारों का जमघट, सिर्फ इशारों पर नाचनेवाले अधिकारी गण. मंत्रीपद कोई मामूली चीज थोड़े ही है! अधिकतर विधायक मंत्री बनने के ही तो सपने संजोते हैं!

ठीक सात बजे जीवनराव वाघमारे नरीमन प्वाइंट की एक बेंच पर अकेले ही बैठे थे. पिछले दो-दिन वह आनंदराव टोपले का साया बने. कल रात तो वे दोनों चोरी-छिपे कैबरे भी देखने गये थे. परसों सी. एम. के साथ दो घंटे गपशप हुई और फिर खाना. सी.एम. जीवनराव और आनंदराव —सिर्फ तीन. सी. एम. तो बहुत ही भले आदमी हैं. उन दो घंटों में जीवनराव बहुत ही खुश रहे. सी. एम. ने दामाडे का जिक्र तक नहीं किया था. राजनीति के बारे में कोई बात ही नहीं हुई. इसीलिए तो जीवनराव सी. एम. पर इतना फिदा थे. आदमी बड़े शौकीन और और रसिया हैं. उनसे भला दामाडे की क्या तुलना?

आनंदराव टोपले ने उन्हें आश्वस्त किया था कि नये मंत्रिमंडल की अगली सूची में उनका नाम जरूर शामिल होगा. और मंत्री बनने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीनता को खेलने में ही हमें आनंद आता है

—नसीरुद्दीन शाह

फिल्मों में नायक की पारंपरिक छवि तोड़नेवाले अभिनेता पद्मश्री नसीरुद्दीनशाह से एक बातचीत.

जी हां, आपने ठीक ही कहा. मेरी कुछ ज्यादा ही तारीफ होने लगी है. एक्टर तो एक से एक बेहतरीन पड़े हैं मगर मेरी किस्मत यह रही कि मुझे उन डाइरेक्टरों ने लिया, जिनके चर्चे होते रहे, जो समांतर के प्रवर्तक माने जाते हैं. उन्हीं के सहारे पद्मश्री भी मिल गयी.

इसी वजह से लोग एन. एफ. डी. सी. को 'नसीरुद्दीनशाह फाइनेंस डेवेलपमेंट कंपनी' कहने लगे हैं!

अहा हा हा. . .भई खूब. सचमुच मेरा जितना भला एन. एफ. डी. सी. ने किया है, उतना व्यवसायी सिनेमा ने नहीं. वहां अलग-अलग ढंग की कहानियां अलग-अलग ढंग के पात्र खेलने को मिलते हैं. दर्शकों को भी विविधता मिल जाती है. वरना व्यवसायी सिनेमा में कहीं डॉक्टर बने तो हर फिल्म में डॉक्टर ही बनाये जा रहे हैं. पुलिसवाले बने तो पुलिस वाले ही बनते चले जा रहे हैं. भला कहां तक नवीनता लायेंगे उन भूमिकाओं में जैसी 'मासूम' में थी.

समांतर सिनेमा में या साहित्यिक कहानियों में आपको जो नयी-नयी भूमिकाएं मिल जाती हैं, उनमें आपका योगदान कहां तक रहता है?

बहुत कुछ. 'स्क्रिप्ट' को पढ़ता हूं. भूमिका को जांचता-परखता हूं. उसके हावभाव, तौर तरीके तय करता हूं.

ये सब करने की आजादी डाइरेक्टर आपको देते हैं? ये तो उनका काम है. बकौल उनके अभिनेता तो किसी वाक्य में बस एक शब्द होता है.

बड़ी सार्थक व्याख्या कर डाली आपने तो. फिर भी मैं जिद करके कहूंगा कि कोई भी भूमिका खेलने में मेरा खास योगदान होता है डाइरेक्टर पात्र के बारे में जो कुछ हमें बताते हैं, अपनी कल्पना खड़ी करते हैं उसे साकार करना हमारा काम है. महारत इसी में है कि डाइरेक्टर की कल्पना को सजायें. अब यह बात जरूर है कि मैं बहुत मोटे आदमी की भूमिका नहीं कर सकता. चौदह वर्ष के लड़के की भूमिका मुझ पर फिट ही नहीं होगी. ताराचंद बड़जात्या की एक फिल्म में मार खा चुका हूं उसमें मुझे ऐसी भूमिका दे डाली थी जो सचिन पर ही फब सकती थी. बाकी जगह मैं 'चक्र' में कोढ़ी बना, 'अर्धसत्य' में पियक्कड़, 'अल्बर्ट पिंटो . . .में तुनक मिजाज, 'मोहन जोशी हाजिर हो' में मवक्किलों को चूसनेवाला वकील. . हर जगह मैं फबता चला गया. यही नवीनता पात्रों की है, जो हमें विदेशों में भी इनाम दिलवाती है. और नवीनता को खेलने में हमें आनंद भी आता है और चुनौती भी मिलती है. बताइए 'स्पर्श' वाला अंधा कहां मिल सकता है? □

प्रस्तुति : सत्य कुमारी

बाद? बंगला, कार, नौकर. . .

जीवनराव का शरीर रोमांचित हो उठा. इसमें हर्ज भी क्या है? ये बातें बिल्कुल ही असंभव तो नहीं हैं. अभी तो मैं जवान हूं. भगवान की दया से जिले में अच्छी खासी लोकप्रियता प्राप्त है. दल में भी अच्छी प्रतिष्ठा है. अभी से यदि पूरे जोर-शोर से कोशिश की जाये तो राज्य का सर्वोच्च पद प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी. जीवनराव का रोम-रोम सिहर उठा.

जीवनराव युवा विधायकों के अगुवा माने जाते थे. वह सभी के साथ बड़ी जल्दी हिल-मिल जाते थे. अब यह लगभग तयशुदा था कि आगामी मंत्रिमंडल में उन्हें भी कोई न कोई विभाग अवश्य ही मिलेगा. तीन-चार साल में उनकी वरिष्ठता भी बढ़ जायेगी. इस बीच कई मंत्री साठ के हो जायेंगे.

ठीक उसी समय एक विचार उनके दिमाग में कौंध गया. आनंदराव टोपले भी उन्हीं के हमउम्र हैं. और वरिष्ठता सूची में उसका नाम हमेशा ही जीवनराव से ऊपर रहता था. इसका मतलब है कि आनंदराव ही उनका असली प्रतिद्वंद्वी है. कोई बात नहीं, उससे भी निपट लेंगे. आनंदराव तेज है और अपना मित्र भी. उस पर अभी से नियंत्रण रखना चाहिए. उसने भी तो सपने संजोये होंगे.

उस दिन राजस्व मंत्री दत्ताजी राव जाधव के घर पर लोगों का जो दल एकत्र हुआ था, उसे एक निगाह से देखकर यह कहा जा सकता था कि समूची राजनीतिक शक्तियां वहां इकट्ठा हुई हैं. स्वयं दत्ताजी थे, उनकी अमरीकी पत्नी डोरोथी जर्मनी यात्रा से लौट आयी थी. खुली राजनीति में उसका कोई विशेष स्थान भले ही न हो, पर कुल मिलाकर राजनीतिक क्षेत्र में उसके शब्दों को जो महत्व प्राप्त था, उसे भला कैसे नकारा जा सकता है?

वित्तमंत्री दामाडे थे. उनकी राजनीतिक महत्ता तो बिल्कुल ही असंदिग्ध थी. उनकी पुत्रवधू कमला भी उनके साथ आयी थी. आजकल दल के या अन्य प्रमुख कार्यक्रमों में कमला ही दामाडे के साथ रहा करती है. उसका महत्व भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है. विशेषकर तब से, जब से उसने सीधे दिल्ली से संपर्क स्थापित किया है. कृषि मंत्री माणिकराव पाटील भी थे, जिनके पीछे पूरा मराठवाड़ा था. कोई भी महत्वाकांक्षी राजनीतिक व्यक्ति उनकी शक्ति को नजरंदाज नहीं कर सकता था. उनके साथ उनका दामाद दौलतराव पाटील भी था. और उनके पीछे-पीछे उन्हीं के कहने से दल के अध्यक्ष शिवाजीराव राणे भी दबे पांव पहुंच गये थे. दरअसल राणे को देखकर ही दत्ताजी राव और विश्वासराव दामाडे की भौंहें तन गयी थीं, लेकिन इसके पहले कि राणे इस बात को भांप लें, कृषिमंत्री ने उनका स्वागत करते हुए कहा, "आइए आइए, आपकी ही प्रतीक्षा में थे हम लोग."

इससे तो यही ध्वनित हो रहा था कि कृषि मंत्री ने ही उन्हें न्यौता दिया है. तब कहीं दत्ताजी और दामाडे का गुस्सा कुछ शांत हुआ. बाद में तो राणे के आगमन पर उन्हें प्रसन्नता ही हुई, क्योंकि महत्वपूर्ण राजनीतिक विषयों पर बहस के दौरान दल के अध्यक्ष का अपने पक्ष में होना फायदेमंद हो सकता है. फिर इस बैठक में उन्हें बड़े महत्वपूर्ण निर्णय लेने थे. ऐसे समय नाम-मात्र के ही लिए सही, दल के अध्यक्ष का साथ रहना नितांत आवश्यक था और फिर उन्हें यह भी पता था कि किसी भी निर्णय में राणे बाधा उपस्थित करते ही नहीं थे.

मौजूदा परिस्थिति पर कुछ विचार-विमर्श के उपरांत दत्ताजी ने कहना शुरू किया, "मुझे लगता है कि अपनी स्ट्रेटेजी यह होनी चाहिए कि जो भी हम लोगों की शिकायतें हैं, उनके बारे में एक लिखित आवेदन गुप्त रूप से हमें राणे साहब को देना चाहिए. उसके आधार पर राणे साहब अपना आवेदन अखिल भारतीय अध्यक्ष और पी. एम. के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजें. इसे अखबार में भी चुपके से दिया जा सकता है. दिल्ली में थोड़ी सी हवा लगने की देर है कि यहां भी फौरन अविश्वास प्रस्ताव लाया जा सकता है. उससे पहले हमें एक बात करनी होगी. हमें आपसी अनबन खत्म कर देनी होगी. तभी हम लोग संगठित रूप से कुछ कर पायेंगे, वरना हम लोग आपस में लड़ने-झगड़ने में ही खत्म हो जायेंगे."

कुछ देर सभी लोग चुप रहे. फिर घायल स्वर में दामाडे कहने लगे, "दत्ताजी राव, आपकी स्ट्रेटेजी तो हमें जंच गयी है, लेकिन आपसी अनबन समाप्त करने की बात तो हमारी समझ में नहीं आयी. मुझे तो आपस में कोई अनबन नजर नहीं आती."

"आप समझे नहीं, अण्णा साहब. मुझे लगता है कि यहां स्पष्ट रूप से अपने विचार व्यक्त करने में कोई हर्ज नहीं है, ताकि किसी के मन में कोई गलतफहमी न रहे. वरना हम लोग झगड़ते रहेंगे और कोई तीसरा ही फायदे में रहेगा. अब आपसे क्या छिपाना है, मेरे विधायक मेरे पीछे पड़े हैं और मैं उन्हें मना कर रहा हूं. आपसी मनमुटाव की ऐसी स्थिति में मेरे खड़े होने का तो सवाल ही नहीं उठता, क्यों? ऐसे माहौल में मैं कहां जीत पाऊंगा?"

दौलतराव भड़क उठा, "तो आप साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि आप भी मैदान में हैं? शादी तो करना चाहते हैं, फिर सेहरा बांधने में संकोच क्यों?"

तभी जरूरी टेलीफोन की घंटी बज उठी, बेमन से दत्ताजी ने चोंगा उठाया. उधर से दिगू बोल रहा था. पहले तो दत्ताजी उसे डांटते रहे, फिर ध्यान से उसकी बात सुनने लगे. फोन की बात खत्म कर दत्ताजी ने घोषणा की, "अब इस समय बहस और जारी रखना उचित नहीं जान पड़ता. अभी-अभी मैसेज आया है कि दिल्ली में सी. एम. साहब को दिल का दौरा पड़ा है!"

उस दिन दिगू जैसे हवा में तैर रहा था. दिन भर वह घूमा, खूब घूमा, कई जगह गया. शिवाजी राव राणे के दफ्तर में जाकर दल के अखिल भारतीय अध्यक्ष को भेजे गये पत्र की एक प्रतिलिपि उसने प्राप्त की. राज्य का नेतृत्व तुरंत बदलने की मांग उसमें की गयी थी. वहां से वह सचिवालय गया और सी. एम. के सहायक से उनकी बीमारी के बारे में और अधिक ब्योरा प्राप्त किया. दरअसल वह दिल का दौरा नहीं, नर्वस ब्रेकडाउन था और सी. एम. कल सुबह की ट्रेन से वापस आ रहे थे.

दत्ता जी जाधव ने दिगू को चाय पिलायी और मुख्य मंत्री पद के लिए अपनी उम्मीदवारी की विधिवत घोषणा उसके सामने की. आनंद राव टोपले ने तो अपनी टेबिल की दराज से विधायकों की एक सूची निकालकर दिगू को थमा दी. विश्वासराव दामाडे तो आये ही नहीं थे. दिगू को पूरा यकीन था कि दामडे ने भी अपनी सूची बनायी होगी. विधायक पुरी में बस यही एक चर्चा का विषय था. हर विधायक एक दूसरे को परस्पर विरोधी गुटों का मानकर वहमी निगाहों से देख रहा था.

गाना समाप्त होने पर रेडियो में खबरें आनी शुरू हुईं—"आज शाम एक संवाददाता सम्मेलन में मुख्यमंत्री ने मंत्रिमंडल में विस्तार और पुनः रचना की महत्वपूर्ण घोषणा की. वित्त मंत्री विश्वासराव दामाडे का त्यागपत्र स्वीकार किये जाने की बात की भी उन्होंने अत्यंत खेद के साथ पुष्टि की. नयी सूची के अनुसार मंत्रिमंडल में दूसरे महत्वपूर्ण स्थान पर कृषि मंत्री मणिकराव पाटील की नियुक्ति का रहस्योद्घाटन भी उन्होंने किया.

"मंत्रिमंडल की पुनः रचना में एक राज्यमंत्री तथा एक उपमंत्री को पदोन्नत किये जाने के साथ ही दो नये मंत्रियों को भी समाविष्ट किया गया है. राज्य मंत्री श्री आनंदराव टोपले को वित्त विभाग सौंपा गया है और बुधाजी गोडघाटे को गृह राज्य मंत्री बना दिया गया है.

"दो नये राज्य मंत्री भी नियुक्त हुए हैं. उनके नाम इस प्रकार हैं: अमरावती के जीवनराव बाघमारे और मुरुड के उस्मान मोहम्मद दलवी. उनके विभागों के बारे में जल्दी ही कोई अधिकृत घोषणा का आश्वासन मुख्यमंत्री ने दिया.

"वित्तमंत्री विश्वासराव दामाडे के त्यागपत्र के बारे में और अधिक पूछे जाने पर मुख्यमंत्री ने बताया कि. . ."

आकाशवाणी बंबई से शाम सात बजे प्रसारित होनेवाला यह प्रादेशिक समाचार बुलेटिन लाखों महाराष्ट्रवासियों ने बड़ी उत्सुकता से सुना. मालाबार हिल के बंगलों में, विधायकपुरी के कमरों में, अफसरों के घरों में, सरकारी कर्मचारियों की कालोनियों में, संवाददाता, जिला परिषद एवं पंचायत समितियों के पदाधिकारी और सदस्य, ग्राम पंचायतों के सरपंच, चीनी मिलों के पदाधिकारी, सहकारी बैंक के वरिष्ठ लोग स्थानीय राजनीतिक व्यक्ति, विपक्षी सदस्य, स्वपक्ष, उद्योगपति, व्यापारी, अध्यापक, पुलिसकर्मी और 'ऐरे-गैरे'—सब तरह के लोग, सब जगह के लोग, रेडियो से कान लगाये बैठे थे. कोई आश्चर्य से फुदक रह थे तो कोई यूं ही भौंहें नचा रहे थे. कोई व्यंग्य की हंसी हंस रहे थे तो कोई उसांसें छोड़ रहे थे तो किसी की आंखें बह रही थीं.

कमला दामाडे की आंखें, रेडियो न सुन रहे होते हुए भी, बराबर बह रही थीं. एक दिन पहले ही दामाडे परिवार विमान द्वारा नागपुर रवाना हो चुका था. उस दिन दामाडे ने किसी से भी मिलने के लिए मना कर रखा था. हालांकि भीड़ वहां अच्छी खासी जमा थी, लेकिन कमला या उनकी सास ही उनसे मिल रही थीं. अभी सब लोगों को पता ही कहां था? क्योंकि घोषणा एक के दिन पहले का यह माहौल जो था. फिर भी शाम से ही उसकी आंखें बह रही थीं. उस दिन शाम सात बजे की खबरें सुनने के लिए विश्वासराव दामाडे के बंगले में किसी ने रेडियो नहीं चलाया. सवेरे से ही बंबई से लगातार फोन आ रहे थे. उनमें से खुद विश्वासराव ने एक ही टेलीफोन रिसीव किया—सी. एम. का. उनकी बातचीत भी बड़ी ही संक्षिप्त सी रही.

"अरे भाई अण्णा साहब, आप तो नाराज होकर चले ही गये." सी. एम. पूछ रहे थे.

"नहीं तो, इसमें नाराजगी की कोई बात ही नहीं थी." विश्वासराव ने अनमने भाव से कहा.

"देखिए भाई," सी. एम. आगे कहने लगे, "मैं निजी तौर पर यह महसूस करता हूं कि वर्तमान परिस्थिति में ग्रामीण विकास विभाग बड़ा ही महत्वपूर्ण है. विकास की दृष्टि से तो इस विभाग को और भी अहमियत प्राप्त हो जाती है. आप जैसे अनुभवी प्रशासक के लिए यह एक आह्वान. . ."

"सॉरी सर! . .आई एम रियली नॉट इंटरेस्टेड."

"बट यू सी. . .," सी. एम. ठिठक गये. शायद उन्हें लगा हो कि इस तरह बातचीत करने से कोई फायदा नहीं. इसीलिए उन्होंने धीरे से कहा, "जैसी आपकी इच्छा. फिर आपको कौन-सा विभाग चाहिए?"

"मैंने तो आपको बताया ही था कि आई वांट नथिंग एल्स बट होम!"

"बट यू सी. . ., दैट इज़ नॉट पासिबल इन द प्रेजेंट सर्कमस्टैंसेज यू नो इट. . ."

"देन आइ एम नॉट इंटरेस्टेड."

"देखिए, सोचिए. जनता तो आपके अनुभवों से लाभान्वित होना चाहती है."

"थैंक यू."

"अच्छा, यदि शाम तक आपका विचार बन जाये तो पांच बजे मुझे फोन कीजिए. बेस्ट ऑफ लक!" और सदा ही की तरह सी. एम. ने हंसते हुए फोन नीचे रख दिया.

विश्वासराव के दिमाग में ठंडी आग की एक लहर दौड़ गयी. इतनी जल्दी हार माननेवाले कायर योद्धाओं में से थोड़े ही थे. वह और आज का यह दिन कभी न कभी तो ढलेगा ही. फिर रात के बाद दूसरा दिन भी निकल आयेगा. □

संक्षिप्त रूपांतर : प्रभाकर द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलयाली उपन्यास

मछुआरे

तकषि शिवशंकर पिल्लै

रसोईघर में चूल्हा जलाती हुई करुत्तम्मा को नाव के पीछे परीकुट्टी से हुई एक-एक बात याद हो आयी. आग बाहर भी जलने लगी—करुत्तम्मा को इसका ध्यान नहीं था. इतने में चक्की आयी, करुत्तम्मा पर लात जमाकर पूछा, "बैठी-बैठी किसके बारे में सोच रही है?" दोष चक्की का न था, करुत्तम्मा ऐसी ही दुनिया में खोयी थी.

"अम्मा, समुद्रतट पर रखी हुई बड़ी नाव की आड़ में दिदिया खड़ी-खड़ी छोटे मोतलाली के साथ हंस रही थी." करुत्तम्मा की छोटी बहन ने मां से शिकायत की. चक्की ने बेटी को एड़ी चोटी तक देखा. कोई भी मां ऐसी बात सुनकर चुप कहां रहती. चक्की ने कहा, "बेटी, तट पर स्त्रियों की पवित्रता से ही मच्छुआरे वास्तव में सुरक्षित लौट आते हैं. तेरी अब छाती भर आयी है. वह विधर्मी कहीं तुम पर नजर गाड़कर न देखे."

उस रात करुत्तम्मा को नींद नहीं आयी. परीकुट्टी दूर तख्ते पर बिना ताल और लय के गा रहा था, जिसे सुन करुत्तम्मा विचलित हो उठी, किंतु परीकुट्टी उस पर नजर गाड़कर देखेगा, वह विधर्मी भी तो है. गाना उसके भीतर गहराता गया. वह रो पड़ी. उसने कानों में उंगली रखी. कान खोलने पर बगल के कमरे से मां-बाप के झगड़ने की आवाज सुनाई दी. वे उसी को लेकर झगड़ रहे थे. बहुत गुस्से में मां ने कहा, "बिटिया को कोई विधर्मी कुमार्ग पर ले जायेगा. अब यह होने जा रहा है. उस वेल्लमठाली वेलायुधन के बारे में क्यों नहीं सोचते?"

"वह सिर्फ मामूली मल्लाह है." पिता ने उत्तर दिया.

मां की यह बात कि कोई विधर्मी बेटी को कुमार्ग में ले जायेगा, करुत्तम्मा के कानों में गूंज गयी.

दूसरे दिन समुद्र तट की ओर चलते समय चक्की ने करुत्तम्मा को फिर सावधान किया, "बिटिया, मैंने जो-जो कहा है, सब याद रखना."

एक लड़के को प्यार करने के बावजूद उस लड़की की शादी अन्य लड़के से क्यों कर दी गयी? शादी से किसे क्या हासिल हुआ? यह सवाल पूछता मछुआरों की जिंदगी पर लिखा गया यह मलयाली उपन्यास फिल्म के लिए भी बहुत सार्थक साबित हुआ, जिसकी प्रमुख भूमिकाएं सत्यन और शीला ने निभायीं और इसके निर्देशक हैं रामू करियात. यहां प्रस्तुत है इस बहुचर्चित उपन्यास 'चेम्मीन' का सार संक्षेप—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेंपन ने भी कुछ कहना जरूरी समझा, "बिटिया, तुझे अपनी मर्यादा की रक्षा करनी है."

शाम को चेंपन परीकुट्टी के पास पहुंचा. करूत्तम्मा ने उसे देखा. और उसे लगा, उसका बाप परी से कर्ज मांगता होगा.

रात पति-पत्नी देर तक बातें कर रहे थे, जिनको जानने की करूत्तम्मा को उत्सुकता रही. उस दिन भी परी ने गाना गाया. झोंपड़ी के अंदर लेटी हुई करूत्तम्मा ने उसे चुपचाप सुना.

दो दिन पहले तक वह एक तितली थी, दौड़ती-फिरती-उड़ती, लेकिन एक मर्द ने उसकी छाती की ओर देखा है और वह बच्ची से अब स्त्री हो गयी. तीसरे दिन परीकुट्टी का गाना सुनाई नहीं पड़ा. करूत्तम्मा के कान व्यग्र हो उठे.

अगले दिन घर में कोई नहीं था कि परीकुट्टी आया. करूत्तम्मा दौड़कर भीतर चली गयी. थोड़ी देर चुप रहने के बाद परीकुट्टी बोला, "नाव और जाल खरीदने के लिए रुपये दिये हैं, अब मुझे व्यापार के लिए मछली मिलेगी न?" करूत्तम्मा ने कोई जवाब नहीं दिया. परी ने पूछा, "क्या मैं जाऊं करूत्तम्मा?" मानो परी का जाना करूत्तम्मा को लग गया. उसने कहा, "मोतलाली, तुम एक विधर्मी हो." परीकुट्टी ने पूछा, "इससे क्या?" निःशब्दता में काफी समय बीत गया.

परी के घर में मछली सुखाकर बोरी में भरने का काम तेजी से होने लगा. इसका रहस्य करूत्तम्मा को मालूम था. थोड़े ही दिन में वह काफी होशियार हो गयी थी.

जीवन में अभिवृद्धि लानेवाले परिवर्तन की खुशी में चक्की ने करूत्तम्मा से कहा, "बेटी, नाव और जाल आने का समय आ गया." करूत्तम्मा उस खुशी में भागीदार न हो सकी. उसने देर तक मां-बाप के साथ वाद-विवाद किया. चक्की की डांट-फटकार जब सीमा पार करने लगी, तब करूत्तम्मा ने मां से पूछा, "अम्मा, मुझे इतना उपदेश देकर उससे रुपया क्यों लिया?. . .अब कर्जदार होकर. . ." चक्की का मन एकाएक अशांत हो गया. उसे लगा, परी से रुपया न लिया होता तो अच्छा होता, लेकिन चेंपन को यह सब कहां मालूम. उस दिन करूत्तम्मा की शादी की बात लेकर चक्की ने पति को तंग किया. अब वह उसे घर में अकेली नहीं छोड़ती. रुपये पूरे जमा हो गये और चेंपन नाव और जाल खरीदने चला गया. तट पर वह सबकी चर्चा का विषय हो गया.

चक्की दिवास्वप्न देखती हुई करूत्तम्मा से कह रही थी, "तेरे बाप की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं हैं. तेरी शादी करेंगे. समुद्र माता की कृपा से कोई कर्जा भी नहीं है. करूत्तम्मा मां से परी का रुपया लौटा देने की बात पर झगड़ती थी. करूत्तम्मा के मन में परी के प्रति प्रीति है, लेकिन इसका मर्म बाप को कहां मालूम था. चक्की ने कहा, "बिटिया, तेरे लिए ही तेरा बाप इतने कष्ट उठा रहा है, तू यह सब व्यर्थ न कर." करूत्तम्मा चुप रही. चक्की ने पूछा, "क्या तू उस विधर्मी से प्रेम करती है, सच-सच बता." करूत्तम्मा मौन रही. चक्की की शांति भंग हो गयी. घर पहुंचते ही चेंपन को धक्का लगा. वह बड़ा उत्साह लेकर लौटा था. नाव और जाल खरीदने से पहले वह घटवार से नहीं मिला, यही उसका सबसे बड़ा अपराध था. निस्सहाय भाव से उसने पत्नी से पूछा, "हमने दूसरों का क्या बिगाड़ा है री?" चक्की ने कहा, "पास में जो पैसा था उससे बेटी की शादी ही करा दी होती तो कम से कम यह हालत न होती." चेंपन चुप रहा. आज के दिन उसके जीवन की एक बड़ी अभिलाषा पूरी हुई थी, लेकिन उसका घर उदासी में डूबा हुआ था.

घटवार से मिलने के लिए परी को 35 रुपयों की आवश्यकता थी, जो वह रात में परी से लेकर आया और घटवार को प्रसन्न कर लिया. करूत्तम्मा को इसका ज्ञान नहीं था. नाव को उतारने में अभी 500 रुपयों का खर्च था, वह व्यवस्था भी परी से ही की गयी. नाव उतारने के पहले दिन भोज था. भोज का सामान चेंपन ने हसन दूकानदार से उधार लिया.

करूत्तम्मा विचार-मग्न समुद्र तट पर जा रही थी. अचानक परी को सामने खड़ा पाया. वह कुछ देर किनारे लगी नाव की आड़ में चुपचाप खड़ी रही. आज उसे परी का उन्नत वक्ष पर नजर गाड़ना बुरा नहीं लगा. समुद्र में न तूफान उठा, न आंधी आयी. उल्टे वह मुस्कराता दिखाई पड़ रहा था. करूत्तम्मा ने परी की ओर सिर उठाया. हृदय ने हृदय की बात जान ली. करूत्तम्मा आगे चल दी.

अगले दिन चेंपन की नाव उतरी. समुद्र तट मंगल-निनाद से गूंज उठा. परी चक्की के पास गया और सवाल किया, "मछली हमारे हाथ बेचोगी न?" चक्की ने कहा, "नहीं तो किसके हाथ? बेटा, तुम्हारे ही कारण आज यह नाव समुद्र में उतर सकी." मां की इस बात से करूत्तम्मा को संतोष हुआ. परी चुप हो रहा. चक्की ने आगे कहा, "चाकरा खतम होने पर रुपये लौटा देंगे." (चाकरा : जल के नीचे जमी मिट्टी की तह.)

"लौटा देने के लिए मैंने नहीं दिये हैं," परी ने कहा. एक क्षण बाद वह फिर कहने लगा, "करूत्तम्मा ने एक नाव और जाल खरीदने के लिए रुपया मांगा था. मैंने दिया. वह मुझे वापस नहीं चाहिए."

करूत्तम्मा की आंखों के आगे अंधेरा छा गया.

चक्की कुछ कठोर हो गयी. मां की तरह उपदेश देने लगी, "बेटा, तुम विधर्मी हो. हम लोग मछुआरे हैं. बचपन का खेल भूल जाओ. हम एक अच्छे मछुआरे के साथ ब्याह करने जा रहे हैं. तुम भी अपनी शादी करके जीवन बिताओ." चक्की तट से लौट रही थी, परी उन्हें जाते देख रहा था. घर पहुंचने पर करूत्तम्मा को फिर वही गाना सुनाई पड़ा. मां फिर अशांत हुई.

दोपहर तक समुद्र तट पर बच्चे, टोकरीवाली औरतें और थोक खरीदार सब पहुंच गये थे. तट पर हरेक आदमी अंदाज लगाने लगा कि जाल में कौन-कौन-सी मछली होगी. नाव किनारे लगी. डांड ले-लेकर सब मल्लाह किनारे पर कूद पड़े. चेंपन उत्तेजित रूप से बाहर कूदा.

थोक खरीदनेवाले भाव तय कर रहे थे. परी ने पूछा, "मछली मेरे हाथ बेचोगे?" चेंपन ने मानो परी को देखा ही नहीं. उससे पूछा, "नकद पैसा है. मुझे नकद चाहिए." कादरी मोतलाली ने नकद पैसे देकर माल खरीद लिया. चेंपन ने काम करने वालों को उनका हिस्सा बांट कर दिया और घर की ओर चला.

चक्की ने परी के बारे में पूछा, "उसे मछली देते तो क्या होता? तब कैसे चलता? काम करनेवालों को हिस्सा देना था न?" चेंपन ने उत्तर दिया. करूत्तम्मा को गुस्सा आया.

रात रुपये गिनकर चक्की ने कहा, "अब हमें लड़की का ब्याह कर देना चाहिए." चेंपन चुप रहा.

परी का डेरा बंद जैसा मालूम होने लगा. उसके बाप ने एक बार उसे खूब डांटा. अब्दुल्ला मोतलाली ने शिकायत लगायी थी कि परी ने अपना पैसा किसी मल्लाहिन को दिया था. यह सत्य भी था. करूत्तम्मा के कानों में बात पड़ गयी. उसने चक्की पर जोर डाला कि परी का पैसा लौटा दिया जाये. चेंपन पर कुछ असर नहीं होता था. वह उल्टा अपने ऐश्वर्य की कल्पना में चक्की को भी उड़ा ले जाता.

एकाएक पोला आ गया, समुद्र का रंग लाल हो गया. पोले में आज तक किसी ने जाल नहीं डाला था. चेंपन ने अपने काम करने वालों से जाल डालने को कहा. कोई तैयार नहीं हुआ.

एक सुबह जालवाला रामन चेंपन से नाव पर काम करनेवालों के लिए डेढ़ सौ रुपया कर्ज के रूप में ले गया. चेंपन की पहले से ही उसकी चीनी की नाव पर नजर थी, उसने दिल खोलकर पैसे दिये. चेंपन को भी नाव में काम करनेवालों ने तंग किया. उसने उन्हें समुद्र में चलने का सुझाव दिया. विवश थे. वे राजी हो गये. नाव पश्चिम को चल दी. रात जब देर तक नाव नहीं लौटी तो कोच्चन की बूढ़ी मां छाती पीट-पीटकर चक्की से अपने बेटे को मांगने लगी. बाबा की गर्भिणी पत्नी किसी पर आरोप लगाये बिना रो रही थी. आधी रात के समय एक शार्क मछली लिये नाव लौटी. कई दिनों के बाद घरों में चूल्हे जले.

इधर करूत्तम्मा परी के डेरे बंद से समझ गयी कि उसके चकारा व्यापारी की व्यवस्था नहीं हो रही थी. ऐसे ही एक अवसर पर उसने मां से कहा, "मेरा शरीर इस भार को सहन नहीं कर सकता." यदि कर्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

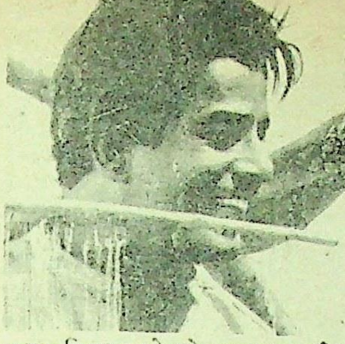

एक चातक नारियल के पेड़ से उड़कर चांदनी में अदृश्य हो गया. रोती हुई करुत्तम्मा को आश्वस्त करके परी ने कहा, "मैं यहां बैठकर गाता रहूंगा और जोर से गाऊंगा." तब करुत्तम्मा ने कहा, "मैं भी तृनकुन्नपुषा समुद्र पर बैठी-बैठी यह गाना सुनूंगी." . . . .और वे एक दूसरे से अलग हो गये.

चुका दिया जाये तो वह फूल सकेगी. ऐसा उसका विश्वास था. समय बीतता गया, किंतु चेंपन ने परी का रुपया नहीं लौटाया.

चकारा आ गया. मल्लाहों के चेहरों पर आशा की किरण खिल उठी. दूर-दूर से नावें आने लगीं. तट पर कई दूकानें लग गयीं.

परी चिंतित था. उसे पैसे नहीं मिले थे. वह डरा कि उसके लिए चकारा की शुरुआत ही बिगड़ रही है. परी ने उतनी ही मछली ली, जितना उसके पास पैसा था.

दूसरे दिन प्रकाश होने के बाद ही नावें समुद्र में उतरीं. रोज की तरह उस दिन भी चेंपन ही आगे था, लेकिन एक और नाव भी उसी तेजी से आगे बढ़ रही थी. उसे देख लोग आश्चर्य करने लगे कि किसकी नाव है. पता लगा कि वह तृक्कुन्नपुषा की नाव है, पतवार का नाम है पलनी. दोनों नावों में होड़ थी. आखिर दोनों बराबर रहीं. माल भी दोनों में बराबर था. किनारे पर पहुंचने पर चेंपन ने पलनी को गले लगाया और कहा, "बेटा, तुम सचमुच समुद्र के वीर पुत्र हो. तुम्हारा क्या नाम है?"

बलिष्ठकाय युवक जरा संकोचशील था. चेंपन के सामने वह बच्चा जैसा लग रहा था. उसने कहा, "पलनी."

चेंपन ने उसे लड़की के लिए पसंद किया. चक्की को भी पसंद था. उसके दूसरे दिन भी समुद्र पर दौड़ लगी. चेंपन हार गया. उसने पलनी को अपने घर भोजन पर निमंत्रित किया.

पलनी के मां-बाप की कुछ आय न थी. आज उसके लिए एक जगह खाना तैयार हुआ है, यह उसका पहला अनुभव है. चक्की ने उसे पूरे स्नेह के साथ परोसा-खिलाया और बातों में ही उसके साथ अपनी बेटी की शादी भी तय कर ली. केवल पलनी की जाति को लेकर हल्की चिंता थी. चेंपन को इसकी भी कोई परवाह नहीं थी. उसने दृढ़ निश्चय से कहा, "मैं लड़की की शादी उसी से करूंगी."

चकारा के दिन, जो धूप में शुरू हुए थे, अंधकार में विलीन होने लगे. परी को एक और आफत आयी. उसका पहली बार का माल अच्छा था: दूसरी बार कम सुखाने की शिकायत से धरा रह गया. उस पर सेठ ने पैसे भी मांगे. उसका माल पड़ा-पड़ा दुर्गंध करने लगा. तट के सभी नाववाले संकट में पड़ गये.

रामन, जो पहले भी डेढ़ सौ रुपये कर्ज ले चुका था, दुबारा चेंपन के पास पैसे लेने आया. अपनी चीनी की नाव गिरवी रखवाकर उसने पैसे ले लिये. उसी दिन चक्की ने पति से कहा, "आधी रात के समय उस छोकरे से चोरी करवाकर अब चुप्पी साध ली. वह बेचारा संकट में है. इस समय उसके रुपये दे दो तो बड़ा उपकार होगा." चेंपन ने चक्की को फटकार कर चुप कराया. करुत्तम्मा वहीं खड़ी थी. वह बोल उठी, "उसके पैसे जरूर लौटा दो बप्पा." गंभीर होकर चेंपन ने कहा, "इससे तुझे क्या है री?" चक्की भी उसे चुप कराने लगी.

उस रात पत्नी ने पति से कहा, "करुत्तम्मा शादी के लिए तैयार है, लेकिन. . ." चेंपन के लिए करुत्तम्मा की स्वीकृति का कोई महत्व नहीं.

मछली बहुत सस्ती हो गयी थी. परी को हजार रुपये का घाटा हुआ. करुत्तम्मा छिपकर उसके पास गयी और कहने लगी, "व्यापार में घाटा हुआ है न छोटे मोतलाली? तुम्हारा पैसा लौटा देंगे. तुम्हारा कर्जा चुकाने के बाद. . ." करुत्तम्मा की आंखें भर आयीं. परी समझ गया. वह वहां खड़ी नहीं रह सकी, चल दी.

घर आकर उसने मां से कहा, "मुझे स्त्री धन नहीं चाहिए. मोतलाली को वह पैसा देना काफी होगा." मां बोली, "बेटी, वह कर्जा मैं चुका दूंगी." मां बेटी ने मिलकर चेंपन की तिजोरी से निकालकर चोरी करने का निश्चय किया. कई दिनों की कोशिश के फलस्वरूप वे कुल सत्तर रुपये जुटा पायीं. दस-बीस रुपये की सूखी मछली भी थी. छोटी रकम होने पर भी उसे भी परी को ही देने का निश्चय किया गया.

करुत्तम्मा की शादी पलनी के साथ तय हो गयी. उसे पतिव्रता रहने के उपदेश दिये गये. वह शादी के दिन ही सदा के लिए उस घाट से जाना चाहती थी. मां ने उसकी इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा की.

स्वच्छ चांदनी रात थी. समुद्र शांत था. परी बैठा गा रहा था. करुत्तम्मा आवाज से आनंदमय लोक में पहुंच गयी. बाप घर में नहीं था. मां सोयी थी. करुत्तम्मा ने सबसे विदा ली थी, किंतु चांदनी के इस देवता से जाने की अनुमति नहीं ली थी. इस तट पर वह इसी के साथ खेली-कूदी थी. करुत्तम्मा को परी से बहुत कुछ कहना था. एकाएक गाना बंद हो गया. गाते-गाते परी ने अपने देवता को सम्मुख खड़ा कर दिया. क्षण भर के लिए उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ. उसने पूछा, "करुत्तम्मा, तुम जा रही हो?"

करुत्तम्मा ने कहा, "छोटे मोतलाली, तुम अच्छी शादी करके घर बसाओ और व्यापार करके सुख-चैन का जीवन बिताओ." आगे कुछ नहीं कह सकी, लेकिन अनजाने उसके मुंह से निकला, "मैं हमेशा छोटे मोतलाली को याद रखूंगी."

एक चातक नारियल के पेड़ से उड़कर चांदनी में अदृश्य हो गया. रोती हुई करुत्तम्मा को आश्वस्त करके परी ने कहा, "मैं यहां बैठकर गाता रहूंगा और जोर से गाऊंगा." करुत्तम्मा ने कहा, "मैं भी तृनकुन्नपुषा समुद्र पर बैठी-बैठी यह गाना सुनूंगी." इसके बाद करुत्तम्मा कुटिया में लौट आयी. इस तरह वे एक दूसरे से अलग हो गये.

करुत्तम्मा की शादी में कोई स्त्री नहीं आयी थी. वधू पक्ष के लिए यह अपमानजनक था. घटवार के पैसे भी चेंपन को ही देने पड़े. इस झगड़े के कारण चक्की बेहोश हो गयी. करुत्तम्मा ने यंत्रवत सब कुछ किया. चेंपन बेटी को रखना चाहता था, अतः उसने घटवार से राय प्रकट की, "मां की दशा ठीक न होने से मैं करुत्तम्मा को नहीं भेज सकता हूं," किंतु पलनी का पौरुष जागा. उसने उसी दिन ले जाने की इच्छा प्रकट की. उसी की चली.

करुत्तम्मा के भावी जीवन के लिए किसी ने प्रार्थना नहीं की, स्वयं उसने भी नहीं. शायद परी कर रहा होगा. इस तरह उस तट से चिर-परिचित करुत्तम्मा चली गयी. अब वह परी का गाना नहीं सुनेगी.

तृनकुन्नपुषा का समुद्र भिन्न था. उसके पानी का रंग भी अलग था. मुहल्ले की जो स्त्री करुत्तम्मा को देखने आती, वह गौर से देखती. करुत्तम्मा को यह बुरा लगा. उसके बारे में कई तरह की बातें होने लगीं कि लड़की ने कुछ अनुचित किया होगा और लोगों को उसे अपने तट से किसी तरह भेज देने की फिक्र हो गयी होगी, तब क्या यह हमारा तट भ्रष्ट करने आयी है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलनी के घर में कुछ भी नहीं था. पड़ोस से कड़ाही लाकर करुत्तम्मा ने प्याज की झोलदार तरकारी और भात बनाया. वह बैठी अपने भावी जीवन के बारे में सोचने लगी. दोपहर को पलनी तट से लौटा. उसने श्रद्धापूर्वक भात और तरकारी खिलायी. भोजन के पश्चात वह चटाई बिछाकर लेट गया और करुत्तम्मा को पास बुलाया. शायद करुत्तम्मा को इस बुलाहट की प्रतीक्षा थी. सकुचाते हुए वह पास गयी. उसने मन में अच्छी पत्नी बनकर रहने की प्रतिज्ञा की.

पलनी ने उसे दृढ़ आलिंगन में बांध लिया. वह दम घुटानेवाली आनंदानुभूति में सुध-बुध खोकर अर्धनिमीलित नेत्रों से रो पड़ी. उसे मालूम नहीं हुआ कि कब तक उसी अवस्था में विलीन रही. होश की दुनिया में आने पर उसे लज्जा आयी. डर लगा, उसका पति कहीं कोई ऐसा सवाल न पूछे कि जीवन ही बर्बाद हो जाये, लेकिन उसका डर निराधार था. पलनी जरूरी चीजें खरीदने चला गया. अकेली करुत्तम्मा को परी का ध्यान आया. उसका गाना याद आया. मन अशांत हो गया. उस रात करुत्तम्मा और पलनी की बातें खतम नहीं हुईं. करुत्तम्मा ने अपनी बातें कहीं. उसके लिए मां-बाप दोनों नहीं रहे. अब इसके लिए पति ही सब कुछ है. वह जिम्मेदार आज्ञाकारी पत्नी बनकर रहेगी.

भोर में करुत्तम्मा ने पलनी को नहलाकर भेज दिया. उस दिन अप्रत्याशित रूप से मछली मिली थी. पलनी के साथी उसे हरिघाट ले गये. करुत्तम्मा ने देर तक प्रतीक्षा की.

उसने अबोध बच्चे की तरह पलनी को सुव्यवस्थित जीवन पद्धति के बारे में समझाया. पलनी ने अपने दोस्तों से कुछ-कुछ सुना था. उसने पूछा, "क्या तू अपने बाप की बात ध्यान में रखकर बोल रही है? वहीं से तूने ऐसी बातें सीखी हैं. सब लोग अब पूछते हैं कि हम ससुराल कब जा रहे हैं." करुत्तम्मा से भी स्त्रियां यह प्रश्न पूछती थीं, लेकिन उसके पास कोई उत्तर नहीं था.

तृनकुन्नपुषा तट पर करुत्तम्मा के लिए घर से बुलावा न आना लोगों की बातचीत का विषय हो गया. चक्की ने करुत्तम्मा की शादी के दिन ही खाट पकड़ ली थी. अब करुत्तम्मा को बुलाने कौन जाता. चक्की करुत्तम्मा से मिलने को व्याकुल रहती, किंतु पलनी उसे भेजने को तैयार न था. चक्की की बीमारी बढ़ती गयी.

परी ने चक्की के बारे में सुना और देखने चला आया. चक्की कष्ट में थी. परी को देखते ही फूट पड़ी. चक्की अब बदल चुका था. पहले जैसा उत्साह उसमें नहीं रहा था. उसने चक्की को धैर्य दिया. चक्की बोली, "बेटा, तुम करुत्तम्मा को तकलीफ में न डालना. उसका ब्याह हो गया. अब उसे कोई कष्ट नहीं देना." परी को विस्मय हुआ. चक्की आगे बोली, "परी, तुम करुत्तम्मा के भाई हो, बेटा, तुम्हें उसका सगा भाई होकर रहना है." परी ने मान लिया. चक्की को परी का उस तरह मानना काफी नहीं लगा, उसने फिर प्रार्थना की.

उस रात चक्की ने परी को तट पर गाते सुना.

चेंपन के लिए वह दुर्दिन का समय था. कई दिनों बाद उसने नाव निकाली, लेकिन बैठे हुए ही चला रहा था. उसकी नाव अब दूसरी नावों की तरह उतरती है. उस दिन उसने माल का मोल-तोल भी नहीं किया. उसकी चाल अब एक टूटे हुए आदमी की तरह थी.

हाथ-मुंह धोकर चेंपन चक्की के पास आया. चक्की ने चेंपन को गौर से देखा. दोनों की आंखें भर आयीं. जीवन में पहली बार चेंपन की आंखें सजल हुईं. उसने कहा, "मेरे पैर ढीले पड़ गये हैं. मैं क्या करूं चक्की?" चेंपन रो पड़ा. चक्की ने चेंपन पर नजर गड़ाते हुए कहा, "किसी दूसरे से शादी कर लेना." और उसकी आंखें पथराने लगीं. चेंपन डर गया. उसने चिल्लाकर पुकारा. चक्की निश्चल, निस्पंद थी.

पंचमी मां की मृत्यु पर फूट-फूटकर रो रही थी, दिदिया को पुकारती रही. किसी ने ध्यान नहीं दिया. चेंपन ने चक्की की मृत्यु की सूचना तक करुत्तम्मा तक न पहुंचाने दी. चक्की के दाह संस्कार की तैयारियां होने लगीं. विधर्मी परी दूर खड़ा था. करुत्तम्मा के बिना ही दाह-संस्कार हो रहा था. इससे उसे दुःख हुआ. उसने सोचा, चक्की भी उसे इस अपराध के लिए माफ नहीं करेगी. करुत्तम्मा को सूचित करना अपना कर्तव्य मानकर वह तृनकुन्नपुषा की ओर चल पड़ा.

रात का चला हुआ वह भोर के समय तृनकुन्नपुषा तट पर पहुंचा. मल्लाह नावों पर निकल रहे थे. उसने कोच्चुनाथन से पलनी का घर पूछा. कोच्चुनाथन के लिए परी का रात को चल देना अथवा संदेश लेकर आना शंका के विषय बन गये.

पलनी के घर के सामने पहुंचकर परी खड़ा हो गया. सहसा उसके मुख से निकला, "करुत्तम्मा."

वह रो रही थी. उसके शब्द करुत्तम्मा के कलेजे में चुभ गये. परी ने दरवाजा खोलने की प्रार्थना की. उसने कहा, "मैं अभी भी वह पुराना परी हूं. मैं जानता हूं, तुम अपने पति के साथ रहती हो."

परी ने फिर पुकारा, "करुत्तम्मा, मैं तुम्हारा भाई हूं, भाई?" करुत्तम्मा कुछ आश्वस्त हुई. तुम्हारी मां ने कहा है कि मैं तुम्हारा भाई होकर तुम्हारी देखभाल करूं." करुत्तम्मा धाड़ मारकर रोने लगी.

पलनी को कोच्चुनाथन ने सारा समाचार सुना दिया था. पप्पू ने करुत्तम्मा और परी की कहानी पूरे तट पर फैलायी थी. समुद्र से लौटकर पलनी ने करुत्तम्मा के मुख से उसके मां के मरने का समाचार सुना. न दुःख प्रकट किया और न करुत्तम्मा को जाने की आज्ञा दी. करुत्तम्मा ने पूछा, "मुझ पर संदेह करते हो?" पलनी ने हां या ना कुछ नहीं कहा. उसने पूछा, "क्या यह खबर भेजने के लिए उस तट पर कोई मल्लाह तेरे बाप को नहीं मिला? उस मुसलमान को क्यों भेजा था?"

करुत्तम्मा उसके सवाल का अर्थ समझकर सब कुछ कह डालने के लिए तैयार होकर बैठ गयी. उसने कहा, "हम बचपन में साथ खेलते-कूदते बड़े हुए थे. . ."

एक लड़की पति से अपनी प्रेम कहानी सुना रही थी. अठारहवें साल तक उसने सारी कहानी सुनाई. फिर सूत्र टूट गया. फिर उसने कहा, "मेरा कोई भाई नहीं है, है न वह मेरा भाई."

सब कुछ सुनने के बाद पलनी ने कहा, "तब तो लोगों का यह कहना कि उन लोगों ने तुम्हें तट से दूर किया, सच ही है. है न?" करुत्तम्मा ने उत्तर दिया. "वह इस तट के योग्य एक अच्छी पत्नी होकर जीवन बितायेगी." पलनी, जो कभी किसी से झगड़ता नहीं था, पप्पू से झगड़ गया. वह करुत्तम्मा से सब सुन चुका था. फिर तीसरे व्यक्ति से सुनना उसे असह्य हुआ. उसने पप्पू को मार दिया.

इस तरह करुत्तम्मा के घर जाने का सवाल खत्म हो गया. पलनी का उत्साह समाप्त हो गया था. समुद्र में मछली थी. करुत्तम्मा को भी क्या हिस्सा मिला है, यह पूछने की हिम्मत नहीं रही. रोज का खर्च जुटाना भी मुश्किल होने लगा. स्थिति को समझ कर करुत्तम्मा ने पूरब में मछली बेचने का निर्णय लिया. पलनी ने भी इसे सहज ही स्वीकार किया, किंतु तट की मछली बेचने वाली स्त्रियों ने शिकायतें लगायीं. एक ने कहा, "वहां तो किसी मुसलमान के साथ रहती थी. अब यहां के तट का सर्वनाश करने आयी है." करुत्तम्मा ने मछली बेचने जाना बंद किया, लेकिन उसने दूसरा काम शुरू किया, नमक लगाकर मछली को सुखाकर रखना. जब मछली नहीं मिलेगी, तब उसका धन वसूल होगा.

इस तरह करुत्तम्मा वहां एक अलग जीवन बिताने लगी. पलनी भी लगभग अलग ही रहता था. दोनों में एक भाव शून्य संबंध रह गया था.

अगले दिन पलनी रोज की तरह उठकर समुद्र के किनारे गया. तब तक नाव जा चुकी थी. उसने जोर से आवाज देकर पुकारा. वह सब व्यर्थ था. हारकर वह कुंजन जालवाले के पास गया. उसने कुंजन से पूछा, "क्या मैं समुद्र में काम करने योग्य नहीं हूं."

कुंजन परेशान हुआ, "अरे. . .वह. . ."

"वह बात झूठ है, सर्वथा झूठ है. करुत्तम्मा भ्रष्ट नहीं है."

"फिर भी, सब ऐसा ही कहते हैं न?"

"ऐसा ही कहते हैं. . .?" वह वहां से लौट आया.

इस तरह करुत्तम्मा के कारण एक अच्छे मल्लाह को धब्बा लग गया, किंतु इससे पलनी का पौरुष जाग उठा. उसने जिद पकड़ी कि वह मल्लाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचमी अंत में परी की बात सुना रही थी कि पलनी सामने खड़ा हो गया. करूत्तम्मा का रहस्य पकड़ा गया, लेकिन आज करूत्तम्मा ने अपने पति का हृदय जीतने की कोशिश नहीं की. . . . .पलनी ने पूछा, "तुम उसे प्रेम करती थी?"
"हां, करती थी." करूत्तम्मा ने कहा.

की ही तरह जियेगा, मरेगा, उसने करूत्तम्मा को भी आश्वासन दिया, "तू निश्चित रह. समुद्र की संपत्ति से ही पलनी का गुजारा होगा. एक बात जरूरी है करूत्तम्मा, तुझे अपनी मर्यादा का पालन करना है."

एक दिन जब वह लौटा. उसने अपने घर में चार-पांच औरतों को देखा. उन्होंने हंसते हुए कहा, "लड़की हुई है. उस छोटी बच्ची के आगमन ने उन दोनों के जीवन को गौरवान्वित किया. दोनों तीसरे प्राणी के लिए जीने लगे.

एक दिन पलनी ने नया समाचार सुनाया, "चेंपन, नयी औरत को घर पर लाया है." करूत्तम्मा पंचमी के लिए चिंतित हो गयी. वह कई बार पंचमी को देखने जाने का अनुरोध पलनी से कर चुकी थी, वह कभी भी तैयार न था. करूत्तम्मा भी जीवन को कटु होने से बचाना चाहती थी.

पल्किुन्नम जालवाले की नाव चेंपन ने खरीदी थी. अब पल्किुन्नम मर चुका था. अतः वह उसकी पत्नी पप्पी को पत्नी बनाकर ले आया. उसका पुत्र गंगाराम भी आया. पंचमी को सौतेली मां का आना अच्छा नहीं लगा. एक दिन पंचमी ने बहुत बड़ा कांड मचाया. पप्पी ने उसे शाप दिया, "अपनी बहन की तरह ही भ्रष्ट होगी, मुसलमान के साथ घूमेगी." चेंपन ने सुना. वह चौंक गया. उसने छड़ी से पंचमी की पिटाई की.

गंगाराम, पप्पी का बेटा उससे हर क्षण पैसे देने को विवश करता रहता था. उसने इन्हीं चेंपन के पैसों में से दो सौ निकालकर ले लिये. पंचमी ने कहीं से देखा, उसने जाकर चेंपन को खबर दी. चेंपन ने पप्पी को घर से बाहर कर दिया. पप्पी घाट पर निराश्रित फिरती रही.

बातचीत का विषय न बनने पर भी जिसका जीवन उस तट पर टूटता जा रहा था, वह नीर्क्कुन्नम तट की अविभाज्य कड़ी परी था. उस तट पर गिरी हुई झोंपड़ियों के भीतर रहने वालों में किसी की भी उनके गिरने के बाद तट पर नहीं देखा गया था, लेकिन परी वहीं था. शाम को तट पर घूमता हुआ वह जैसे बालू कणों में कोई खोई चीज ढूंढ़ता हो.

ऐसे ही वह आज खड़ा-खड़ा तट पर देख रहा था. तब एकाएक चेंपन वहां आया. परी जरा घबरा गया. कुछ क्षण बाद चेंपन ने परी से कहा, "तुमको कितने रुपये मिलने हैं?" परी ने हिसाब नहीं जोड़ा था, न उसे याद ही था. चेंपन ने जेब से रुपयों का पुलिंदा निकाला और पूछा, "कितने थे रे? मैंने सोचा, तू एक अच्छा इन्सान है, इसीलिए तूने ऐसा किया लेकिन तेरे मन में कुछ और था. तूने एक कुटुंब को बरबाद कर दिया है, यह तुझे मालूम नहीं है?" नोटों का वह पुलिंदा उसके हाथ में रख दिया और निकल गया. परी अपराधी की तरह खड़ा था. एक निकृष्ट कीट की तरह परी ने परिवार में प्रवेश किया था और उनका अंकुर ही खत्म कर डाला. उसे याद आया, एक दिन नाव के नीचे जो बच्ची उपा बटोरने के लिए आयी थी, वह उसे निर्निमेष देखती रही. उसने जो लाल रंग का शंख वहां से उठा लिया था, उसे उस लड़के ने मांगा था.

"यह शंख मुझे दोगी?" लड़की ने शंख दिया. शंख क्या दिया, उसके साथ अपना हृदय भी दे दिया, लेकिन परी का कोई दोष नहीं था.

पंचमी तृनकुन्नपुषा दिदिया के पास चली गयी. दोनों बहनें आलिंगन-बद्ध हो आंसू बहा रही थीं. पलनी ने इसे देखा. करूत्तम्मा को बहुत कुछ पूछना था. पलनी जब वहां नहीं रहता, उसी समय दोनों बहनें कुछ बातें कर पातीं.

पलनी और करूत्तम्मा में फिर द्वंद्व शुरू हुआ. शाम जब पलनी नाव के साथ समुद्र में गया, दोनों बहनें बातें करने लगीं. पंचमी ने मां की मृत्यु, सौतेली मां का आना, चेंपन का सब कुछ खो देना, यह सारी बातें कहीं. पंचमी अंत में परी की बात सुना रही थी कि पलनी सामने खड़ा हो गया. करूत्तम्मा का रहस्य पकड़ा गया, लेकिन आज करूत्तम्मा ने अपने पति का हृदय जीतने की कोशिश नहीं की. करूत्तम्मा में अब आत्मविश्वास उभर चुका था. पलनी ने पूछा, "तुम उसे प्रेम करती थी?"

"हां, करती थी." करूत्तम्मा ने कहा.

शाम को पलनी की नाव समुद्र में चली गयी. उसकी बच्ची दूर तक हाथ हिलाती रही, लेकिन पलनी ने उसकी तरफ देखा नहीं. वह नाव पर डांड ऐसे चला रहा था मानों उसकी सोयी हुई सारी शक्तियां जाग उठी हों.

पलनी को आज समुद्र का विस्तार छोटा दिखाई पड़ रहा था. दूर पश्चिम में समुद्र अत्यंत शांत था. उसके बीच में पलनी को कोई काली-सी छाया दिखाई पड़ रही थी. उस शांति में एक विशेषता थी कि उसमें नाव को इच्छानुसार नहीं ले जा सकते थे. वहां एक अंतर्वाहिनी धारा का खिंचाव है. लगता था, उधर कहीं भंवर है. पलनी ने उस खिंचाव का सामना करना चाहा.

रात देर तक करूत्तम्मा पंचमी से बातें करती रही. मां और परी की बातें हुईं. पंचमी बातें करते-करते सो गयी. करूत्तम्मा को नींद नहीं आयी. हवा एक ही गति से बहती रही. करूत्तम्मा को लगा, उस हवा में पहले न सुना हुआ एक दीन स्वर है. उसके कान खड़े हो गये. उसने बार-बार उस आवाज को पहचानने की कोशिश की. उसका मल्लाह अकेला समुद्र में गया था. वह दूर समुद्र में कांटा डाल रहा था, किंतु वह पड़ी-पड़ी परी के बारे में सोच रही थी. अंदर से कोई विरोध नहीं था. उसे लगा. वह आयेगा, बुलायेगा. वह उसी के लिए जाग पड़ी, "करूत्तम्मा!" पुकारने की आवाज आयी. ऐसे पलनी ही उसे पुकारता है.

"करूत्तम्मा!" आवाज फिर आयी.

"हां." करूत्तम्मा ने जवाब दिया. उसने दरवाजा खोला. परी उसके पास आया. वह एक दूसरे को देखते रहे. करूत्तम्मा को लगा कि सामने जो परी खड़ा है, उसके सर्वनाश का वही कारण है. कुछ ही क्षण में वह सारी विफलताएं भूल गयी. उसका आत्मविश्वास जागा. वह परी के बढ़ाये हाथों के बीच से उसकी छाती से लग गयी. दोनों के अधर मिल गये. परी ने उसके कान में कहा, "मेरी करूत्तम्मा."

मल्लाहों का अरुंधती मेघों में जा छिपा. पलनी को दिशाबोध नहीं हो सका. घनघोर अंधकार में वह नाव चला रहा था. आंधी आनी शुरू हुई.

एक क्षण के लिए सांस रोकते हुए पलनी चिल्लाया, "करूत्तम्मा . . ." आंधी ने जोर पकड़ा.

दूसरे दिन समुद्र फिर शांत था. पंचमी तट पर बच्ची को लेकर रो रही थी. दो दिन बाद आलिंगनबद्ध एक स्त्री-पुरुष के शरीर वहां किनारे लग गये. वह करूत्तम्मा और परी के शरीर थे. इसी तट पर कांटा निगला एक शार्क भी किनारे लगा था. □

संक्षिप्त रूपांतर : हिमा कौल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ उपन्यास

संस्कार

यू. आर. अनंत मूर्ति

कौन जीतेगा---रूढ़ीवादी कर्म-कांड या लोकतंत्रीय समाज? कौन हारेगा---अछूतों के सामने भगवान के ठेकेदार या भगवान के ठेकेदारों के सामने तथाकथित अछूत?---समाज में व्याप्त जड़-संस्कारों पर प्रहार करता एक उपन्यास, जिस पर कन्नड़ ही में इसी शीर्षक से गिरीश कर्नाड के निर्देशन में एक बहुचर्चित फिल्म भी बनी. . . .

भागीरथी की सूखी-सिकुड़ी देह को नहलाकर उन्होंने उसे कपड़े पहना दिये. पूजा-नैवेद्यादि संपन्न करके देव-प्रसाद का फूल उसके बालों में लगाया, चरणामृत पिलाया. भागीरथी ने उनके चरण-स्पर्श किये और आशीर्वाद पाया . . . बीस वर्षों से लगातार एक ढर्रे में बंधी जिंदगी!

"मुझसे बंधकर, क्या सुख मिला आपको? घर में संतान तो होनी ही चाहिए! आप दूसरी शादी कर लीजिए." कभी-कभी भागीरथी कहती तो प्राणेशाचार्य हंस देते, "मुझ बूढ़े की शादी . . . ?" अपनी रुग्ण पत्नी के लिए उनका मन करुणा से भर-भर आता.

भोजन से पहले गौग्रास दे ही रहे थे कि चंद्री आ पहुंची, "वे चल बसे!"

"नारायण!" कहते हुए प्राणेशाचार्य पास-पड़ोस में सबके यहां खबर कर आये . . . कहीं कोई अजाने में दाह-संस्कार से पूर्व भोजन न कर बैठे! सभी ने बच्चों को भीतर बिठाकर द्वार बंद कर दिये.

सभी ब्राह्मण प्राणेशाचार्य के घर के सामने आ खड़े हुए. सभी पत्नियों ने अपने-अपने पति को खामोश रहने की हिदायत दी. प्राणेशाचार्य ने धीमे स्वर में प्रश्न उठाते हुए कहा, "पहला प्रश्न तो यह कि नारणप्पा का शव-संस्कार होना चाहिए. संतान न होने की वजह से किसी दूसरे को ही यह काम करना होगा. दूसरा प्रश्न. . .'

'देखूं ब्राह्मण लोग क्या उत्तर देते हैं . . .' सोचती चंद्री खंभे से पीठ लगाये खड़ी थी.

पहले तो सभी ने नारणप्पा को भला-बुरा कहना शुरू किया पर जैसे ही संस्कार में खर्चे का प्रसंग आया चंद्री ने आगे बढ़कर अपने सारे गहने प्राणेशाचार्य के सामने रख दिये. सभी की आंखें फटी की फटी रह गयीं. औरतों ने हिसाब लगाया . . . कम से कम दो हजार का सोना तो होगा ही. गरुड़ाचार्य, लक्ष्मणाचार्य, दुर्गाभट्ट, पद्मनाभाचार्य सहित सभी लोग अब पिघलने लगे थे . . . पहले जैसी निंदा अब अनायास रुक-सी गयी थी. दासाचार्य ने परिजातपुर के ब्राह्मणों का प्रस्ताव रखा. फिर सोने का प्रश्न उठा, तो समझा गया कि वह भी पारिजातपुर ही चला जायेगा.

"आप लोग शांत रहिए. अभी शव का संस्कार होना है. पारिजातपुर-वालों को सूचित कर दीजिए. यदि वे चाहें तो उन्हें कर लेने दिया जाये . . . सोने की बात मेरे सामने न करें! . . . आप लोग अब जायें, मैं इस संदर्भ में शास्त्रों का अध्ययन कर लूं." प्राणेशाचार्य दुखी मन से बोले.

दुर्वासापुर के ब्राह्मण पारिजातपुर पहुंचे तो शंकरय्या तुरंत संस्कार के लिए तैयार हो गये. दुर्गाभट्ट ने जब समझाया कि नारणप्पा के कृत्य तो राक्षसों जैसे थे . . . कौन जाति-भ्रष्ट होगा! तो शंकरय्या ने भी सोच-समझकर कहा, "हम जल्दी में कुछ नहीं करेंगे. प्राणेशाचार्यजी का निर्णय आ जाने दीजिए . . . फिर हम नारणप्पा का दाह-संस्कार करने को तैयार हैं. साहूकार मंजय्या ने भी कहा, "वह मेरा मित्र था. दान आदि मैं करवाऊंगा."

कुछ द्रवित होकर प्राणेशाचार्य ने चंद्री को बैठ जाने को कहा और भीतर जाकर पत्नी को सारा वृतांत सुनाया. फिर वे उन स्मृतियों में खो गये जिनके अनुसार उन्होंने नारणप्पा की मां को वचन दिया था कि 'तुम्हारे बेटे को ठीक रास्ते पर ले आऊंगा!' पर नारणप्पा तो ब्राह्मणों के पीछे ही हाथ धोकर पड़ा था. वह कहता था . . . "विधवाओं की जायदाद हड़पनेवाला, जादू-टोना करवाकर दूसरों की बुराई करवानेवाला गरुड़ आपकी दृष्टि में ब्राह्मण है न!" कभी-कभी तो वह कहता . . . "देखते हैं, आचार्यजी, अंत में आप जीतते हैं या मैं! कितने दिन तक आपका ऐसा ब्राह्मणत्व चलेगा? अब आपका शास्त्र, धर्म नहीं चलेगा. आगे आयेगा कांग्रेस का राज! अछूतों को देव-स्थान में प्रवेश का अधिकार आपको देना होगा . . ." देर तक आचार्य धर्मग्रंथों का अवलोकन करते रहे.

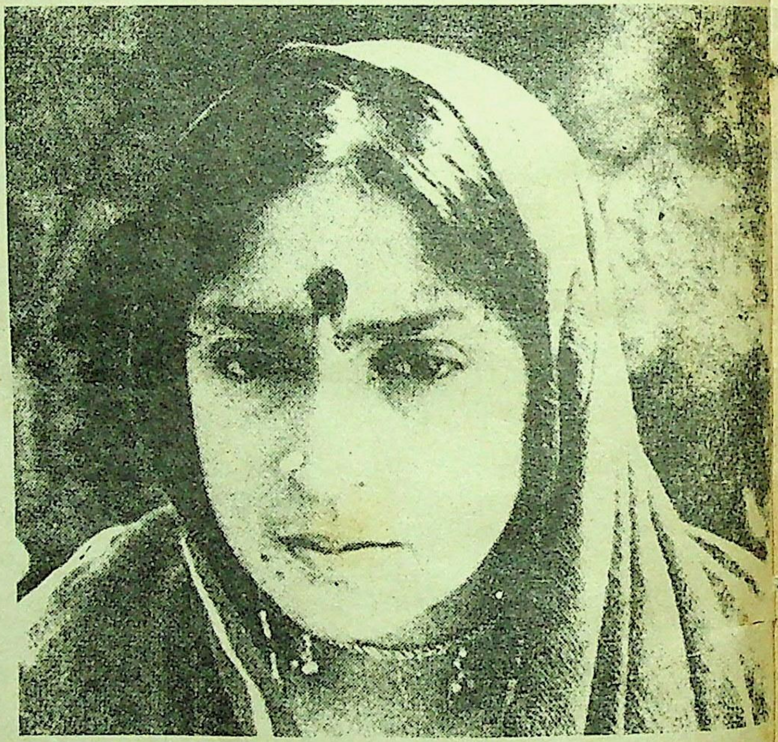

पारिजातपुर से लौटे ब्राह्मण आराम करना चाहते थे पर उनकी पत्नियों ने 'कांता-सम्मिता' ही शुरू कर दी. चांडाल नारणप्पा की प्रेरणा से गरुड़ाचार्य का बेटा श्याम मिलिट्री में क्या चला गया . . . उनकी पत्नी सीतादेवी ने पूरा घर सिर पर उठा लिया . . . अब जब सीतादेवी घर लौटीं तो उनके मस्तिष्क में रह-रहकर यह विचार आ रहा था कि चंद्री के गहने एक बार हाथ लग जाते तो उनका बेटा वापस लौट आता. धर्मशास्त्र के अनुसार उनके पति को ही नारणप्पा के शव-संस्कार का अधिकार मिलना चाहिए. पत्नी से बातचीत हुई भी, और गरुड़ाचार्य ने पत्नी को इस विषय में हतोत्साहित भी किया . . . फिर भी उनके कदम प्राणेशाचार्य के घर की तरफ बढ़ लिये.

"श्याम को मिलिट्री से न छुड़ाया तो मेरा संस्कार कौन करेगा आचार्यजी? यदि आप कहें तो . . ." गरुड़ाचार्य घिघिया रहे थे कि उसी वक्त लक्ष्मणाचाय भी आ पहुंचे. वे भी उकसाये हुए से वहां पहुंचे थे.

"आचार्यजी, धर्मशास्त्र के अनुसार कोई बाधा न हो तो संस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है... कुछ भी हो मेरा तो साढ़ू ही था न!" लक्ष्मणाचार्य जैसे अपने अधिकार का तर्क पेश कर रहे थे. गरुड़ाचार्य ने तभी उनकी दुखती रग पर हाथ धर दिया, "देखिए, शव-संस्कार का अधिकार बेशक आपका है... पर गहने या तो कोर्ट में दाखिल होने चाहिए या धर्मपीठ के न्याय के मुताबिक मुझे मिलने चाहिए."

प्राणेशाचार्य क्षुब्ध हो उठे. तभी दासाचार्य के नेतृत्व में दूसरे ब्राह्मण भी आ जमा हुए. उसने धैर्यपूर्वक कहा, "हमें न सोना चाहिए, न कुछ और. . .आप आदेश दें, हम चारों अभी शव का संस्कार कर आते हैं... सोने से आप हनुमानजी की मूर्ति के लिए एक मुकुट बनवा दीजिए!" प्राणेशाचार्य के भीतर यह सुनकर एक प्रेरणा जगी. पर उन्होंने धीरे-से कहा, "अब आप घर जायें, मैं आज रात इसका उत्तर खोज निकालूंगा."

इसके बाद प्राणेशाचार्य उद्विग्न मन से भीतर-बाहर, बाहर-भीतर चहलकदमी करते रहे. आंगन में बैठी चंद्री को अंदर बैठ जाने को कह वे एक बार रुग्ण पत्नी की सेवा में पहुंचे और फिर धर्मग्रंथों की दुनिया में खो गये.

नाटक देखकर लौटनेवाले श्रीपति को उस पूरे प्रसंग का पता न चल सका था. अंधेरे रास्ते के बीच कभी-कभार टार्च की रोशनी फेंकता उल्लसित मन से वह बढ़ा चला आ रहा था. दुर्वासापुर के निकट आते ही उसकी देह क्या गरमाने लगी कि उसे पत्नी की उस हरकत पर क्षोभ हो आया, जब वह कैंची की तरह अपनी टांगें फंसाकर

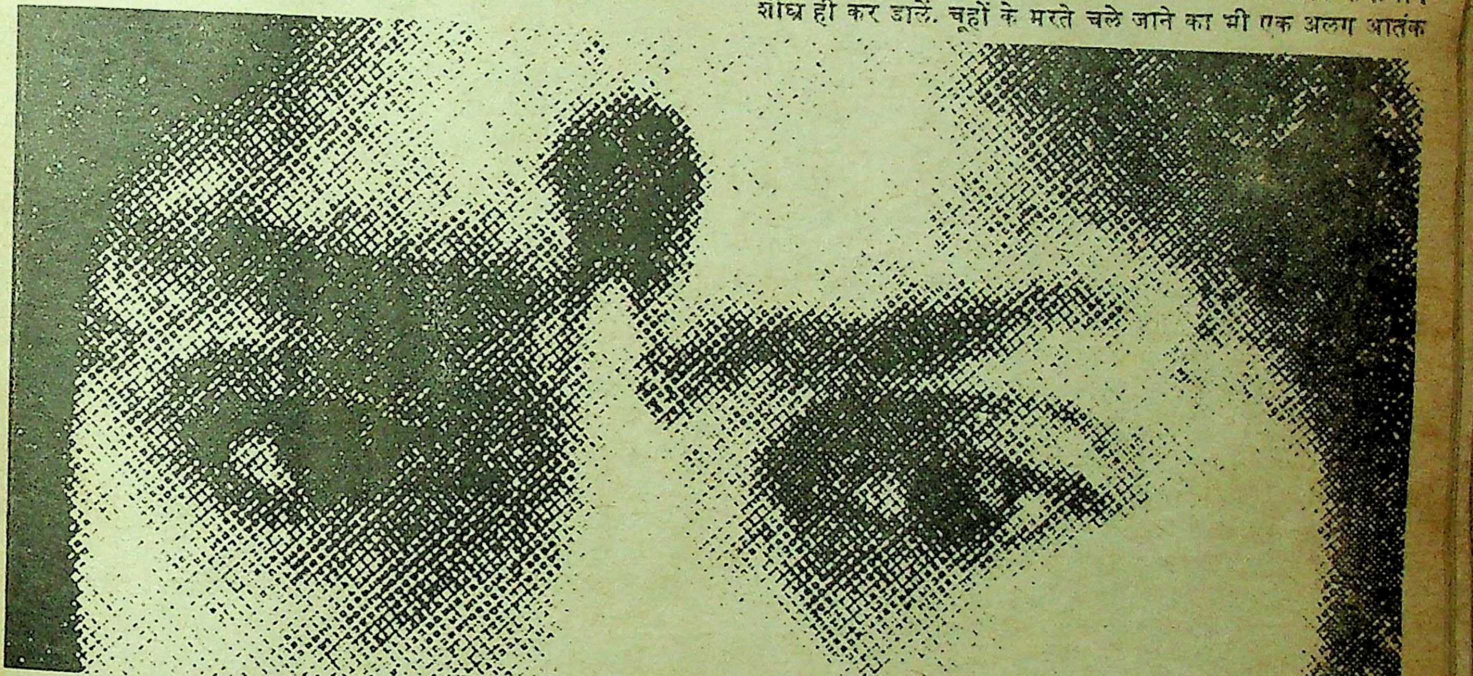

सो जाती... दूसरे ही क्षण उसे बेल्ली की याद हो आयी. बेल्ली, यानी अछूत औरत. पर ब्राह्मणों की कौन-सी लड़की है जो उसकी बराबरी कर सकेगी!

बेल्ली के लाख ना-नुकर करने के बाद भी उसने उसे जमीन पर खींच ही लिया. कामलिप्सा के उतावलेपन में बेल्ली की इस सूचना को भी उसने अनसुना कर दिया कि पिल्य और उसकी बीवी खत्म हो गये... कि चूहों का आतंक कितना गहरा गया है! फिर वह सीधा नारणप्पा के घर पहुंचा. सोचा कि पी-पाकर बेसुध पड़ा है. पर छूते ही होश उड़ गये... शरीर एकदम ठंडा था. फिर तो वह पारिजातपुर के नागराज के घर की तरफ ऐसा भागा कि दरवाजा तक बंद करना भूल गया.

"रे बदमाश, तेरे ही कारण नारणप्पा ने जात गंवाई और उस रांड के साथ रहने लगा. तुम लोग अपने-आपको ब्राह्मण कहते हो... बैठे हो उसके शव को लेकर... रौरव नरक में जाकर मरोगे...!" वृद्धा लक्ष्मीदेवम्मा गरुड़ाचार्य के घर के सामने खड़ी गरिया रही थी. लक्ष्मीदेवम्मा बाल विधवा थी. जो कुछ जायदाद उसके पास थी, वह गरुड़ाचार्य के पिता ने हथिया ली निगरानी के बहाने... उस उम्र तक आते-आते गरुड़ाचार्य के पिता भी चल बसे. अब वह करीब-करीब बेसहारा ही हो गयी थी. पागलों की तरह घूमती रहती. गरुड़ाचार्य की पत्नी ने उसे जिस तरह से दुख दिये, उनसे यही होना स्वाभाविक भी था.

उधर चंद्री प्राणेशाचार्य के चबूतरे पर पड़ी-पड़ी अपने अतीत को याद कर रही थी. साथ ही उसे भय था कि अगर नारणप्पा का संस्कार विधिवत् न हुआ तो वह भूत-प्रेत बन जायेगा... अब तो सब कुछ प्राणेशाचार्य पर ही निर्भर करता है. सोचते-सोचते वह सोयी ही थी कि प्राणेशाचार्य चटाई व सिरहाना ले आये, "यह ले लो." फिर कुछ क्षण बाद ही लौटे, "यह लो चंद्री! तुम्हारी उदारता ने संस्कार को और अधिक उलझा दिया है. यह गहने तुम अपने पास रखो. नारणप्पा तो मर गया है... पर तुम्हारी तो सारी जिंदगी पड़ी है!" कहते हुए गहने उसे सौंपकर वापस लौट गये.

दासाचार्य, वेंकट रमणाचार्य, गुंडाचार्य, हनुमंताचार्य, लक्ष्मणाचार्य, गरुड़ाचार्य और दुर्गाभट्ट... सभी भूख से बेहाल होने की वजह से रात भर सो न सके थे. फिर लक्ष्मीदेवम्मा ने श्रीपति को भागता देख सोचा कि यह नारणप्पा का प्रेत है... सो पूरे अग्रहार में शोर मचा दिया था... इस बात से भी सभी परेशान थे. हारकर सबने प्राणेशाचार्य से विनती की कि वे हनुमानजी की आज्ञा ले आयें और समस्या का समाधान शीघ्र ही कर डालें. चूहों के मरते चले जाने का भी एक अलग आतंक ठहरने लगा था. प्राणेशाचार्य नहा-धोकर हनुमानजी की मूर्ति के सामने जा बैठे कि 'हे प्रभो, आपकी स्वीकृति हो तो दांयी ओर का पुष्प प्रसाद मुझे दें... निषेध हो तो बांयी ओर का... आपका संकेत पाने तक मैं यहीं बैठा हूं."

उधर भूख से व्याकुल दासाचार्य चुपके-से पारिजातपुर जा पहुंचा और मंजय्या के घर खा-पी आया. लौटा तो लोग एक साथ जमीन पर उतर आये गिद्धों को उड़ाने के प्रयत्नों में लग गये. दासाचार्य के सुझाव पर झांझ, मजीरे और शंख बजाये, तब जाकर गिद्धों ने मैदान छोड़ा.

सूरज आसमान में चढ़ आया था. वृक्ष की छाया में बैठी चंद्री थकावट के मारे परेशान हुई जा रही थी. प्राणेशाचार्य को हनुमानजी के आगे विनीत भाव से देखा तो अपराध भाव से भर उठी... कि मेरे ही कारण यह देव-तुल्य व्यक्ति इतनी मुसीबत झेल रहा है. अजाने ही में उसने केला छीला और खाने बैठ गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन विभाग-नवीनतम आकर्षण

* भारत में अंग्रेजी राज
लेo : सुन्दरलाल — खण्ड 1 44.00
खण्ड-2 40.00

* भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास
लेo : डा. ताराचन्द — खण्ड-2 40.00
खण्ड-3 35.00
खण्ड-4(प्रेस में)

* भारतीय शहीदों का परिचय—खण्ड-1 45.00

* गांधी कथा (चित्रों में) 10.00
लेo : एस.डी. सावन्त तथा एस.डी. बदलकर

* महात्मा गांधी जीवन और चिन्तन 12.00
लेo : जे.बी. कृपलानी

* बापू के आशीर्वाद 60.00
संकलन : टी. हिंगोराणी

* भारतीय मुस्लिम त्यौहार और रीति-रिवाज 10.00
लेo : डा. माज़दा असद

* बुद्धिजीवी औरसामाजिक दायित्व 3.50
लेo : शिव मंगलसिंह (सुमन)

* रवीन्द्रनाथ ठाकुर 10.00
लेo : हिरण्यमय बनर्जी

* भीमराव अम्बेडकर 14.00
लेo : डब्ल्यू.एन. कुबेर

* एस. सत्यमूर्ति 17.00
लेo : आर. पार्थसारथी

* कंदुकुरि वीरेशलिंगम 8.00
लेo : डी. अंजने युलु

* एम.आर. जयकर 18.00
लेo : बी.बी. कुलकर्णी

* स्वामी विवेकानन्द 18.00
लेo : बी.के.आर.वी. राव

* स्वराज्य के मंत्रदाता तिलक 11.00

* अमर शहीद भगतसिंह 13.50

* एक पृष्ठ इतिहास का 10.00
(दिवंगत प्रधानमंत्री इंदिरागांधी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर आकाशवाणी दवारा प्रसारित वार्ताओं एवं रूपकों का संकलन

* चुनौती भरे वर्ष
(दिवंगत प्रधानमंत्री इंदिरागांधी के 1966 से 1969 तक के भाषणों का संग्रह)
सजिल्द 18.00
साधारण 15.00

* जवाहरलाल नेहरू के भाषण
(14 अगस्त 1947 से जुलाई, 1961 तक के चुने हुए भाषण) सजिल्द 16.00
साधारण 12.00

* नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (तीन खण्डों में)
खण्ड-1 (सजिल्द) 28.00
साधारण 22.00
खण्ड-2 (सजिल्द) 30.00
साधारण 25.00
खण्ड-3 (प्रेस में)

* भारतेन्दु हरिशचन्द्र 8.00

* आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी 5.00
लेo : रामेश्वर उपाध्याय

* अंतर्राष्ट्रीय खेल और भारत 13.00

* खेल खिलाडी—लेo : अजय भल्ला 7.00

* चिड़ियों की दुनियां 10.00
लेo : राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

* सिंह—लेo : रामेश बेदी 3.25

* सुन्दर लोक कथाएं (पांचवा संस्कo) 6.00

* अन्ना साहब कर्वे (रंगीन चित्रों में) 4.50

* बाल महाभारत खण्ड-1 (चक्रव्यूह) 4.50

* हसंते हुए मोती—लेo : चन्द्रदत्त इन्दु 8.00

* स्वर्ण हंस तथा अन्य जातक कथाएं 9.00
लेo : उषा बाला

* छोटी-छोटी चुभन 9.00
लेo : मालती शंकर

* रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियां 12.00
लेo : देवलीना

* सिंहों के जंगल में 13.00
लेo : रामेश बेदी

* सारथी का बेटा 11.50

* यह भारत—लेo : शीलाधर 10.00

* सुन्दर वस्तुएं 12.50
लेo : विद्या दहीजिया

* वैदिक काल की कहानियां 6.00
लेo : डा. शुभा शर्मा

* सरीसृप की कहानी 10.00
लेo : शिवतोष दास

* सिंधी लोक कथाएं 12.00

* नीति कथाएं—लेo : कुसुमकुमार 10.00

* जैन कहानियां—लेo: सुधा जैन 10.00

* भारत की अध्यात्मिक कथाएं 7.00
लेo: चमनलाल

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त पुस्तकों की खरीद पर 10% की छूट। विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओ में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं। निःशुल्क सूची-पत्र मंगाइए।

(डाक खर्च मुफ्त)

25 रु. से कम के आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रिजस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा। पुस्तकें स्थानीय विक्रेताओं से लें अथवा सीधे हमें लिखें :

व्यापार व्यवस्थापक,
विक्रय केन्द्र
प्रकाशन विभाग ।

* पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001
* सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
* बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
* 10-बी स्टेशन रोड, लखनऊ-226001

davp 84/231

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणेशाचार्य ने बहुतेरी अनुनय-विनय करके देख ली पर हनुमान-जी शांत और स्थिर रहे. कोई प्रत्युत्तर नहीं. फिर अनायास प्राणेशाचार्य को रुग्ण पत्नी की दवाई का खयाल आया तो वे उठ खड़े हुए. जंगल के अंधेरे में वे घर की तरफ बढ़े जा रहे थे, तभी चूड़ियों की खनक सुनायी दी. यह चंद्री थी. उसकी इच्छा हुई कि वह उनके पैरों पर लोट जाये. कितनी विपदा में डाल दिया है उन्हें . . . अगले ही क्षण वह उनके चरणों पर झुक रही थी.

वह अगला क्षण, स्त्री-सुख से अपरिचित प्राणेशाचार्य के लिए जीवन का एक अविस्मरणीय अनुभव बन गया. वे गहरी संवेदना से रोमांचित हो उठे. प्राणेशाचार्य को मजबूत आलिंगन में बांध चंद्री देर रात तक लेटी रोती रही.

आधी रात को आचार्य की नींद टूटी. मैं कहां हूं? यहां कैसे आया? यह स्त्री कौन है? एक साथ कई प्रश्न आचार्य के दिमाग में कौंधने लगे. घबराई हुई चंद्री शांत-स्थिर पड़ी रही निःशब्द. आखिरकार आचार्य उठ खड़े हुए, "उठो चंद्री, चलें. कल जब ब्राह्मण लोग इकट्ठ होंगे तो उन्हें यह सब बता देना. तुम स्वयं ही बतलाना . . . शव-संस्कार के लिए मैं स्वयं तैयार हूं . . ."

दोनों ने एक साथ नदी पार की. चंद्री को चिंताएं सताने लगी थीं. जो कुछ वह करती है, उसका फल ऐसा क्यों निकलता है! आचार्यजी भी तो कितनी परेशानी से घिर गये हैं! फिर चंद्री ने सोचा कि क्यों न अपने मृत स्वामी के यहां एक बार हो आये. घर पहुंची तो उसे नारणप्पा के शव की हालत देखकर असहनीय ठेस लगी. शव वीभत्स रूप से गंधा रहा था. दूसरे ही क्षण वह दौड़ पड़ी. शेषय्या के घर पहुंची तो वह ताड़ी पीकर बेहोश पड़ा था. चंद्री ने जब उससे बैलगाड़ी में शव ढोने का आग्रह किया तो उसने साफ मना कर दिया, "चंद्रम्मा, यह नहीं हो सकता. ब्राह्मण के शव को छूकर मैं नरक जाऊंगा क्या?"

चंद्री लौटकर सीधे मछलियों के व्यापारी अहमद से मिली. कभी उसकी मदद की थी उसने. अहमद को भी वह याद हो आयी. फिर क्या था, उसने बैलगाड़ी निकाली और लकड़ियों सहित शव लादकर श्मशान की तरफ चल दिया. किसी को कानों कान खबर तक न लगी और शव-दाह संपन्न हो गया. चंद्री रोयी, घर से कुछ सामान और गहने लेकर निकल पड़ी. प्राणेशाचार्य के चरण-स्पर्श करने की इच्छा को मन ही मन दबाये वह सीधे कुंदापुर जानेवाली पहली बस की प्रतीक्षा करने जा पहुंची.

उधर पारिजातपुर में मंजय्या के घर श्रीपति, गणेश, गंगप्पा, मंजुनाथ और अग्रहार के चार-पांच युवक 'गुलबकावली' नाटक की रिहर्सल के बाद लौट रहे थे. श्रीपति ने आर्द्र स्वर में कहा, "नारणप्पा हमारा अभिन्न मित्र था. हमने उसे कुछ भी तो नहीं दिया. चलो उसका संस्कार ही कर आयें."

सभी नारणप्पा के घर चल दिये. वहां पहुंचे तो सुन्न रह गये. क्या नारणप्पा भूत बनकर उड़ गया था?

वे सब सड़क पर उतर आये. लक्ष्मीदेवम्मा घूम रही थी. उन्हें जाते देखा तो चिल्ला पड़ी . . . "देखो-देखो प्रेत जा रहे हैं!"

अंधेरा छंटने लगा. सूर्य की किरणें छतों की कड़ियों से छनकर भीतर आयीं. प्राणेशाचार्य ने मंगलध्वनि की आवाज सुनी तो विस्मय से बाहर आकर देखा. लोग छतों पर जा जमे गिद्धों को उड़ाने कोशिश कर रहे थे. वे ऐसी उलझन में थे जिससे छुटकारा मिलना संभव न था. चीलों और गिद्धों को उड़ाने में व्यस्त ब्राह्मण अब उनके पास आकर खड़े हो गये. आचार्य पसीने से करीब-करीब भीग ही गये . . . . फिर उन्हें अपने हित की बात छिपाने की भी इच्छा होने लगी. उनके मुंह से केवल यही निकला, "आप लोग वही करें जो आप ठीक समझें!" ब्राह्मण अवाक् रह गये. दासाचार्य बोले, "हमें कैमर अग्रहार जाना चाहिए. वहां के सुब्बणाचार्यजी से पूछ लेते हैं!" सभी तैयार भी हो गये. प्राणेशाचार्य को कुछ राहत महसूस हुई.

जब वे लोग कैमर जाने लगे तो प्राणेशाचार्य ने पत्नी के रजस्वला होने के कारण चलने में असमर्थता दिखायी. कैमर पहुंचकर ब्राह्मणों ने डटकर भोजन ग्रहण किया. दूसरे दिन सुबह पता लगा कि दासाचार्य ज्वरग्रस्त पड़े हैं. मठ जाना इसलिए जरूरी हो गया क्योंकि सुब्बणाचार्य कोई सलाह दे पाने में असमर्थ थे. मठ की यात्रा शुरू हुए दूसरा दिन ही था कि पद्मनाभाचार्य तेज बुखार में पड़ गये.

इधर अग्रहार में प्राणेशाचार्य की असहाय पत्नी ने भी दम तोड़ दिया. गिद्धों और चीलों का अब भी वही आलम था. फिर पत्नी भी चल बसी. 'चंद्री-चंद्री' चिल्लाते हुए प्राणेशाचार्य नारणप्पा के घर की ओर दौड़ पड़े . . . पर जैसे ही शव का विचार मन में आया वे लौट लिये दूसरे अग्रहार की ओर . . . सीधे सुब्बणाचार्य के घर. चार ब्राह्मण, जो अभी-अभी दासाचार्य का संस्कार करके लौटे थे, उनके साथ हो लिये. पौ फटने से पहले ही प्राणेशाचार्य की पत्नी का संस्कार भी कर दिया गया. उधर मठ में सहभोज समाप्त होने पर जब गुरुजी को पता लगा कि समस्या क्या है . . . तो वे कुछ देर ठहरकर बोले, "उचित और पूर्ण कर्मकांड के साथ उसका दाह-संस्कार किया जाये. लेकिन दोषों का परिहार भी आवश्यक है. सारी जायदाद, सोने-चांदी सहित मठ को अर्पित कर देनी होगी!"

इस पर लक्ष्मणाचार्य और गरुड़ाचार्य ने अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करनेवाले वक्तव्य दिये, पर बाद में उन्हें माफी मांगनी पड़ी. लौटने तक गरुड़ाचार्य भी ज्वरातिरेक से घिर गये थे. सभी को संस्कार की जल्दी थी. अतः अन्य ब्राह्मण ठहरे नहीं.

इधर प्राणेशाचार्य, पत्नी के संस्कार के बाद पूर्व की ओर चल निकले. उनके मन में यह पश्चाताप भी हुआ कि भस्म हुई राख और अधजली अस्थियों को उठाने तक का धैर्य उनमें नहीं रहा . . . पत्नी के संस्कार के बाद तुरंत मैं वहां से भाग क्यों आया! यह सब क्या और कैसे हो गया? . . वह घड़ी मात्र एक स्मृति बनकर रह गयी है, लेकिन स्मृति के उभरते ही फिर-फिर चंद्री की कामना क्यों करने लगता हूं!

विचारमग्न प्राणेशाचार्य रह-रहकर सोचे चले जा रहे थे कि क्यों न चंद्री के पास चला जाऊं, अपने मित्र महाबल की तरह जीना प्रारंभ कर दूं! फिर वे भिक्षुक ब्राह्मण बने घूमते रहे. ग्वाले और पुट्ट तक को भी उन्होंने अपना सही परिचय न दिया.

मंजय्या को जिस चीज ने परेशान कर रखा था . . . वह थी एक के बाद एक मौत. नारणप्पा के बाद दासाचार्य, फिर प्राणेशाचार्य की पत्नी . . . यानी महामारी फैल रही है. जबकि ब्राह्मणों का विश्वास था कि ऐसा नारायण की अकाल मृत्यु से हुआ है. 'तायनाडु' का जो अंक उसने पिछले सप्ताह ही देखा था, उसमें साफ छपी खबर थी . . . 'शिवमोग्गा में प्लेग' यानी नारणप्पा ही शिवमोग्गा से अग्रहार लाया था यह छूत की बीमारी! इतने समय तक महामारी की रोकथाम के उपाय करने की जगह ब्राह्मण अंधविश्वासों और रूढ़ियों से चिपटे रहे. घर के बाहर खड़े होकर उसने सभी से कहा, "बैलगाड़ियां तैयार कर लो! अब समय नहीं है. किसी भी समय 'प्लेग' की हवा नदी पार कर सकती है . . . जब तक मैं दुर्वासापुर से लौट न आऊं कोई दुर्वासापुर के पास भी न फटके!" थोड़ी ही देर बाद उसकी बैलगाड़ी तीर्थहल्ली की तरफ बढ़ी चली जा रही थी.

इधर मालेर का पुट्ट प्राणेशाचार्य को रास्ते में क्या मिला, पीछे ही लग गया. वे बार-बार उससे पीछा छुड़ाने की चेष्टा करते पर वह फिर-फिर उनसे जा लिपटता. रास्ते भर वह उनका मन लगाने की चेष्टा करता रहा पर प्राणेशाचार्य का मन तो कहीं और ही रमा हुआ था.

उधर गरुड़, लक्ष्मण और दूसरे ब्राह्मण दुर्वासापुर पहुंचे तो सूरज डूबने को ही था. अग्रहार में उन्होंने झिझकते हुए प्रवेश किया. प्राणेशाचार्य के घर के बाहर आवाजें लगायीं पर कोई उत्तर न मिला. सभी के मन में नारणप्पा के संस्कार की बात रह-रहकर उठ रही थी. निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह किया गया कि प्राणेशाचार्य संभवतः नदी पर स्नान के लिए गये होंगे... उनके आने तक प्रतीक्षा की जाये! फिर सोच-विचारकर, नारणप्पा के घर के बाहर, मिट्टी के बर्तन में आग रख दी गयी.

इधर प्राणेशाचार्य पुट्ट से पीछा छुड़ाने की तरकीब सोच रहे थे उधर पुट्ट और करीबतर होता जा रहा था. सुनार के पास जाने का बहाना बनाया तो वह साथ हो लिया. अंगूठी बिकवा दी और पैसे छिलवा दिये. वह तो और मोल-भाव कर रहा था पर आचार्य दस ही रुपये में संतुष्ट हो गये. पुट्ट इस पर बहुत नाराज भी हुआ कि 'इस कलियुग में कोई बुद्धू बना रहकर जी नहीं सकता और आप हैं कि...' फिर आचार्य ने मंदिर में भोजन करने के बहाने पीछा छुड़ाना चाहा. पर वहां अजीब परेशानी में पड़ गये आचार्य. एक भोजन परोसनेवाले ने जब उन्हें पहचान ही लिया तो फिर आचार्य वहां नहीं रुके. उठे और चल दिये.

मंदिर से बाहर निकले थे ही कि पुट्ट इंतजार में खड़ा था. उसने नया झमेला खड़ा कर दिया... पद्मावती से मिलकर, "इस भ्रम में मत पड़िएगा कि यह स्त्री कोई सामान्य वेश्या है. नहीं महाराज! छोटी जाति का एक भी व्यक्ति इसके पास नहीं फटकता है. उसकी अपनी भावनाएं ऐसी हैं कि वह किसी चालू ब्राह्मण तक को स्वीकार नहीं करती... हमारे पुराने ऋषि-मुनि जीवित होते तो उस पर मोहित हो जाते! आपको वह अच्छी लगी या नहीं?"

संकरी गली को लांघकर वे लोग मेले की परिधि में थे. वहां एक आदमी महामारी से बचने के लिए टीका लगवाने की मुनादी कर रहा था. आचार्य सोच रहे थे कि इसी क्षण उन्हें निर्णय भी लेना है... पचीस वर्ष की अनुशासनपूर्ण जिंदगी को छोड़ दें या... नारणप्पा का संस्कार भी तो कितना जरूरी है! कोढ़ से विगलित भिक्षुक को देखकर सहसा उन्हें नारणप्पा के शव की याद हो आयी.

प्राणेशाचार्य सोच में पड़ गये—'नारणप्पा के संस्कार का दायित्व मुझे अपने ऊपर ले लेना चाहिए.' फिर वे देर तक चंद्री के साथ अपनी जिंदगी की अविस्मरणीय घटना पर, मेले में चालू दूकान की कॉफी पी लेने पर, पद्मावति के प्रति अपने भीतर पनपते आकर्षण पर, सूतक की दशा में भी मंदिर में भोजन कर लेने पर.. विचार करते रहे—'कुछ हो गयी भूलों की स्वीकारोक्ति भर नहीं है यह. यही मेरा सत्य है!'

"आचार्यजी, मैं आपके साथ चलूंगा कुंदापुर तक. मैंने अभी तक बताया नहीं आपको कि मैं अपनी पत्नी और बच्चों को लाने के लिए वहां जाने ही वाला था. आप मेरी पत्नी को सदुपदेश दीजिएगा!... और पदमावती के यहां आप रात को सोयेंगे, यह बात किसी और को बिल्कुल मालूम नहीं होगी. निश्चित रहें आप." पुट्ट ने जब यह नयी समस्या खड़ी कर दी तो आचार्य भयग्रस्त हो उठे. आचार्य ने भीतर से बहुत चाहा कि इस आदमी को अब सच्चाई बता ही देनी चाहिए पर उनका मुंह खुल नहीं रहा था. खुला भी तो झूठ बोलते हुए, "मेरा भाई दुर्वासापुर में मृत्युशैया पर पड़ा है. मंदिर में मुझे यह खबर मिली है. इस स्थिति में मैं..."

पुट्ट ने लंबा सांस खींचते हुए अपनी सहमति जतायी, "तब तो..." प्राणेशाचार्य चलने को उद्यत हुए, "देखो, फिर कब तुमसे भेंट होगी! पद्मावती से कहना, मैं लौटते हुए उससे मिलूंगा."

"इस अंधेरे जंगली रास्ते में आप अकेले... मैं भी चलता हूं आपके साथ!" पुट्ट अड़ गया तो वे कुछ कह न सके. पुट्ट के तर्क इतने प्रभावपूर्ण थे कि प्राणेशाचार्य बोलना चाहकर भी चुप ही रह गये. पुट्ट ने दुर्वासापुर में नारणप्पा से मिलने की बात भी उठायी... वह उसका पुराना मित्र निकला. यह भी बताया कि पद्मावति ने उसे घास नहीं डाली.

'इसे कैसे बताऊं कि नारणप्पा तो कब का चल बसा!... फिर दुर्वासापुर के ब्राह्मणों का सामना मैं कैसे कर सकूंगा! क्या पहले पुट्ट को सब कुछ सच-सच बताकर इसकी प्रतिक्रिया देख लूं? इस समय यही मेरा अंतरंग है...' प्राणेशाचार्य सोचते रहे फिर बोले, "तो चलो!"

'इस से अच्छी दिशुम-दिशुम तो हम घर पर ही कर लेते हैं।'

व्यंग्य चित्र: सुशील कालरा

पीछे से बढ़ी चली आ रही गाड़ी को पुट्ट ने हाथ का इशारा देकर रोक लिया, "सुनिए, आप आगंबे की तरफ जा रहे हैं तो... क्या हम दो जनों को भी अपने साथ बिठा सकेंगे?"

"लेकिन मेरी गाड़ी में तो एक ही आदमी और बैठ सकता है!" सुनहरी किनारी के दुशालेवाले आदमी ने सहजता से कहा.

पुट्ट ने आचार्य का हाथ पकड़ा और कहा, "तब फिर आप ही बैठ जाइए!"

"अरे नहीं, साथ चलेंगे... पैदल ही." आचार्य ने जिद करते हुए पुट्ट से कहा.

"नहीं नहीं, इतना लंबा रास्ता है... आप थक जायेंगे. मैं कल आपके दर्शन करूंगा."

पुट्ट ने जोर देकर आचार्य को गाड़ी पर चढ़ा ही दिया, "अरे चढ़िए न, जल्दी कीजिए!"

गाड़ी चल पड़ी.

'सफर के चार-पांच घंटे अभी बाकी हैं. फिर उसके बाद?' आचार्य सोचने लगे.

आकाश तारों से भरा था. एक कोने में कहीं द्वितीया का चांद था. एक तरफ अलग सप्तर्षि मंडल... अनायास कहीं से ढोल की आवाज आयी. इधर-उधर से मशालों की रोशनी उभर आयी और साथ ही पहाड़ी पर गाड़ी खींचते हुए बैलों की सांस-उसांस की ऊंची आवाजें भी... यात्रा अभी शेष है. पर इसके बाद क्या होगा..!

प्राणेशाचार्य उत्सुकता, उद्विग्नता और आशा से उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे. □

संक्षिप्त रूपांतर : महेश दर्पण

- **संपूर्ण उपन्यास राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-2 से प्रकाशित.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंडहर

स्मृतियां और फंतासी जब मिलती हैं तो कैसे अनोखे संसार की सृष्टि होती है. . . .! प्रेमेंद्र मित्र की कहानी पर आधारित मृणाल सेन की चर्चित फिल्म 'खंडहर' का यह सीक्वेंस कहानी के उस मार्मिक अंश को सामने रखता है जो समूची फिल्म का प्राण तत्व है. यह सीक्वेंस इसी फिल्म के संवाद लेखक प्रस्तुत कर रहे हैं——

एक अंधियारे गलियारे का लाँग शॉट. जामिनी, रास्ता दिखाती हुई फ्रेम से बाहर हो जाती है, दीपू उसके पीछे-पीछे आता है. सुभाष जो पीछे था, क्षण भर के लिए रुकता है और इधर-उधर देखता है. जामिनी के पुकारने पर वह कैमरे की ओर आता है.

जामिनी : मां सो रही थी, तुम्हारी आवाज सुनकर जाग गयी.

दीपू : सुभाष ताईजी का फोटो खींचने के लिए आया है.

जामिनी : ओह . . . अच्छा. . मां का एक भी फोटो भी नहीं था. . .आइये. . इधर से.

खाली गलियारा. . . जामिनी फ्रेम के दायें से प्रवेश करती है और उन की तरफ मुड़ती है, कैमरों से दूर जाने से पूर्व उन को संभल कर आने के लिए सावधान करती है, क्योंकि प्रवेश-द्वार बहुत ही छोटा है.

सुभाष और दीपू एक्सट्रीम लाँग शॉट में उस के पीछी-पीछे जाते हैं.

जामिनी : संभल कर. . .

शयन कक्ष के दरवाजे पर, बायें से जामिनी प्रवेश करती है. पीछे से दीपू और सुभाष आते हैं. जामिनी मां के बिस्तर के पास आती है. कैमरा बायें से दायें घूमता है, दीपू खड़ा है. दीपू को 'फ्रेम' में रखते हुए कैमरा बिस्तर तक 'पैन' करता है. बिस्तर के सिरहाने खड़ी जामिनी और दीपू का 'कंपोजिट शॉट'.

जामिनी : मां देखो कौन आया?

मां (फ्रेम के बाहर से) : कौन, दीपू!

जामिनी : हां मां. . . .

दीपू : प्रणाम ताईजी.

मां (फ्रेम के बाहर से) : कब से तेरा रास्ता देख रही थी बेटा. . .मेरे पास आ. . . जामिनी. . . .

मां बिस्तर पर लेटी है. . . जामिनी बिस्तर के सिरहाने खड़ी है. मां के कहने पर वह उसके पास जाती है, और उसे करवट बदलने में सहायता करती है और उसी के पास बिस्तर के किनारे बैठ जाती है. मां उसे थोड़ा और घुमाने के लिए कहती है. जामिनी उसे मदद करती है.

मां : जामिनी. . .थोड़ा और. . .

दीपू (फ्रेम के बाहर से): मैं कुछ मदद करूं.

जामिनी : नहीं ठीक है. . .

मां : दीपू.

दीपू (फ्रेम के बाहर से) : हां ताईजी.

मां : मेरे पास आ. . .

दीपू (फ्रेम के बाहर से) : मैं यहीं हूं, ताईजी. . . .

मां : जामिनी. . मुझे थोड़ा और घुमा दे.

जामिनी, उसे थोड़ा और घुमाती है और तकिया उसकी पीठ के पीछे लगा देती है. . . . सुभाष का 'मीडियम शॉट.' वह दरवाजे पर खड़ा, यह सब देख रहा है.

जामिनी मां की पीठ के पीछे, एक और

● जामिनी के रूप में शबाना आजमी

तकिया लगाती है.

मां : हां, अब ठीक है.

दीपू बिस्तर के सिरहाने से होता हुआ, जामिनी की मां के पास बिस्तर के किनारे पर आकर बैठ जाता है. कैमरा बायें से दायें ट्रैक करता हुआ दोनों को 'कंपोजिट शॉट' में पकड़ता है.

मां : दीपू. . .

दीपू : कैसी हैं आप, ताईजी. . . ?

मां : तू कैसा है?

दीपू : मैं ठीक हूं.

मां : और बहू?

दीपू : वह सब भी ठीक हैं.

जामिनी : अरे, आप वहां क्यों खड़े हैं. . . अंदर आइये न. . .

सुभाष का क्लोज शॉट. . वह जामिनी की ओर देखता है.

मीडियम क्लोज शॉट. कैमरे पर पीठ किए, दीपू धीरे-से इस तनाव के केंद्र से उठता है. . . सुभाष के पास जाकर एक क्षण के लिए रुकता है. और दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हैं. दीपू जामिनी की ओर मुड़ता है.

मां (फ्रेम के बाहर से) : तुम जानते हो निरंजन. . . निरंजन!

जामिनी का 'लो-एंगल शॉट' वह बिस्तर का डंडा पकड़े खड़ी है. . .ऊपर की ओर देखती है. . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : तुम सब चुप क्यों हो. . .जामिनी. . .

जामिनी अपना सांस रोके खड़ी है. मां का क्लोज शॉट. . . वह करवट बदलने की कोशिश करती है.

मां : तुम सब कहां हो? क्या सब चले गये? दीपू!

वहां एक चुप्पी छायी है. मानो वह मां को जिंदा रखने का षड्यंत्र रच रही हो. दीपू और सुभाष एक दूसरे के सामने हैं. . .दीपू बायें मुड़ता है. . . कैमरा उसके पीछे चलता है, जो जामिनी, मां और दीपू तीनों को कंपोज करता है. दीपू पीछे बनी एक खिड़की के पास खड़ा है. जामिनी की नजरें झुक जाती हैं.

दीपू : हम सब यहीं हैं ताई जी. . .

मां : तो, तुम सब चुप क्यों हो?

दीपू : नहीं, बस. . . यूं ही. . ताई जी. .

मां : जामिनी . . .

जामिनी : हां मां. . .

जामिनी, मां के पास, बिस्तर पर बैठती है और उसे सहलाती है.

मां : तुमसे कहा था न . . वह जरूर आयेगा. मैं जानती थी . . बेटा तुम्हारे लिए तो इन खंडहरों में पहरा दे रही थी. हूं. . . दीपू.

दीपू खिड़की के पास खड़ा है, वह घूमता है, कैमरा जामिनी को भी 'फ्रेम' में लेता है. दीपू दायें से फ्रेम से बाहर हो जाता है.

दीपू : हां ताईजी. . .

मां : तुम तो सब जानते हो, अब तुम सब आपस में मिलकर तय कर लो. . . अब और कितने दिन. . . दिन-रात बिस्तर पर पड़े-पड़े मेरा दिमाग भी ठिकाने नहीं रहता. . . सारा दिन बकझक करती रहती हूं. . इससे.

सुभाष का क्लोज शॉट. दीपू भी पीछे से 'फ्रेम' में प्रवेश करता है.

मां (फ्रेम के बाहर से) : लेकिन यह लड़की कभी मुंह से उफ तक नहीं करती.

जामिनी का 'क्लोज शॉट', वह ऊपर की ओर देखती है और फिर मां की ओर घूमती है. और उसे बोलने से रोकने की कोशिश करती है.

मां : एकदम अकेली है मेरी बच्ची. . तुम देख नहीं रहे. कितनी बदल गयी है यह. . . निरंजन!

जामिनी : मां! बहुत हो गया. . .

दीपू का 'क्लोज अप' वह धीरज खोने लगता है और जोर से कहता है.

दीपू : ताईजी. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामिनि का 'क्लोज अप.' वह भय के मारे दीपू की ओर देखती है. सुभाष का 'क्लोज अप.' वह स्थिति को समझने की कोशिश कर रहा है.

कंपोसिट शाट. मां और जामिनि आगे, दीपू और सुभाष थोड़ी दूर पर खड़े हैं.

मां : मैं यह इसलिए नहीं कह रही कि यह मेरी अपनी बेटी है. . . तू भी तो इसे जानता है. . . . मैं सच कह रही हूं बेटा, तू सुखी रहेगा, जामिनि से ब्याह कर के.

दीपू और सुभाष का 'कंपोसिट शाट', वे एक दूसरे की ओर देखते हैं. वे व्याकुल हो उठते हैं.

मां : निरंजन. . . मैं सच कह रही हूं. . बेटा.

सुभाष, मानो वह तंद्रा में हो, कैमरे की ओर जाता है. दीपू को वहीं छोड़कर फ्रेम के दायें से बाहर हो जाता है.

कंपोसिट शाट. जामिनि मां के पास बिस्तर पर बैठी है. मां बिस्तर पर लेटी, निरंजन से याचना भरे स्वरों में जामिनि के विषय में कह रही है. . . वह अंदाजे से अपना हाथ बिस्तर पर फैलाती है, मानो निरंजन वहीं हो, व्याकुलता और याचना उसे दयनीय बना देते हैं. जामिनि एक बार ऊपर देखती है. मां को बोलने से रोकने के लिए, उसके मुंह पर हाथ रख देती है.

मां : मैं तुमसे सच कह रही हूं. . तू सुखी रहेगा. . . निरंजन. मुझे वचन दे तू जामिनि को ले जायेगा न. . . बोल ले जायेगा न.

जामिनि : मां. . बस भी करो. . पागल हो गयी हो क्या?

मां जामिनि का हाथ झटके से अपने मुंह से हटा देती है. जामिनि का सिर शर्म से झुक जाता है. सुभाष बायें से फ्रेम में आता है और थोड़ा हटकर खड़ा हो जाता है. वह नहीं जानता कि वह क्या करे. . .क्या कहे. . .

मां : बोल निरंजन. . एक बार बोल. . . चुप मत रह बेटा. . मुझे थोड़ी शांति दे. . . बोल. . . .

सुभाष का क्लोज शाट. . . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : एक बार बोल बेटा. . . तू इसे ले जायेगा.

लॉंग शाट. सुभाष किसी अजीब शक्ति से बंधा मंत्रमुग्ध-सा मां की ओर बढ़ता है. हवा में उठे निरंजन को खोजते हाथों को वह छूता है. . . संगीत पूरे वातावरण को छुटकारा दिलाता है.

मां : मुझे शांति दे बेटा.

'मैच कट' दोनों हाथ मिलते हैं. मां बड़े प्यार से उसके हाथ को सहलाती है. . .

मां : एक बार.

मां (फ्रेम के बाहर से) : अरे तू भी आया है!

मां बिस्तर पर है, दीपू उसके पास बैठा है और जामिनि उसके पैताने खड़ी है. जामिनि और दीपू, एक दूसरे की तरफ भौचक्क से देखते हैं. तनाव का वातावरण छा जाता है.

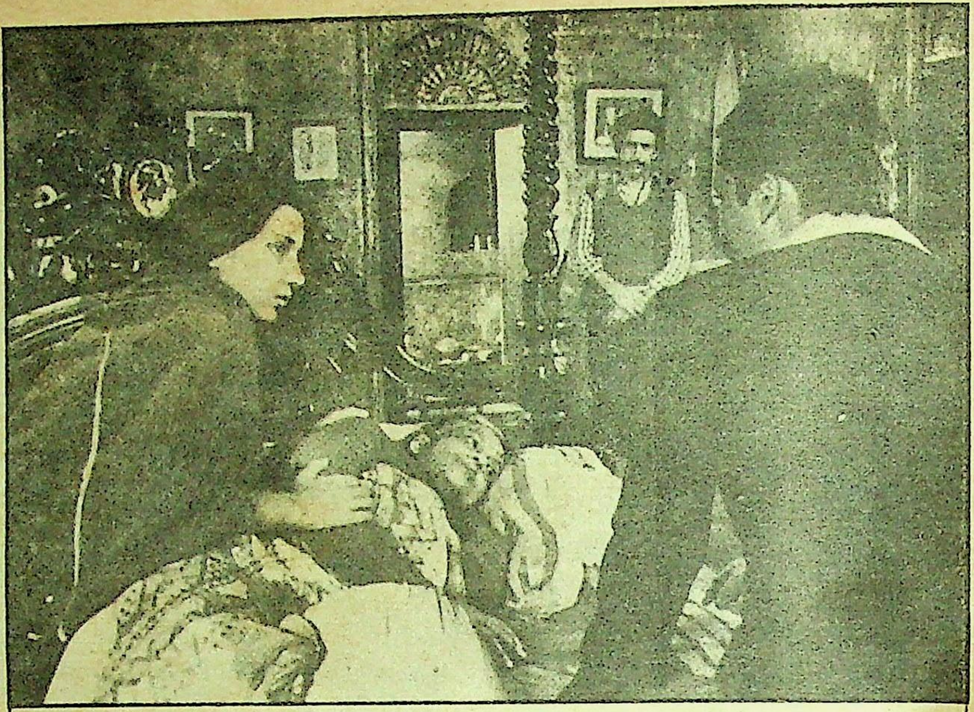

● खंडहर का एक दृश्य : सौम्य दुख और रहस्यात्मक घटनाओं के बीच टकराव. . .

मां : अरे, तू वहां बाहर क्यों खड़ा है बेटा. . . भीतर आ जा. . .

दीपू. ताई जी ये. . . .

सुभाष का क्लोज शॉट. . . वह आश्चर्य से यह सब देख रहा है. . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : अंदर आ जा.

जामिनि का क्लोज शॉट, वह तनाव और याचना की स्थिति में सुभाष की ओर देखती है. . . . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : कहां है तू?

सुभाष का मिडियम शॉट. .. . वह धीरे से अंदर आता है.

मां (फ्रेम के बाहर से) : बेटा.

'मैच कट' सुभाष कैमरा की ओर आ रहा है, वह तीनों (मां, जामिनि और दीपू) के सामने आकर खड़ा हो जाता है, और उनकी ओर देखता है. कैमरा पीछे जाता है.

मां : यहां आ. ..

जामिनि : ये हैं. . .

मां : मुझे बताने की जरूरत नहीं है. . . मैं जानती हूं. . .

दीपू : ताईजी आप. .

मां : जामिनि. . . निरंजन को बैठने के लिए कुछ दे. . .

सुभाष का क्लोज शॉट. . . वह हाथ के इशारे से मां के भ्रम पर विवाद करने से रोकता है. . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : कुर्सी दे उसे.

दीपू का क्लोज शॉट. . वह आश्चर्य से देखता है.

मां (फ्रेम के बाहर से) : उठती क्यों नहीं.

जामिनि का क्लोज शॉट. . . वह धीरे से उठती है. . .

मां (फ्रेम के बाहर से) : जा. . . कुर्सी ले आ. . .

दीपू का क्लोज शॉट.

दीपू: ताई जी आप आराम कीजिए. . . आपकी तबीयत ठीक नहीं है.

जामिनि का क्लोज शॉट. . .

जामिनि : मां. . . मां ये हैं.

कंपोसिट शॉट. मां बिस्तर पर लेटी है. दीपू उसके पास बैठा है, कैमरा की ओर पीठ किए और सुभाष थोड़ी दूर दायीं ओर खड़ा है. जामिनि के वाक्य पूरे करने से पूर्व ही वह उसे हाथ उठाकर बोलने से मना कर देती है. . . कुछ देर के लिए निस्तब्धता छा जाती है जो थोड़ी असहनीय है. . . .

मां : बहुत दिनों बाद मौसी की याद आयी बेटा. . . मुझे मालूम था तुम जरूर आओगे. निश्चित होकर मर भी नहीं पा रही थी.

सुभाष का क्लोज शॉट. . . वह कोई भी फैसला न कर पाने की स्थिति में है. यद्यपि वह तंद्रा में कह देता है

सुभाष : हां. . . .

जामिनि का क्लोज शाट. . . वह झटके से उसकी ओर मुड़ती है. . . बिलकुल खामोश. . . मानो वह उस के फैसले में कुछ खोजने की कोशिश कर रही हो.

कैमरा मां और सुभाष के हाथों से पीछे जाता है. मां का 'क्लोज अप', एक शांत चेहरा. . . तनावमुक्त चेहरा.

मैच कट, टॉप शॉट. सुभाष, धीरे धीरे, अपना हाथ हटाता है, और थोड़ा पीछे हट जाता है. कमरे के दायें कोने से दीपू प्रवेश करता है. जामिनि बायीं ओर से पीछे की ओर हटने लगती है, जबकि मां के चेहरे पर निश्चिंतता के भाव हैं. □

प्रस्तुति : सोमेंद्र बत्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवदास

शरत चंद्र चट्टोपाध्याय

बंगला के इस बहुपठित उपन्यास में आखिर ऐसा क्या है कि इसे बार-बार फिलमाने की जरूरत महसूस होती रही है. पहली बार पी. सी. बरुआ के निर्देशन में देवदास और पार्वती की भूमिका निभायी थी के. एल. सहगल और जमुना ने और दूसरी बार विमलराय के निर्देशन में दिलीप कुमार और सुचित्रा सेन ने. और अब खबर है कि 'देवदास' को गुलजार भी फिलमाने जा रहे हैं. प्रस्तुत है उसी बहुफिल्मित उपन्यास का सार संक्षेप—

अरे बाप रे बाप, बड़ा शोरगुल मचा. पार्वती जोर से ठहाका मारकर ताली बजाकर जमीन पर लोट गयी. सोये हुए गोविंद पंडित अपनी लाल-लाल आंखें मींचते हुए घबड़ाकर उठ खड़े हुए. पेड़ के नीचे लड़कों का दल कतार बांधकर एक साथ 'हो-हो' करता हुआ दौड़ा चला जा रहा है.

इसके बाद श्वेत मूर्ति भोलानाथ चूना ठेलकर खड़ा हुआ. पंडितजी ने और चिल्लाकर कहा, "शैतान का बच्चा, तू ही है, तू ही उसके भीतर है?"

"देवा साले ने—ठेलकर—आं-आं—इबारती—"

क्षण-भर में सारा व्यापार समझकर गोविंद पंडित ने चटाई पर बैठकर पूछा, "देवा, तुझे धक्के से गिराकर भागा है?"

भूलो अब और भी रोने लगा? "आं-आं—आं—" इसके बाद कुछ क्षण चूने की झाड़-पोंछ हुई, किंतु श्वेत और श्याम के मिल जाने के कारण वह भूत की भांति मालूम पड़ने लगा और तब भी उसका रोना बंद नहीं हुआ.

उस समय अंदाजन तीन बजे थे. नारायण मुखोपाध्यायजी बाहर बैठकर गड़गड़े पर तमाखू पीते थे और एक नौकर हाथ में पंखा लेकर हवा झल रहा था. छात्र के सहित असमय में पंडितजी के आगमन से विस्मित होकर उन्होंने कहा, "क्या गोविंद है?"

गोविंद जाति के कायस्थ थे, सो झुककर प्रणाम किया और भूलो को दिखाकर सारी बातें सविस्तार वर्णन कीं. मुखोपाध्यायजी ने विरक्त होकर कहा, "तभी तो देवदास को हाथ से बाहर जाता हुआ देखता हूं."

"क्या कहूं, अब आप ही आज्ञा दें."

जमींदार बाबू ने सटक रखकर कहा, "वह किधर गया?"

"क्या जानूं? जो लोग पकड़ने गये, उनको ढेलों से मार भगाया."

वे दोनों आदमी कुछ क्षण तक चुप रहे. नारायण बाबू ने कहा, "घर आने पर जो कुछ होगा, करूंगा."

घर पर आकर पार्वती ने देखा कि उसकी मां और देवदास की मां ने सारी कथा सुन ली है. उससे भी सब बातें पूछी गयीं. हंसकर, गंभीर होकर उससे जो कुछ कहते बना, उसने कहा. फिर आंचल में फरुही बांधकर वह जमींदार के एक बगीचे में घुसी. बगीचा उन लोगों के मकान के पास था और इसी में एक ओर एक बंसवाड़ी थी. वह जानती थी कि छिपकर तमाखू पीने के लिए देवदास का इसी बंसवाड़ी के बीच स्थान है.

वह पार्वती को आया देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किंतु बाहर प्रकट नहीं किया. तमाखू पीते-पीते कहा, "आओ."

पार्वती पास आकर बैठ गयी. आंचल में जो बंधा हुआ था, उस पर देवदास की दृष्टि तत्क्षण पड़ी. कुछ भी न पूछकर उसने पहले उसे खोलकर खाना शुरू कर दिया.

पार्वती और देवदास की भूमिका में जमुना और के. एल. सहगल

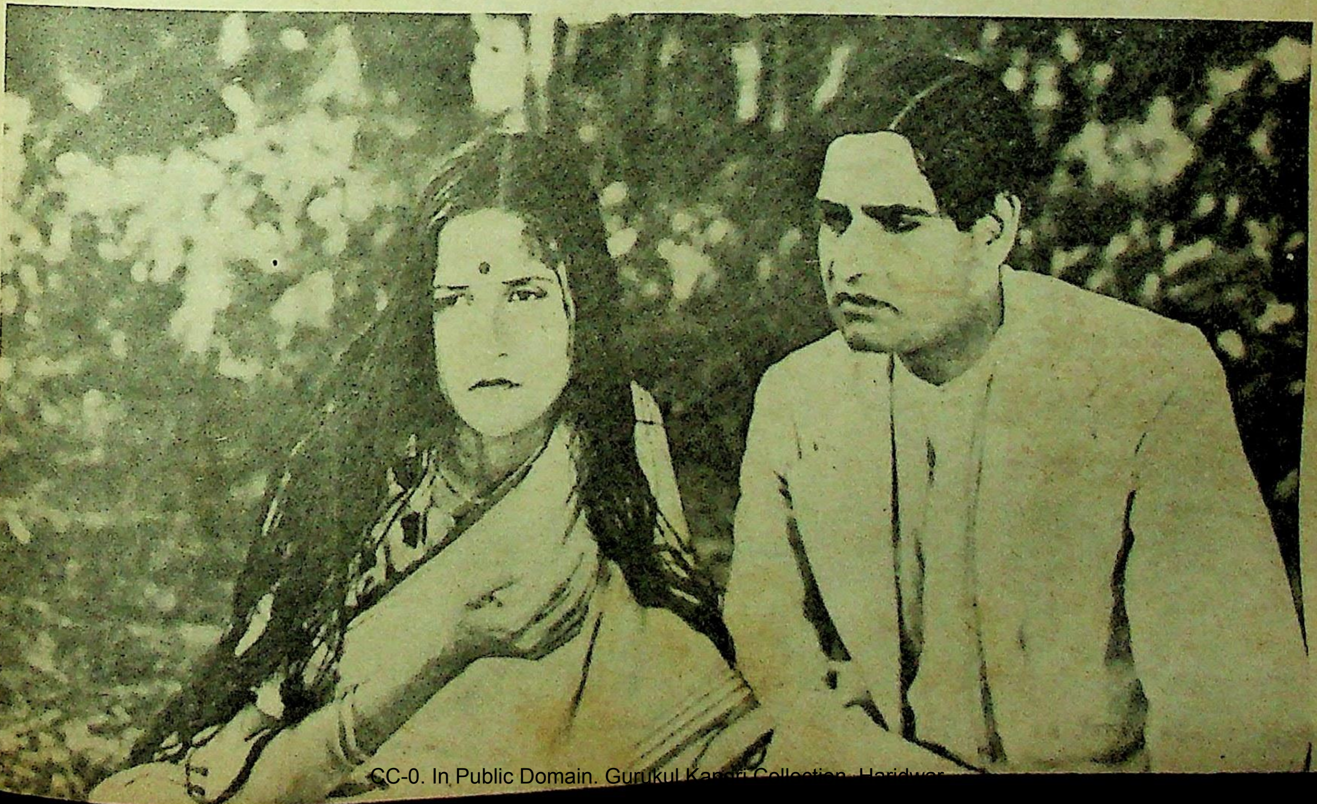

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका खाद्य-द्रव्य प्रायः समाप्त हो चला. देवदास ने पार्वती के मुख की ओर देखकर कहा, "पानी लाओ"

"पानी कहां पाऊंगी?"

क्रोध से देवदास ने पार्वती का केश खींचकर धमकाया, "जाओ."

पार्वती चुप रही. फिर उसने उसकी पीठ पर एक घूंसा मारकर कहा, "नहीं जाओगी?"

पार्वती ने रोते-रोते कहा, "मैं किसी तरह नहीं जा सकती."

देवदास एक ओर चला गया. पार्वती भी रोते-रोते सीधी देवदास के पिता के सम्मुख आकर खड़ी हो गयी. मुखोपाध्यायजी पार्वती को बहुत प्यार करते थे. उन्होंने कहा, "पत्तो, रोती क्यों है?"

"देवदास ने मारा है."

"वह कहां है?"

"इसी बंसवाड़ी में बैठकर तमाखू पी रहे हैं."

एक तो पंडितजी के आगमान से वह क्रोधित होकर बैठे थे, अब यह खबर पाकर वे एकदम आग-बबूला हो गये.

दूसरे दिन देवदास ने बड़ी मार खायी. उसे दिन-भर घर में बंद रखा गया. फिर जब उसकी माता बहुत रोने-धोने लगी, तब देवदास को छोड़ दिया गया. दूसरे दिन भोर के समय उसने भागकर पार्वती के घर की खिड़की के नीचे आकर खड़े होकर उसे बुलाया, "पत्तो-पत्तो!"

दोनों के एकत्र होने पर देवदास ने कहा, "तुमने तमाखू पीने की बात क्यों कह दी?"

"तुमने मारा क्यों?"

"तुम पानी लेने क्यों नहीं गयी?"

पार्वती चुप रही. देवदास ने कहा, "तुम बड़ी गधी हो, अब कभी मत कहना."

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं कहूंगी."

"तब चलो, बांस से बंसी काट लायें. बांध में मछली पकड़नी है."

दिन पर दिन बीतता जाता था—और उन दोनों बालक-बालिकाओं के आनंद की सीमा नहीं थी. सारे दिन वे इधर-उधर घूमा करते थे, संध्या के समय लौटने पर डांट-डपट के अतिरिक्त मार-पीट भी खूब पड़ती थी. फिर सुबह होते ही घर से निकल भागते थे और रात को आने पर मार-पीट और घुड़की सहते थे. रात में सुख की नींद सोते, फिर सवेरा होते ही भागकर खेल-कूद में जा लगते. उनका दूसरा कोई संगी-साथी न था, जरूरत भी नहीं थी. गांव में उपद्रव और अत्याचार करने के लिए यही दोनों काफी थे.

इसी तरह एक वर्ष कट गया, किंतु अब और नहीं कटना चाहता. देवदास की माता ने शोरगुल मचाया. स्वामी को बुलाकर कहा कि देवा तो एकदम मूर्ख हरवाहा हो गया, इसका कोई उपाय करो.

उन्होंने सोचकर कहा, "देवा को कलकत्ता जाने दो. नगेंद्र के घर रहकर वह खूब अच्छी तरह लिख-पढ़ सकेगा."

नगेंद्र बाबू संबंध में देवदास के मामा हैं. यह बात सबने सुनी. पार्वती यह सुनकर बहुत चिंतित हुई. देवदास को अकेले में पाकर उसका हाथ पकड़कर हिलाते-हिलाते पूछा, "देव दादा, अब तुम कलकत्ता जाओगे?"

"किसने कहा?"

"बड़े चाचा कहते थे."

"नहीं, मैं किसी तरह नहीं जाऊंगा."

किंतु उसकी यह प्रतिज्ञा नहीं रही. उसके माता-पिता ने उसे डांट-डपटकर और मार-पीटकर धर्मदास के साथ कलकत्ता भेज दिया.

बहुत दिन के बाद देवदास मकान पर लौटा. जल्दी से पार्वती के पास आया, नाना प्रकार की बातचीत हुई. उसे अधिक बातचीत नहीं करनी थी—पी भी तो वह कर नहीं सकी, परंतु देवदास ने बहुत-सी बातें कहीं. प्रायः सभी कलकत्ता की बातें थीं. गरमी की छुट्टी बीत गयी, देवदास फिर कलकत्ता गया. इस बार भी रोना-धोना हुआ, परंतु पिछली बार-सी उसमें वह गंभीरता नहीं थी. इस तरह चार वर्ष बीत गये. इन कई वर्षों में देवदास के स्वभाव में इतना परिवर्तन हुआ, जिसे देखकर पार्वती ने कई बार छिपे-छिपे आंसू गिराये. इसके पहले देवदास में जो ग्रामीण-दोष थे, वे शहर में रहने से दूर हो गये.

पार्वती ने इस साल तेहरवें वर्ष में पांव रखा है—दादी यह कहती है. इसी उम्र में शारीरिक सौंदर्य अकस्मात मानों कहीं से आकर किशोरी के सर्वांग को छा जाता है. आत्मीय स्वजन सहसा एक दिन चमत्कृत होकर देखते हैं कि उनकी छोटी कन्या अब बड़ी हो गयी है. उसके विवाह की तब छटपटी पड़ती है. चक्रवर्ती महाशय के घर में आज कई दिनों से इन्हीं सब बातों की चर्चा हो रही है.

नीलकंठ की माता ने देवदास की मां से चर्चा छेड़ी, "आहा. बहू, देवदास और पार्वती में जैसा स्नेह है, वह कहीं-नहीं मिल सकता."

देवदास की मां ने मन-ही-मन सब कुछ समझ लिया था. थोड़ी मुस्करायी. फिर कहा, "चाची, वे (पति) इतनी छोटी उम्र में लड़के का ब्याह नहीं करेंगे, खासकर पढ़ने-लिखने के दिनों में. इसी से वे मुझसे कहते थे कि बड़े लड़के द्विजदास का बचपन में ब्याह कर देने से बड़ी हानि हुई. लिखना-पढ़ना एकबारगी छूट गया."

जब वैवाहिक प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात नीलकंठ के कानों में पहुंची तो उन्होंने मां को बुलाकर बड़े तिरस्कार के साथ कहा, "मां, तुम क्यों ऐसी बात कहने गयीं?"

मां चुप रही. नीलकंठ ने कहा, "कन्या के ब्याह के लिए हम लोग किसी के पांव नहीं पड़ते, बल्कि कितने ही लोग हम लोगों के पांव पड़ते हैं. मेरी लड़की कुरूपा नहीं है. देखो, तुम लोगों से कहे देता हूं कि एक हफ्ते के भीतर ही संबंध ठीक कर लूंगा. ब्याह के लिए क्या सोच करना."

किंतु जिसके लिए पिता ने इतनी बात कही थी, उससे उसके सिर पर बिजली-सी गिरी. लड़कपन ही से उसकी यही धारणा थी कि देवदास पर एकमात्र उसी का अधिकार है, पर आज उसको बेहाल होते देखकर उसके सारे हृदय में एक भारी तूफान-सा उठने लगा.

किंतु देवदास के संबंध में यह बात कहना ठीक नहीं. लड़कपन में पार्वती के ऊपर जो दखल पाया था, उसका उसने पूर्ण रूप से उपभोग किया, परंतु कलकत्ता जाकर काम-काज की भीड़ और अन्यान्य आमोद-प्रमोद में फंसकर वह पार्वती को बहुत-कुछ भूल गया, लेकिन वह यह नहीं जानता कि पार्वती अपने उसी अपरिवर्तित ग्राम्य-जीवन में निश-दिन केवल उसी का ध्यान किया करती है.

एक दिन दोपहर के समय जब देवदास चौके में भोजन करने को बैठा तो मां ने पास बैठकर कहा, "पत्तो का ब्याह है."

देवदास ने मुंह उठाकर पूछा, "कब?"

"इसी महीने में. कल वर खुद आकर कन्या को देख गया है."

देवदास ने फिर कोई बात नहीं पूछी.

लगभग एक बजे रात का समय है, तब भी मलिन ज्योत्सना आकाश के अंग से लिपटी हुई है. पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने अंग को ढंककर दबे-पांव सीढ़ी से नीचे उतर आयी. वह बिना किसी रुकावट के जमींदार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई.

देवदास के कमरे का किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था. पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलंग पर सो रहे हैं. पांव के ऊपर हाथ रखकर पार्वती ने धीरे से कहा, "देव दादा. . ."

देवदास ने नींद की झोंक में सुना कि कोई उसे बुला रहा है. उसे उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आंखें खोले कहा, "हूं".

"देव दादा."

इस बार देवदास आंख मीचते हुए उठ बैठे. पार्वती के मुंह पर घूंघट नहीं था, घर में दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था. देवदास ने सहज ही पहचान लिया, किंतु फिर भी उसे पहले विश्वास नहीं हुआ. पूछा, "यह क्या, पत्तो? इतनी रात में."

पार्वती ने देवदास के पांव सिर के ऊपर रखकर अवरुद्ध कंठ से कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यहीं पर थोड़ा-सा स्थान दो, देव दादा."

इसके बाद दोनों ही चुप रहे. देवदास के पांव पर से बहकर अनेकों अश्रुकण शुभ्र-शैया को भिगोने लगे. थोड़ी ही देर में भोर होता हुआ जानकर देवदास ने पार्वती का हाथ पकड़कर कहा, "चलो, तुम्हें घर पहुंचा आयें."

उसी दिन देवदास माल-असबाब बांधकर कलकत्ता चले गये.

मैस में आकर देवदास अपनी चारपाई पर पड़ रहे. आजकल वे एक मैस में रहते थे. कई दिन हुए, मामा का घर छोड़ दिया—वहां उन्हें कुछ असुविधाएं होती थीं. जिस कमरे में देवदास रहते हैं, उसी के बगल वाले कमरे में चुन्नीलाल नामक एक युवक आठ नौ बरस से निवास करते हैं. उनका यह दीर्घ कलकत्ता-निवास बी. ए. पास करने के लिए हुआ था, किंतु आज तक सफल-मनोरथ नहीं हो सके.

देवदास ने पूछा, "अच्छा चुन्नी, तुम सारी रात कहां रहते हो?"

चुन्नीलाल ने एक मीठी हंसी हंसकर कहा, "यह क्या तुम नहीं जानते?" देवदास ने कुछ देर सोचकर कहा, "सुनता हूं, वहां पर बड़ा मनोरंजन होता है. क्या यह सच है?"

पार्वती ने देवदास के मुंह की ओर एक बार तीखी नजर से देख कर कहा, "तुम्हारे ही मां-बाप हैं, मेरे नहीं? क्या उनकी इच्छा-अनिच्छा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं हैं?"

देवदास ने लज्जित होकर कहा, "क्यों नहीं हैं पत्तो, पर वे लोग तो राजी हैं, सिर्फ तुम. . ."

"तुम कैसे जानते हो कि वे लोग राजी हैं, वे बिल्कुल राजी नहीं!"

देवदास के सह्य की सीमा जाती रही. उन्होंने दृढ़ मुटठी से बंसी के मुठिए को पकड़कर इतने जोर से पार्वती के सिर में मारा कि लगने के साथ ही सिर बायीं भों के नीचे तक फट गया. पल भर में सारा मुख खून से सराबोर हो गया.

पार्वती पृथ्वी पर गिर पड़ी. कहा, "देव दादा, यह क्या किया?"

देवदास ने अपने बारीक कुरते को फाड़कर पानी में भिगोकर बांधते हुए कहा, "घबराओ नहीं पत्तो, यह हलकी-सी चोट जल्दी ही अच्छी हो जायेगी, सिर्फ दाग रह जायेगा. यदि कोई इसके विषय में पूछे तो झूठी बात कहना, नहीं तो अपने कलंक की बात प्रकट करना."

उसी रात पार्वती स्वामी के घर चली गयी.

देवदास और चुन्नीलाल की भूमिकाओं में दिलीप कुमार और मोती लाल

"बिल्कुल सच है."

"यदि ऐसी बात है तो मुझे एक बार ले चलो, मैं भी चलूंगा."

पर दूसरे दिन संध्या के समय चुन्नीलाल ने देवदास के कमरे में आकर देखा कि वे व्यस्त भाव से अपना सब माल-असबाब बांध-छान रहे हैं. विस्मित होकर पूछा, "क्या नहीं जाओगे?"

देवदास ने सहसा सचेत होकर आंखें ऊपर को उठायीं. लज्जित होकर कहा, "चुन्नी बाबू, आज मैं घर जा रहा हूं." दूसरे दिन प्रातःकाल वे घर पहुंचे. दो दिन देवदास ने बड़ी चुस्ती के साथ बिताये. उसकी जो अभिलाषा थी, वह पूरी नहीं हो रही थी—पार्वती से किसी निर्जन स्थान पर भेंट नहीं होती थी. दोपहर के समय पार्वती नित्य बांध से जल लाने के लिए जाती थी. बगल में पीतल की कलसी लेकर आज भी वह घाट पर आयी, देखा, निकट ही एक बेर के पेड़ की आड़ में देवदास जल में बंसी फेंककर बैठे हैं. उसने पार्वती को देख, हाथ के इशारे से बुलाकर कहा, "पत्तो, सुन जाओ."

पार्वती कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, अंत में अत्यंत मीठे स्वर से पूछा, "क्यों?"

"मैं जिस तरह से होगा, मां-बाप को राजी करूंगा, सिर्फ मु. . ."

और देवदास? उन्होंने उस दिन कलकत्ता के ईडन गार्डन की एक बच पर बैठे-बैठे सारी रात बिता दी. उन्हें अत्यंत क्लेश अथवा मार्मिक वेदना हुई हो, यह बात नहीं है. उनके हृदय में न जाने कैसा एक शिथिल उदासीन भाव धीरे-धीरे जमा हो रहा था. हठात् स्मरण हुआ कि कलकत्ता के उसी मैस में . वहां पर चुन्नीलाल- है. देवदास उसी ओर चलने लगे. उस समय चुन्नी बाबू सज-धजकर बाहर जा रहे थे, "यह क्या देवदास?"

देवदास चुपचाप देखते रहे. "कब आये? मुंह सूखा हुआ है. नहाना-खाना क्या अब तक कुछ नहीं हुआ है?" देवदास रास्ते में ही बैठ गये. चुन्नीलाल हाथ पकड़कर भीतर ले गये. रात में दोनों मित्र सज-धज के बाहर निकले. रात के नौ के समय एक किराये की गाड़ी चितपुर के के एक दोतल्ले मकान के सामने आकर खड़ी हुई. चुन्नीलाल देवदास का हाथ पकड़े हुए भीतर चले गये. गृहस्वामिनी का नाम चंद्रमुखी है—उन्होंने आकर अभ्यर्थना की. इस समय देवदास का सारा शरीर जल उठा. वे इधर कई दिनों से अपनी अज्ञानता में नारी देह-की छाया के ऊपर भी विद्वेष करने लगे थे, यह वह स्वयं नहीं जानते थे. चंद्रमुखी को

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-श्रेणी की क्वालिटी फिर भी देखभाल बिल्कुल आसान -अपने घर पर भी!

सोमा मेटल फिटिंग्स

बेहतरीन कारीगरी से बना —आपको परेशानी से बचाये, हमेशा सही और सहज ढंग से काम करे।

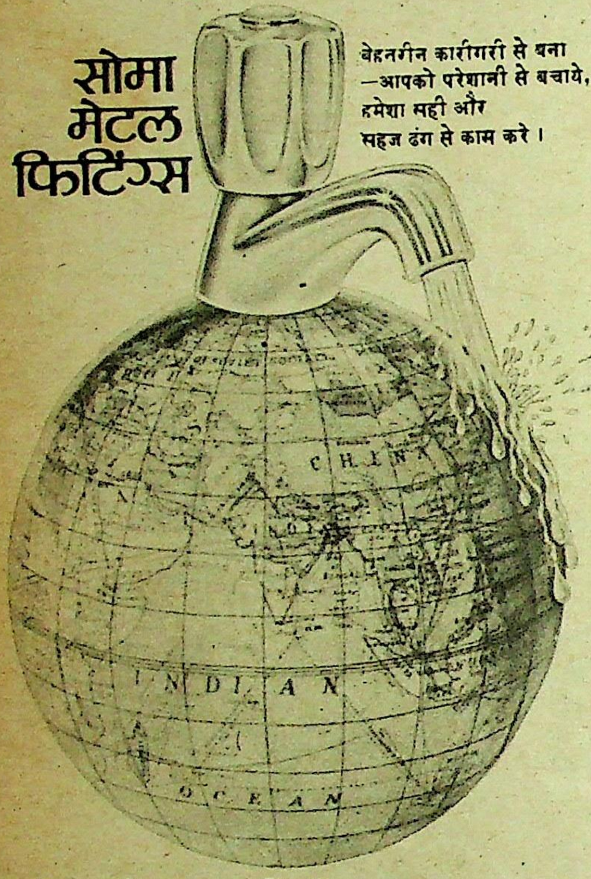

सोमा की खास खूबियाँ

- ★ क्रोमियम के आसान-पकड़वाले चित्ताकर्षक हैण्डल— सभी आपस में अदले-बदले जा सकते हैं।
- ★ खूबसूरत और हैवी-ड्यूटी मॉडलों में से पसन्द करने की सुविधा।

सहज रखरखाव—हर समय आपके हाथ में

- ★ हमेशा एक अतिरिक्त कारट्रिज घर में रखिए—यह वहीं मिल जायेगा जहाँ से आप सोमा फिटिंग खरीदते हैं। अगर आपके नल में कोई गड़बड़ी हो, तो सिरे को उल्टी तरफ घुमा कर खोलिए, कारट्रिज को निकाल लीजिए और नया कारट्रिज डाल कर सिरे को फिर से लगा दीजिए।

सोमा प्लम्बिंग फिक्सचर्स लिमिटेड®

जिसके निर्माता हैं

VITREOUS® हिन्दुस्तान सैनिटरीवेअर

२ रेड क्रास प्लेस, कलकत्ता-७०० ००१, भारत

SAA/SPF/7A1 HIN

देखते ही हृदय की संचित घृणा दावानल की भांति प्रज्वलित हो उठी. चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर भौं चढ़ाकर कहा, "चुन्नीलाल, यह किस मनहूस जगह में ले आये?" उनके तीव्र कंठ और आंख की दृष्टि देखकर चंद्रमुखी और चुन्नीलाल दोनों ही हतबुद्धि से हो गये. दूसरे ही क्षण चुन्नीलाल ने अपने को संभालकर देवदास का एक हाथ पकड़कर कोमल कंठ से कहा, "चलिए, भीतर चलकर बैठिए."

देवदास कुछ नहीं बोले, कमरे में जाकर बिछौने पर गरदन झुका के विपन्न-मुख बैठ गये.

अवनति की एक सीढ़ी नीचे उतरकर चुन्नीलाल न जाने कहां चले गये. अकेले देवदास ही चंद्रमुखी के घर के नीचे के खंड में बैठकर शराब पी रहे हैं. पास ही चंद्रमुखी विषण्ण मुख से बैठी हुई देख रही है. उसने कहा, "देवदास, मत पियो."

देवदास ने शराब का ग्लास नीचे रखकर भौं चढ़ाकर कहा, "क्यों?"

"अभी थोड़े ही दिन से शराब पीना शुरू किया है. . .इतनी नहीं बरदाश्त कर सकोगे."

"बरदाश्त के लिए नहीं, यहां रहने के लिए शराब पीता हूं"

पिता की मौत की खबर पाकर देवदास गांव गये.

अंत्येष्टि के दूसरे दिन दोपहर के समय देवदास सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे. बीच में पार्वती को देखकर रुक गये. पार्वती ने मुख की ओर देखा. देखकर पहचानते हुए उसे क्लेश हो रहा था. देवदास ने गंभीर और शांत मुख से आकर कहा, "कब आयी पार्वती?"

वही कंठ-स्वर आज तीन वर्ष बाद सुना. सिर नीचा किये हुए पार्वती ने कहा, "आज सुबह आयी."

देवदास ने कंठ स्वर को ठीक करके कहा, "पत्तो, अब तो तुम पक्की घरनी हो गयी हो न?"

पार्वती ने फिर कहा, "देवदास, मेरे यहां चलो."

देवदास ने आंखें पोंछकर कहा, "अच्छा, चलूंगा."

"मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि चलोगे."

देवदास ने अनुमान से पार्वती का पांव छूकर कहा, "यह बात मैं कभी नहीं भूलूंगा, अगर मेरे जाने से ही तुम्हारा दुख दूर हो तो मैं अवश्य आऊंगा. मरने के पहले भी मुझे यह बात याद रहेगी."

पिता की मृत्यु के बाद धीरे-धीरे छह महीने बीत गये. देवदास घर से एकदम ऊब गये. सुख नहीं, शांति नहीं, उस पर एक तरह की जीवनचर्या से मन बिलकुल विरक्त हो चला. तिस पर पार्वती की चिंता से चित्त और भी अव्यवस्थित हो रहा था.

कलकत्ता आकर देवदास ने तीन-चार दिनों तक चुन्नीलाल को ढूंढ़ा. वे नहीं मिले, उस मैस को छोड़कर किसी दूसरी जगह चले गये थे. एक दिन संध्या के समय देवदास को चंद्रमुखी की बात यांद आयी.

जाकर देवदास ने देखा, चंद्रमुखी एक काले किनारे की मैली धोती पहने है, हाथ में केवल दो कड़ों को छोड़कर, शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है, सिर के केश इधर-उधर बिखरे हुए हैं, विस्मित होकर देवदास ने पूछा, "तुम क्या बीमार थीं?"

"कोई शारीरिक बीमारी नहीं थी, तुम अच्छी तरह से बैठो."

देवदास बिछौने के ऊपर लेट गयें, दूसरी ओर देखने लगे, बहुत देर तक चुप रहने के बाद धीरे से कहा, "चंद्रमुखी, तब दूकानदारी सब उठा दी?"

"हां, दिवाला निकाल लिया."

देवदास ने बैठकर पूछा, "लेकिन यह जीवन कैसे कटेगा?"

चंद्रमुखी ने थोड़ा ठहरकर अपने कंठ स्वर को और परिष्कृत करके कहा, "इस जीवन में प्रेम का व्यवसाय बहुत दिनों तक किया है, लेकिन प्रेम एक बार किया है, उस प्रेम का मूल्य बहुत बड़ा है."

यह कहकर वह चुप हो रही. देवदास सहसा उठकर खड़े हो गये, कहा, "मैं चलता हूं. तुम जहां जाना, वहां से खबर देना, और अगर कुछ काम हो तो लिखना. मुझसे लज्जा मत करना."

इतना कहकर देवदास चले गये. चंद्रमुखी ने दोनो हाथों से मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढांपकर रोते-रोते कहा, "भगवान, ऐसा करो कि एक बार और दर्शन मिलें."

पार्वती की भी आजकल ठीक यही दशा है. मनोरमा ने गांव से एक चिट्ठी लिखी है : "देवदास की दशा को सुनकर तुम्हें तो क्लेश ही होगा. शराब और वेश्या के पीछे सारा धन स्वाहा हो रहा है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है? एक यम कर सकते हैं और उसमें भी देरी नहीं है. बड़ी रक्षा हुई, जो तुम्हारा उनसे विवाह नहीं हुआ."

कल चिट्ठी आयी है. आज उसने महेंद्र को बुलाकर कहा, "दो पालकी और बत्तीस कहारों को बुला दो, मैं अभी तालसोनापुर जाऊंगी. उसी दिन संध्या के बाद दोनों पालकियां तालसोनापुर पहुंची, किंतु देवदास गांव में नहीं थे, उसी दिन दोपहर में कलकत्ता चले गये थे.

दूसरे दिन पार्वती माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके फिर पालकी पर सवार होकर चली गयी.

चंद्रमुखी को कलकत्ता आये हुए डेढ़ महीना हो गया. आज उसके ब्रह्मा प्रसन्न हुए. रात के ग्यारह बज गये थे, हताश मन से वह घर लौट रही थी. इतने में ही देखा, रास्ते के एक ओर एक दरवाजे के सामने एक आदमी आप ही आप कुछ बड़बड़ा रहा है. इस कंठ स्वर से वह भली भांति परिचित थी. उसने पुकारा, "देवदास."

देवदास ने उसी भांति कहा, "हूं."

"यहां क्यों पड़े हो, घर चलोगे?"

"नहीं, अच्छी तरह हूं."

"थोड़ी शराब पियोगे?"

"हां, पिऊंगा." कहकर एकाएक चंद्रमुखी का गला जकड़ लिया. कहा, "ऐसी भलाई करने वाले तुम कौन हो भाई?"

सुबह देवदास की जब नींद टूटी तो दिन चढ़ गया था. घर में कोई नहीं था. चंद्रमुखी स्नान करके भोजन पकाने की तैयारी में थी. देवदास चंद्रमुखी को देखकर खिल उठे, बोले, "कहां से कल मुझे ले आयीं?"

चंद्रमुखी ने कहा, "रास्ते में पड़ा हुआ देखकर उठा लायी."

देवदास ने हंसकर कहा, "चंद्रमुखी ऐसा ही कुछ है." उसी दिन डॉक्टर ने आकर बहुत देर तक परीक्षा करने के बाद यही आशंका स्थिर की. औषध लिख दी तथा बताया कि यदि सावधानीपूर्वक न रहा जायेगा तो भारी अनिष्ट होने की संभावना है. पत्र द्वारा घर से धर्मदास को बुलाया गया और चिकित्सा के लिए बैंक से रुपया आया.

प्रायः एक मास से ऊपर देवदास चारपाई पर पड़े रहे. फिर धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे. वायु परिवर्तन आवश्यक था. कल पश्चिम को जायेंगे, साथ में केवल धर्मदास रहेगा.

कलकत्ता से आकर देवदास कुछ दिन इलाहाबाद रहे. उसी बीच उन्होंने चंद्रमुखी को एक चिट्ठी लिखी.—"बहू, मैंने विचार किया है कि अब किसी से प्रेम न करूंगा. एक तो प्रेम करके खाली हाथ लौटने से बड़ी यातना मिलती है, दूसरे इस संसार में प्रेम का हाथ ही दुख और दैन्य से पूर्ण है."

इसके उत्तर में चंद्रमुखी ने क्या लिखा, इसके लिखने की यहां आवश्यकता नहीं है, पर इस समय देवदास मन ही मन केवल यही सोचते रहते थे कि एक बार उसका यहां आना ठीक होगा या नहीं?

इसके बाद देवदास लाहौर चले गये. वहां चुन्नीलाल नौकरी करते थे, खबर पाकर भेंट करने के लिए आये. बहुत दिनों के बाद आज दोनों मित्र एक दूसरे को देखकर लज्जित और साथ ही सुखी हुए. फिर देवदास ने शराब पीना शुरू किया. धर्मदास ने एक दिन रोते-रोते कहा, "देवता, तुम्हारा शरीर फिर गिर चला, इसलिए और कहीं चलो."

माल-असबाब बांधकर, चुन्नीलाल से विदा लेकर, देवदास फिर इलाहाबाद चले गये. शरीर इस समय भली भांति अच्छा हो गया था. कुछ दिन रहने के बाद उन्होंने एक दिन धर्मदास से कहा, "धर्म, किसी नयी जगह नहीं चलोगे? अभी तक बंबई नहीं देखी है, वहां चलोगे?"

उनका अतिशय आग्रह देखकर इच्छा न रहते हुए भी धर्मदास बंबई चलने के लिए तैयार हो गया. जेठ का महीना था. बंबई शहर औरों की अपेक्षा उतना गर्म नहीं है. वहां देवदास को आराम मिला.

एक वर्ष बीत गया. भादों का महीना था. एक दिन प्रातःकाल धर्मदास के कंधे के सहारे से देवदास बंबई अस्पताल से बाहर आकर गाड़ी पर बैठे. धर्मदास ने कहा, "देवता, मेरी सलाह से इस समय मां के पास चलना अच्छा होगा."

स्टेशन पर आकर धर्मदास ने पूछा, "कहां का टिकट कटाया जायेगा?" देवदास ने कुछ सोचकर कहा, "चलो, पहले घर चलें, फिर देखा जायेगा." गाड़ी प्लेटफार्म पर आयी. वे लोग हुगली का टिकट खरीदकर बढ़ गये.

काशी को गाड़ी पार कर गयी, तब तक देवदास अचेत थे. पटना के पास आकर जब उन्हें होश हुआ तो कहा, "तब तो धर्मदास मां के पास सचमुच नहीं जा सके."

धर्मदास ने कहा, "चलो भैया, पटना में उतरकर हम डॉक्टर को दिखा लेते हैं."

उत्तर में देवदास ने कहा, "रहने दो, अब हम लोग घर पर ही चलकर उतरेंगे."

गाड़ी जब पंडुआ स्टेशन पर आकर खड़ी हुई, तब पौ फट चुकी थी. देवदास उठ खड़े हुए. नीचे धर्मदास सोया हुआ था. धीरे से उसके सिर पर हाथ रखा, किंतु लज्जावश जगा नहीं सके. फिर द्वार खोलकर धीरे से नीचे प्लेटफॉर्म पर उतर गये. एक गाड़ीवान को बुलाकर पूछा, "क्या हाथीपोता चल सकते हो? कितनी देर का सफर है?"

गाड़ीवान ने कहा, "रास्ता अच्छा नहीं है, इससे शायद दो दिन लग जायेंगे."

देवदास मन ही मन हिसाब लगाने लगे कि दो दिन जीते रहेंगे या नहीं, पर पार्वती के पास जाना जरूरी है. इस समय उनके मन में पिछले दिनों के बहुत से झूठे आचार-व्यवहार और बहुत-सी झूठी बातें एकाएक करके स्मरण आने लगीं, किंतु अंतिम दिन की इस प्रतिज्ञा को सच करना ही होगा. बारह बजे रात को गाड़ी हाथीपोता के जमींदार के मकान के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आकर खड़ी हुई.

गाड़ीवान ने बुलाकर कहा, "बाबू, नीचे उतरिए."

कोई उत्तर नहीं मिला. तब उसने डरकर मुंह के पास दीया लाकर देखा. कहा, "बाबू, क्या सो गये हैं?"

देवदास देख रहे थे, होंठ हिलाकर कुछ कहा, किंतु कोई शब्द नहीं हुआ. गाड़ीवान ने तब अपनी बुद्धि के अनुसार बांसों को बांधकर एक पलंग बनाया, उसी पर बिस्तर बिछाकर बड़े कष्ट से देवदास को लाकर सुला दिया.

पौ फटी. सुबह जमींदार के घर से लोग बाहर निकले. एक आश्चर्यमय दृश्य. पेड़ के नीचे एक आदमी मर रहा था. देखने से सद्कुल का जान पड़ता था. शरीर पर शाल, पांव में चमकता हुआ जूता, हाथ में अंगूठी पड़ी थी. एक-एक करके बहुत से लोग जमा हो गये.

बायें हाथ में अंग्रेजी में नाम का पहला अक्षर गुदा हुआ था. इंस्पेक्टर ने निश्चित करके कहा, "यह मनुष्य देवदास है."

यह सब समाचार पार्वती के कान तक भी पहुंचे. महेंद्र की बुलाहट हुई. उन्होंने बताया, "तुम्हारे देश के देवदास मुखोपाध्याय थे."

"मैं उनके पास जाऊंगी. . ." कहते-कहते पार्वती दौड़ पड़ी. महेंद्र ने दौड़कर सामने आकर कहा, "क्या पागल हुई हो, कहां जाओगी?"

इसके बाद नौकर-नौकरानियों ने मिलकर पार्वती को पकड़ा और उसकी मूर्छित देह को भीतर ले गये. दूसरे दिन उसकी मूर्छा टूटी, पर उसने कोई बात नहीं कही, केवल एक दासी को बुलाकर पूछा, "रात को वे आये थे या नहीं?" □

संक्षिप्त रूपांतर : सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारो और चंद्रमुखी के चरित्र देवदास के रिफ्लैक्शन नहीं — गुलजार

इसे एक इत्तफाक ही कहा जा सकता है कि 'देवदास' का फिल्मांकन २०-२० साल के गैप के बाद हुआ या फिल्मांकन की घोषणा हुई. ताजातर घोषणा प्रख्यात निर्देशक गुलजार की है. यहां प्रस्तुत हैं उनके विचार कि आखिर क्यों तीसरी बार वे 'देवदास' को फिल्माना चाह रहे हैं. . .

बॉक्स ऑफिस पर कोई फिल्म सफल होगी या नहीं होगी, इस बात के लिए कोई फार्मूला तय नहीं किया जा सकता. जो लोग फार्मूले तय करके चलते हैं और उसके इस्तेमाल भी अपनी फिल्मों में करते हैं, उनकी फिल्में भी धड़ल्ले से फ्लॉफ होती रही हैं और होती जा रही हैं. इसलिए पहले से कोई भविष्यवाणी कर पाना बहुत मुश्किल होता है—खासतौर पर साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों के बारे में. जो साहित्यिक कृतियों पर बनती हैं, उन्हें अच्छी या बुरी फिल्म ही कह सकते हैं.

हिंदी में साहित्यिक कृतियों पर भी बहुत सी फिल्में बनी हैं. मैंने ही समरेश बसु की 'पथिक' पर 'किताब' बनायी, 'अकाल बसंत' पर 'नमकीन' बनायी और शरद बाबू की 'पंडित मोशाय' पर 'खुशबू' बनायी. इनके अलावा 'आंधी' और 'मौसम' भी बनायी, लेकिन मैंने अपनी फिल्मों को कभी सफलता और असफलता की तराजू में नहीं तोला. अच्छी और बुरी की तराजू में ही तोला है. इन फिल्मों को बनाते समय दृष्टि मेरी अपनी ही रही है और मैं अपनी दृष्टि के बारे में बहुत स्पष्ट हूं कि वह व्यावसायिक नहीं है.

किसी भी साहित्यिक कृति पर तब तक कोई अच्छी फिल्म बन नहीं सकती, जब तक उसके डायरेक्टर का मानसिक स्तर बड़ा, सुलझा हुआ, रचनात्मक और समझदारी भरा न हो. भारतीय सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर सबसे अधिक फिल्में सत्यजित राय ने बनायी हैं. मैं सत्यजीत राय को अपने क्षेत्र में उन लेखकों के बराबर कैलिबर का और कैपेबिलिटी का ही व्यक्ति मानता हूं. मेरी नजर में टैगोर की 'नष्टनीड़' पर 'चारुलता' जैसी फिल्म सत्यजित ही बना सकते थे, कोई दूसरा डायरेक्टर नहीं. लेखक को समझना, रचना के पीरियड को समझना, लेखक के अंदर रचना प्रक्रिया के दौरान जो घट रहा होता है और रचना में जो घटता है, उसे अच्छी तरह समझना और कैरेक्टर्स की डीप स्टडी किसी भी डायरेक्टर के लिए बहुत जरूरी होती है और इन चीजों को कोई भी डायरेक्टर किस सीमा तक देख और परख सकता है, यह बात डायरेक्टर के अपने मानसिक स्तर की सीमा पर निर्भर करती है. गालिब तक जोश मलसियानी ही पहुंच पाये. दूसरे लोग शायद ही पहुंच पाते. डायरेक्टरों के लिए एक अच्छा और सैंसिबल क्रिटिक होना भी बहुत जरूरी है.

अब मैं अपनी सारी बात को देवदास पर ही केंद्रित करना चाह रहा हूं. आपको पता ही है कि मैंने 1976 में देवदास को फिर से बनाने की घोषणा की थी. यह बात और है कि किन्हीं कारणों से यह फिल्म अभी तक नहीं बन पायी, लेकिन मैं इसे बनाऊंगा जरूर. इस संबंध में सवाल उठता है कि तीसरी बार इस फिल्म को बनाने की जरूरत क्यों महसूस हुई? इसे इत्तफाक ही कहा जा सकता है कि 20-20 साल के गैप के बाद यह फिल्म बनी है या घोषित हुई है. पहली बार 1936 में बरुआ साहब ने इसे बनाया और अपने वक्त के मशहूर अभिनेता सहगल साहब को देवदास की भूमिका दी गयी. 20 साल बाद 1956 में विमल राय ने दूसरी बार देवदास बनायी और उसमें अपने वक्त के मशहूर अदाकार दिलीप कुमार साहब ने देवदास का किरदार निबाहा. विमल राय के ठीक 20 साल बाद मैंने इस फिल्म को बनाने का निर्णय लिया.

बरुआ साहब ने जब देवदास बनायी, तब हिंदी का बोलता सिनेमा करीब-करीब जन्म ले रहा था. न उनके पास अच्छे इक्विपमेंट्स थे, न आउटडोर शूटिंग की सुविधाएं थीं, न विकसित तकनीक थी. हर बात के लिए इंडोर शूटिंग पर निर्भर करना पड़ता था. आप देखें तो कहीं-कहीं पर्दे, पेड़-पौधे हिलते नजर आ जायेंगे.

फिर भी, उनके लिए यह काम बहुत बड़ा जोखिम भरा और चुनौती भरा था, जिसे उन्होंने बड़ी हिम्मत और खूबसूरती से पूरा किया. विमल राय के समय तक हमारे सिनेमा की स्थिति काफी सुधर गयी थी. एप्रोच रियलिस्टिक हो गयी थी. हम जहां चाहते थे, जा सकते थे और शूटिंग कर सकते थे. बंगाल का गांव, नदी, बगीचे कैमरे की पहुंच के बाहर नहीं रहे थे. इसलिए विमल राय के देवदास का दृश्यांकन बरुआ साहब से ज्यादा सही और रियलिस्टिक हो सका.

20 साल के गैप के बाद भी दोनों के नजरिये में कोई बेसिक फर्क नजर नहीं आता. अपने-अपने वक्त में सहगल साहब और दिलीप साहब लीजेंड बन चुके थे. इन दोनों ही निर्माताओं ने पारो और चंद्रमुखी के चरित्रों को अधिक अहमियत नहीं दी. ये दोनों महिलाएं (पारो और चंद्रमुखी) देवदास का रिफ्लेक्शन बनी रहीं और सारा ड्रामा देवदास के इर्द-गिर्द घूमता रहा, जबकि मुझे शरत बाबू के इस उपन्यास में देवदास ही सबसे कमजोर कैरेक्टर नजर आता है. देवदास पूरी जिंदगी एडोलोसेंट एज से बाहर नहीं निकल पाया. उसने कहीं भी स्थितियों से संघर्ष नहीं किया और जिंदगी से लगातार भागता रहा. इन दोनों ही फिल्मकारों ने सिनेमैटिक लाइसेंस के रूप में नाच-गानों की जो भरमार की है, वह स्थिति भी पूरी फिल्म को नौटंकी बना के रख देती है.

76 में जब मैंने अपने देवदास की घोषणा की, तब पहले की दोनों ही फिल्मों खामियां मेरी नजर में थीं. इन खामियों के अलावा उपन्यास के प्रति मेरा नजरिया भी दूसरा रहा है. मेरी नजर में ये दोनों औरतें (पार्वती और चंद्रमुखी) सबसे ज्यादा अहमियत रखती हैं. बावजूद तमाम मान्यताओं और परंपराओं के निर्वाह के इन दोनों में बोल्डनेस है, वे परिस्थितियों से जूझना जानती हैं. उनमें देवदास के प्रति प्यार के साथ ही साथ त्याग की भावना भी है. वे दोनों देवदास की तरह स्वार्थी नहीं हैं.

भारतीय समाज में, और विशेष रूप से ग्रामीण तथा मध्यवर्गीय समाज में, औरतों के लिए बहुत-सी निषेधाज्ञाएं बना दी गयी हैं, लेकिन पारो और चंद्रमुखी जहां जरूरत होती है, इन निषेधाज्ञाओं को तोड़ने के लिए खड़ी हो जाती हैं और संभावित स्थितियों की परवाह नहीं करतीं. यही इनकी विशेषता है और बोल्डनेस है. इस बोल्डनेस के साथ ही साथ इनमें भरपूर स्वाभिमान भी है. पारो ने देवदास से प्यार किया है तो वह उसके लिए कुछ भी कर सकती है. मैं आपको पारो के इस चरित्र को स्थापित करने वाले दो उद्धरण उपन्यास से देना चाहता हूं. एक तो उस समय का है, जब पार्वती रात के अंधेरे में छिपकर देवदास के पास आती है. दूसरा उस समय का है, जब पारो अपनी सहेली मनोरमा का पत्र पाकर देवदास को लेने जाती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग एक बजे रात का समय है. तब भी ज्योत्स्ना आकाश के अंग से लिपटी है. पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने को ढककर दबे-पांव सीढ़ी से उतर आयी. . . गांव का मार्ग एकदम निस्तब्ध, एकदम निर्जन था— किसी से भेंट होने की आशंका नहीं थी. वह बिना किसी रुकावट के जमींदार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई. ड्योढ़ी पर वृद्ध दरबान कृष्णसिंह खाट बिछा तुलसीकृत रामायण पढ़ रहा था. पार्वती को प्रवेश करते देखकर उसने नेत्र नीचे किये ही पूछा, "कौन है?"

पार्वती ने कहा, "मैं."

दरबानजी ने समझा कि कोई स्त्री है. दासी समझकर फिर कोई प्रश्न नहीं किया और गा-गाकर रामायण पढ़ने में निमग्न हो गया. .. पार्वती निर्विघ्न सीढ़ी से होकर ऊपर कोठे पर चली गयी. इस घर का एक-एक कमरा और एक-एक कोना उसका जाना हुआ था. देवदास के कमरे को पहचानने में उसे जरा भी देर नहीं लगी. किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था. पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलंग पर सो रहे हैं. . . पांव के ऊपर हाथ रखकर पार्वती ने धीरे-से कहा, "देव दादा. . ."

देवदास ने नींद की झोंक में सुना कि कोई उसे बुला रहा है. उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आंख खोले कहा, "हूं."

"देव दादा."

इस बार देवदास आंख मींचते हुए उठ बैठे. पार्वती के मुंह पर घूंघट नहीं था, घर में दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था, देवदास ने सहज ही पहचान लिया, किंतु फिर भी उसे पहले विश्वास नहीं हुआ. पूछा, "यह क्या, पत्तो?"

देवदास ने घड़ी की ओर देखा. विस्मय बढ़ता गया, "इतनी रात में."

पार्वती ने कोई उत्तर नहीं दिया. वह मुंह नीचे किये बैठी रही. देवदास ने फिर पूछा, "इतनी रात में क्या घर से अकेली आयी हो?"

पार्वती ने कहा, "हां".

देवदास ने उद्विग्न, आशंकित होकर पूछा, "क्यों, क्या रास्ते में डर भी नहीं मालूम हुआ?"

पार्वती ने मीठी हंसी हंसकर कहा, "मुझे भूत का भय नहीं लगता."

"मकान में कैसे आयी? क्या किसी ने देखा नहीं."

"दरबान ने देखा है."

देवदास ने आंख फाड़कर देखा, कहा, "दरबान ने देखा? और किसी ने?"

"आंगन में नौकर लोग सो रहे थे, शायद उनमें से किसी ने देखा हो."

देवदास ने बिछौना से कूदकर किवाड़ बंद कर दिये, "किसी ने पहचाना भी."

पार्वती ने कोई भी उत्कंठा प्रकट न की. सहज भाव से उत्तर दिया, "वे सभी लोग मुझे जानते हैं, शायद किसी ने पहचाना हो."

"इतनी रात में—छिः-छिः कल तुम कौन-सा मुंह दिखाओगी?"

पार्वती ने मुंह नीचे किये हुए ही कहा, "वह साहस मुझमें है."

"मेरी नजर में ये दोनों महिलाएं इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि पारो उम्र से काफी पहले औरत बन गयी और चंद्रमुखी को यूथ पार करने के बाद नयी जिंदगी मिली."

कल चिट्ठी आयी है. आज उसने महेंद्र को बुलाकर कहा, "दो पालकी और बत्तीस कहारों को बुला दो, मैं अभी अभी तालसोनापुर जाऊंगी."

महेंद्र ने आश्चर्य से पूछा, "पालकी और कहार तो मैं बुलाये देता हूं, किंतु दो क्यों मां?"

पार्वती ने कहा, "तुम साथ चलोगे. रास्ते में अगर मर जाऊंगी तो मुंह में आग देने के लिए बड़े लड़के की जरूरत पड़ेगी."

महेंद्र ने और कुछ नहीं कहा. पालकी आने पर दोनों आदमियों ने प्रस्थान किया.

उसी दिन संध्या के बाद दोनों पालकियां तालसोनापुर पहुंचीं, किंतु देवदास गांव पर नहीं थे, उसी दिन दोपहर में कलकत्ता चले गये थे.

पार्वती ने सिर पीटकर कहा "दुर्भाग्य!" और फिर मनोरमा से भेंटी.

मनोरमा ने पूछा, "क्या देवदास को देखने आयी थीं."

पार्वती ने कहा, "नहीं, साथ ले जाने के लिए आयी थी. उनका यहां पर अपना कोई नहीं है."

मनोरमा अवाक् हो रही, कहा, "क्या कहती हो? जरा भी लज्जा नहीं करती?"

"लज्जा और फिर किससे? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊंगी. इसमें लज्जा कैसी?"

चंद्रमुखी भी अपने नाचने-गाने के धंधे को छोड़कर और सारे जेवर बेचकर देवदास के लिए सब कुछ करना चाहती है और इस ढंग से करना चाहती है कि उसके स्वाभिमान की रक्षा हो जाये और देवदास को किसी भी तरह से एहसास न हो. जो औरत पैसे के लिए अपना शरीर भी बेच सकती है, वह प्यार के लिए पैसे का तमाम मोह छोड़ भी सकती है. यह उसके चरित्र का एक उजला और महान पहलू है. देखिए, कितनी खूबसूरती से वह यह सारा कार्यकलाप करती है.

देवदास ने कहा, "तुम्हारे सब गहने क्या हुए?"

"बेच डाले."

"माल-असबाब?"

"वह भी बेच डाला."

देवदास ने कुछ देर तक उसके मुंह की ओर देखकर कहा, "चुन्नी बाबू कहां हैं?"

"नहीं कह सकती. दो महीने हुए, लड़-झगड़कर चले गये, तब से नहीं आये."

देवदास को अब और आश्चर्य हुआ. पूछा, "झगड़ा क्यों हुआ?"

"दलाली करने आये, हटा दिया."

"किसकी दलाली?"

चंद्रमुखी ने हंसकर कहा, "पट्टू की." फ़िर कहा, "तुम नहीं समझते? एक बड़े आदमी को पकड़ लाये थे. महीने में दो सौ रुपये, एक सेट गहना और दरवाजे के सामने रहने को एक सिपाही मिलता."

देवदास ने सब समझने के बाद हंसकर कहा, "वह सब एक भी तो नहीं देखता हूं."

"रहते तब न देखते. मैंने उन लोगों को हटा दिया. देवदास ने बहुत सोचकर कहा, "उसी दिन से यहां और कोई नहीं आया?"

"नहीं, उस दिन से क्यों? तुम्हारे जाने के बाद से ही यहां कोई नहीं आता. सिर्फ बीच-बीच में चुन्नीलाल आ जाते थे, किंतु दो मास से वे भी नहीं आते."

मेरी नजर में ये दोनों महिलाएं देवदास का रिफ्लेक्शन नहीं होनी चाहिए, बल्कि देवदास को इन दोनों का रिफ्लेक्शन होना चाहिए. मैं दरअसल हीरोशिप की इमेज तोड़ना चाहता हूं. मेरी नजर में ये दोनों महिलाएं इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि पारो उम्र से काफी पहले औरत बन गयी और चंद्रमुखी को यूथ पार करने के बाद नयी जिंदगी मिली. यह एक खूबसूरत कंट्रास्ट है, जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए. शरत बाबू की पारो उनकी ऐसी पात्र है, जो उनके कई उपन्यासों में कहीं न कहीं झांकती नजर आती है. पारो का रिफ्लेक्शन आपको पंडित मोशाय की कुसुम में भी मिल जायेगा. शरत ने कई उपन्यासों में इस कैरेक्टर की नयी परतें खोजने की कोशिश की है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथेर पंचाली

'पथेर पंचाली' के दर्शक अच्छी तरह जानते हैं कि यह फिल्म दर्शकों के जीवन का अनुभव बनकर कितने गहरे में उतर जाती है! विभूति भूषण वंद्योपाध्याय के उपन्यास 'पथेर पंचाली' पर सत्यजितराय जैसे वरिष्ठ और चर्चित निदेशक ने तीन खंडों में फिल्मांकन किया—'पथेर पंचाली', 'अपराजितो' और 'अपुर संसार'. यह सीक्वेंस 'पथेर पंचाली' से है जो हमें कहानी के प्राण-तत्व से तो जोड़ता ही है. . . पिशी में वृद्धावस्था के अवसाद और उसकी मौत पर दुर्गा की सहजता और पट-कथा के सबल तकनीकी पक्ष की छवि भी इस सीक्वेंस के बहाने देखी जा सकती है. . .

दिन का समय. बरामदा. एक शीशे के सामने अपू अपनी नाक के नीचे कागज की मूछें चिपकाने की कोशिश कर रहा है. फिर जैसे ही वह चमकीले कागज से बना हुआ मुकुट सिर में रखता है वैसे ही मूछें नीचे गिर जाती हैं. पृष्ठभूमि में जात्रा का संगीत चल रहा है. सर्वोजया नहाकर घर में आ रही है—और दरवाजे के बाहर से ही आवाज देती है. जात्रा संगीत रुक जाता है.

सर्वोजया : दुर्गा दुर्गा! जाके देख तो बछड़ा कहां भाग गया.

जैसे ही सर्वोजया भीतर आती है अपू उसके पीछे लग जाता है.

अपू : मां मेरा मुकुट तो बांध दो.

सर्वोजया प्यार से उसकी ओर देखती है.

सर्वोजया : जरा रुक जा. तू तो समझता है जैसे तेरा हुकुम बजाने के अलावा मेरा कोई और काम ही नहीं है!

इसी बीच मां की बात सुनकर दुर्गा बाहर आती है.

दुर्गा : अपू! पिशी को देखने चलोगे?

मां अपू के सिर पर चमकीले कागज का मुकुट ठीक से रखते हुए कहती है—

सर्वोजया : अब तुम पिशी को ही मत ढूंढते रहना. जाकर पहले बछड़े को ढूंढो.

सर्वोजया अपू के मुकुट के धागे पर गांठ मारकर धीरे से उसके सिर को पीछे ठेलती है. मुकुट उसकी नाक पर आ गिरता है. अपू उसे फिर से सिर पर रख देता है. दुर्गा दीवार पर बने एक बड़े से छेद से भीतर आती है और अपू का मुकुट देखकर चकित होती है.

दुर्गा (हंसते हुए) : यह क्या है?

अचानक दुर्गा गंभीर हो जाती है. और गुस्से से पूछती है.

दुर्गा : तुम्हें यह पन्नी कहां से मिली?

अपू अपराधी भाव से खड़ा रह जाता है. दुर्गा भागती हुई कमरे में जाती है और अपने छोटे से बक्से को खोलकर टटोलने लगती है. यह सब देखकर अपू भागने लगता है और दुर्गा उसके पीछे भागती है. वे दोनों दरवाजे और दीवार पर बने छेद पर चक्कर काटते रहते हैं. अपू दुर्गा से बचने की कोशिश करता रहता है. आखिर में दुर्गा अपू को पकड़ ही लेती है और थप्पड़ मारती है.

दुर्गा (धमकाते हुए) : फिर करोगे ऐसा!

सर्वोजया यह सुन लेती है और दौड़कर बच्चों के बीच में आ जाती है.

सर्वोजया : यह क्या हो रहा है? . . . दुर्गा! . . . दुर्गा! यह क्या कर रही हो. तुमने फिर उसे मारा.

सर्वोजया दुर्गा से छुड़ाकर अपू को उठाती है. दुर्गा अपनी सफाई में कह रही है.

दुर्गा : उसने मेरे बक्से में से चीजें क्यों निकालीं?

सर्वोजया अपू के कपड़ों से धूल झाड़ती है.

सर्वोजया : क्यों न निकाले? बड़ा कीमती बक्सा है तुम्हारा जैसे.

दुर्गा सफाई में कह रही है.

दुर्गा : इसने मेरी सारी पन्नियां निकाल लीं.

सर्वोजया : चुप रहो और जाकर बछिया को ढूंढ लाओ.

सर्वोजया चली जाती है और दुर्गा अपू को घूरती रहती है.

दुर्गा (धीमे धमकाते हुए स्वर में) : गधा! बड़ा आया राजकुमार बनने!

दुर्गा घर के कोने की तरफ जाती है फिर मुड़कर अपू की तरफ देखती है. अपू अपने धनुष-बाण और पन्नी के मुकुट के साथ खड़ा है. दुर्गा उसकी तरफ देखते हुए जीभ निकालती है और फिर घूमकर भाग जाती है. अपू उसके पीछे-पीछे भागता है. पृष्ठभूमि में बांसुरी पर थीम म्यूजिक चलने लगता है. डिजाल्व.

बच्चे दौड़ रहे हैं. दूर एक मैदान में अपू दुर्गा के पीछे भाग रहा है. उनके साथ-साथ मैदान में एक बादल की छाया भी चल रही है. थीम म्यूजिक बंद हो जाता है. डिजाल्व.

दिन का समय. घर. पिशी हांफती हुई अपनी छड़ी खटखटाती हुई घर का चरमराता दरवाजा खोलती है. रसोई में खाना खाती हुई सर्वोजया के चेहरे पर इसकी प्रतिक्रिया दिखती है. पिशी भीतर आती है.

पिशी : बहू! घर में हो न बहू?

सर्वोजया को उसके आने की कोई खुशी नहीं होती. पिशी मुस्कराते हुए नजदीक आती है.

पिशी : मेरी तबीयत अच्छी नहीं रही. इसलिए मैंने सोचा कि अपनी जिंदगी के आखिरी दिन अपने पुरखों के घर में ही काटूं.

सर्वोजया (फ्रेम के बाहर से) : अपने पुरखों के घर को बहाना बनाने की क्या जरूरत थी. लगता तो ऐसे है जैसे तुम्हें अपने पुरखों के घर की इतनी चिंता है कि नींद ही नहीं आती. तुम जा सकती हो. नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा, कहे देती हूं.

पिशी बहुत परेशान, हताश और थकी हुई दिखने लगती है. वह अब भी रसोई के बरामदे की ओर बढ़ रही है.

पिशी : धीरज रखो. . . .

वह अपने बरामदे में चली जाती है. अपनी छड़ी, पीतल का लोटा, और चटाई जमीन पर रखकर एक कोने में बैठ जाती है. सर्वोजया बहुत उद्विग्न है.

सर्वोजया (फ्रेम के बाहर से) : तुम बैठ गयी हो?

पिशी (हांफते हुए) : एक मिनट रुको. थोड़ा आराम कर लेने दो.

दुर्गा मैदान में बैठकर गन्ना चूस रही है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे अपू दिखाई देता है जो उसकी ओर देख रहा है. वह उछलकर खड़ी हो होती है व चलने लगती है. अपू उसके पीछ चलने लगता है.

पिशी अपना चेहरा पोंछती है. सर्वोजया उस पर गर्म हो रही है.

सर्वोजया (फ्रेम के बाहर से) : ठाकुरजी, क्या तुम खो गयी हो?

पिशी (अब भी हांफ रही है) : थोड़ा-सा पानी मिलेगा?

सर्वोजया (फ्रेम के बाहर से) : खुद ही क्यों नहीं निकाल लेती. तुम्हारे पास अपना बर्तन तो है.

पिशी अपना लोटा उठाकर बरामदे से उतरती है. फिर रसोई के बरामदे की सीढ़ियों पर बड़ी मुश्किल से हांफती हुए चढ़ती है. सर्वोजया खाना खाती रहती है. उसे पास आया देखकर घड़े पर से ढकना उठाती है. पिशी के चेहरे पर आखिरी मुस्कान झलकती है जो जल्दी ही खत्म हो जाती है. क्योंकि सर्वोजया जवाब में नहीं मुस्कराती. पृष्ठभूमि में सितार पर ट्रिमैलो की धुन शुरू हो जाती है.

पिशी घड़े को टेढ़ा करके लोटे में थोड़ा-सा पानी निकालती है. उसमें से कुछ पीती है और कुछ सिर पर छिड़कती है. फिर बरामदे से चली जाती है. लोटे का बाकी बचा पानी बरामदे के नजदीक रखे एक गमले में डाल देती है.

वह अपना सामान उठा लेती है. सर्वोजया कठोर चेहरा लिए आधे भरे कटोरे को अपने मुंह के नजदीक लाती है. पिशी बरामदे पर आखिरी नजरें डालती हुई चली जाती है. सितार पर ट्रिमैलो की धुन खत्म हो जाती है. डिजाल्व.

दुर्गा एक मैदान में है जहां ऊंची-ऊंची कांस की झाड़ियां फैली हुई हैं. टेलीग्राफ के खंभे और तार आकाश की पृष्ठभूमि में दिखाई देते हैं.

टेलीग्राफ के तारों की गूंज सुनाई देती है. दुर्गा बड़ी उत्सुकता से टेलीग्राफ के खंभों की ओर जाती है. अपू कुछ दूरी से उसके पीछे-पीछे चल रहा है. दुर्गा एक खंभे से कान लगाकर गूंज को सुनती है और फिर आगे बढ़ जाती है. अपू दुर्गा को देख रहा है. वह भी टेलीग्राफ के खंभे के पास आकर गूंज को सुनता है. दुर्गा कांस की झाड़ियों के भीतर चली जाती है और अपू भी उसके पीछे-पीछे जाता है. टेलीग्राफ के खंभों की गूंज खत्म हो जाती है.

अपू के चारों ओर कांस की ऊंची-ऊंची झाड़ियां हैं. उसे लगता है वह खो गया है. डिजाल्व.

वह कांस के बीच में से भागता हुआ दुर्गा को आवाज देता है.

अपू : दीदी. . .

गन्ने का एक छोटा-सा टुकड़ा कहीं से आकर उसे लगता है. वह उसे उठा लेता है और मुस्कराने लगता है. वह देखता है कि दुर्गा कांस की झाड़ियों के बीच बैठी है.

दुर्गा : बैठ जा. . . खा ले.

अपू बैठ जाता है और दांतों से गन्ना छीलने लगता है.

अपू इस नयी जगह के बारे में जानना चाहता है.

अपू : हम कहां हैं?

दुर्गा इशारे से कहती है, पता नहीं. अपू गन्ने से एक ओर इशारा करता है.

अपू : वह क्या है ?

दुर्गा फिर वही इशारा करती है.

अपू : अगर मां ने . . .

दुर्गा अचानक अपू को चुप कराने के लिए उसके मुंह पर हाथ रख देती है. फिर कुछ ध्यान से सुनती हुई बिना आवाज के बुदबुदाती है. रेलगाड़ी!

दोनों खड़े हो जाते हैं और इधर-उधर देखने लगते हैं. अचानक उन्हें इंजन का ऊपरी भाग और धुंए के बादल दिखाई देते हैं. वे उसकी ओर भागते हैं. दुर्गा भागती है और गिर पड़ती है. अपू भागता रहता है और जब तक पटरियों के पास पहुंचता है, ट्रेन जा चुकी है. वह गायब हुई ट्रेन की दिशा में आकाश में बचे हुए बादलों को देखता रहता है. डिजाल्व.

बांस के जंगल में अपू और दुर्गा बछड़े को साथ लिए जा रहे हैं. साथ ही वे एक बच्चों का गीत भी गुनगुना रहे हैं. पृष्ठभूमि में बांसुरी पर धीम म्यूजिक.

बांस के झुरमुट के नीचे पिशी मौत की सांसें ले रही है.

बच्चे हल्के-फुल्के मूड में हैं. दुर्गा रास्ता छोड़कर बांस के झुरमुट की ओर जाती है. अपू उसके पीछे-पीछे जाता है. पृष्ठभूमि में झांझ का संगीत. दुर्गा पिशी के पास जाती है. सोचती है कि वह उसे आश्चर्य में डाल देगी. वह पिशी के सामने जाकर बैठ जाती है. पिशी का चेहरा घुटनों के बीच में छिपा है. दुर्गा झुककर छिपे हुए चेहरे को देखने की कोशिश करती है. जब नहीं दीखता तो वह पिशी के घुटनों को हिलाने लगती है. अपू पास ही खड़ा है.

दुर्गा : (पिशी को हिलाते हुए) : पिशी!

दुर्गा : पिशी, हे पिशी, . . पिशी. . पिशी..

झांझ का संगीत खत्म हो जाता है. दुर्गा अभी हिला रही है.

दुर्गा (फुसफुसाते स्वर में) : पिशी !

पिशी का सिर एक ओर झुक जाता है. वह लुढ़ककर नीचे गिर जाती है और उसका सिर जमीन से टकराता है.

दुर्गा मरी हुई पिशी के ऊपर झुकती है और डरकर अपना चेहरा हटा लेती है.

डर से हांफते हुए दुर्गा जाने के लिए मुड़ती है.

अपू उसके पीछे-पीछे आता है. जैसे ही वे ढाल पर से भागते हैं पिशी का पीतल का लोटा उनके पीछे-पीछे लुढ़कता है. फिर तालाब में गिर जाता है. बच्चे भाग जाते हैं. पृष्ठभूमि में पिशी के स्वर में उसके गाने की आवाज. डिजाल्व. □

प्रस्तुति : सु. उ.

गलती सत्यजित राय से भी होती है

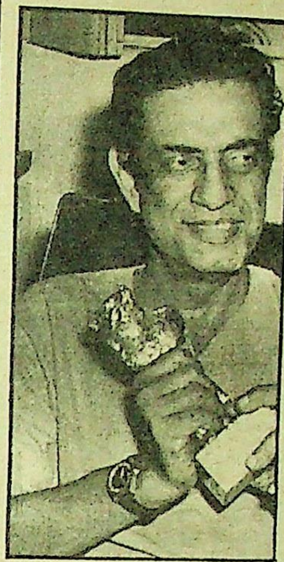

'पथेर पंचाली' सत्यजित राय की पहली फिल्म थी और पहली फिल्म थी जिसने भारतीय सिनेमा को अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलवायी. लगभग तीन दशक पुरानी इस फिल्म को आज भी जानकार भारतीय फिल्म दर्शक बड़ी श्रद्धा के साथ देखता है. लेकिन कुछ बड़ी चूकों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता. फिल्म में एक मिठाई वाला अपनी बेहंगी लेकर मिठाई बेचने आता है. हालांकि मिठाई वाला एक ही है पर दो अलग-अलग दृश्यों में दो अलग-अलग व्यक्ति इस भूमिका में आते हैं. दरअसल हुआ यह था कि दोनों दृश्यों को फिल्माने में दो-तीन महीने का अंतर था. इस बीच जिस व्यक्ति ने पहले दृश्य में यह भूमिका की थी, वह मर गया. पैसे की तंगी तो इस फिल्म को बनाने के दौरान रही ही, इसलिए पहला दृश्य नये अभिनेता के साथ दुबारा नहीं लिया जा सका और पहले फिल्माये दृश्य से ही काम चला लिया गया.

इसी प्रकार फिल्म के अंत से कुछ पहले पिता हरिहर मुखर्जी वापस गांव आता है. जब वह अपने घर के दरवाजे के बाहर है उस समय तो बारिश हो रही है और जैसे ही वह अपने आंगन में आता है, वहां बारिश नहीं होती. □

—सु. उ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक कृतियों को फिल्माने के खतरे

☐ ब्रजेश्वर मदान

कथा रचना में लेखक को केवल शब्द देने होते हैं. जबकि उसे फिल्माते समय फिल्मकार को उसे इमेज में रूपांतरित करना होता है. इस रूपांतरण में क्या खतरे हैं, इन्हीं पर विचार कर रहे हैं फिल्म समीक्षक ब्रजेश्वर मदान—

किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाना आसान काम नहीं है. साहित्यिक कृति को सिनेमा में बदलने में यह खतरा बराबर बना रहता है कि कहीं उस रूपांतरण में कृति की आत्मा ही नष्ट न हो जाये. इसकी एक ताजा मिसाल गिरीश करनाड की फिल्म 'उत्सव' में देखने को मिली.

उत्सव के बारे में यह बताने की जरूरत नहीं कि यह फिल्म शूद्रक के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'मृछकटिकम्' पर आधारित है. गिरीश करनाड ने फिल्म के लिए इस कृति की प्रासंगिकता उन तत्वों में देखी जिन्होंने व्यावसायिक सिनेमा की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है. उनके अपने शब्दों में—"शूद्रक के इस नाटक में वे सब तत्व देखे जा सकते हैं जो व्यावसायिक सिनेमा के मुख्य स्रोत रहे हैं. मसलन नायिका का बारिश में भीगते हुए नायक से मिलने जाना, खलनायक द्वारा नायिका का पीछा करना, नायिका की गला दबाकर हत्या और उस हत्या का आरोप नायक पर मढ़ देना है. 'मृच्छकटिकम' के अंत में हिंदी फिल्मों की की तरह कोर्टरूम सीन भी है, जिसका उन्होंने फिल्म में इस्तेमाल नहीं किया.

हिंदी फिल्मों में रूढ़ हो चुके इन प्रसगों के आधार पर गिरीश करनाड की इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि फिल्मों की संरचना के लिए यह नाटक स्रोत रहा है यों तो आज दुनिया में सिनेमा की जो शक्ल है उसे वह शक्ल साहित्यिक कृतियों से ही मिली है. भारत में ही नहीं, बाहर भी फिल्मों का ढांचा नाटकों से बना है. यह जरूरी भी था, क्योंकि सिनेमा का मुख्य काम कहानी कहना रहा है. कहानी कहना व्यावसायिकता की दृष्टि से भी जरूरी रहा होगा. कौन नहीं जानता कि फिल्मों के दो ही रूप पूरी दुनिया में जाने जाते हैं, एक कथा चित्र और दूसरा वृत्त चित्र. फिल्मों का जो नरेटिव स्ट्रक्चर है वह उसे नाटक और कहानियों से ही मिला है. पहले जिस तरह फिल्मों ने साहित्य में यह वर्णनात्मक ढांचा ढूंढा था, वैसे आज फिल्मकार उस स्ट्रक्चर को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं. क्योंकि कहानी और उपन्यास समय के साथ उस ढांचे को तोड़कर बहुत आगे निकल चुके हैं.

यहां यह स्पष्ट करना भी जरूरी है कि फिल्मों की कहानियों और संरचनात्मक स्वरूप के लिए साहित्य पर निर्भर इस विधा को महत्व नाटक से टूटकर ही मिला. ग्रिफिथ ने इस विधा को नाटक से अलग 'क्लोजअप' से किया. आइजेंस्ताइन और पुदोवकिन ने फिल्मों के लिए 'मोंताज' और संपादन की शैली विकसित की. सिनेमा में नाटक से टूटने के जो प्रयोग हुए उन्होंने ही उसे एक शक्तिशाली माध्यम में बदला. इन प्रयोगों से सिनेमा समय और स्थान की वह दूरियां भी तय कर गया जो नाटक के बस की नहीं. इस तरह सिनेमा नाटकों से आगे निकलकर उपन्यास और कहानियों को फिल्माने में भी समर्थ हो गया. वहां इसका अर्थ उपन्यास और कहानियों को उपन्यास और कहानियों की तरह फिल्माने से है.

लेकिन एक बात को जान लेना बहुत जरूरी साहित्य की सिनेमा के लिए प्रासंगिकता कथा कहने में नहीं है. साहित्य सिनेमा के लिए तभी सार्थक हो सकता है, जब वह सिनेमा को जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए तत्व प्रदान करे. कहानियों की शक्ल में ही नहीं बल्कि तकनीकी दृष्टि से भी उसे कथा से सिनेमा बनने में मदद करे. मोंताज और 'क्लोज अप' से जो मुहावरा कथा चित्रों को शुरू के श्रेष्ठ फिल्मकारों ने दिया, उसने सिनेमा को भ्रष्ट ही किया. सिनेमा को एक ऐसा स्वरूप मिला जो तकनीक के विकास के साथ दर्शकों को गुलाम बनाता था. उसका काम दर्शकों का भावनात्मक और ऐंद्रिक शोषण करके उन्हें लूटना और सिनेमाघर के अंधेरे में उनकी सभी ऐंद्रिक शक्तियों को नियंत्रित करके उनकी सोचने समझने की शक्ति नष्ट करना हो गया.

गिरीश करनाड को 'मृच्छकटिकम' में जिन तत्वों ने आकर्षित किया वे नाटक के वही तत्व हैं जिन्होंने सिनेमा को भ्रष्ट किया. यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि नाटक के इन तत्वों के साथ नाटक की आत्मा का कोई संबंध नहीं. नाटकों से लिए नाटकीय तत्वों ने सिनेमा को जो विकृत स्वरूप दिया उसका चरम रूप हॉलीवुड की फिल्मों में देखा जा सकता है. यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस विकृत स्वरूप को फिल्मकारों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में ही पहचान लिया था. इस विकृत ढांचे के खिलाफ इटली में 'नवयथार्थवाद' की लहर आयी. 'नवयथार्थवाद' के लिए जरूरी नियम था कि उसमें नाटकीयता उत्पन्न करने की हॉलीवुड की 'संपादन शैली' का इस्तेमाल न हो. फिल्में वास्तविक लोकेल पर वास्तविक पात्रों के साथ फिल्मायी जायें. फिल्मों को यथार्थ स्वरूप प्रदान करने के लिए विस्कौंती, रोजैलिनी और डी सिका ने ऐसी फिल्में बनायीं. ऐसी बात नहीं कि नवयथार्थवाद में साहित्य का इस्तेमाल नहीं हुआ. विस्कौंती ने 'ला तेरा तरेमा' की कहानी वेरगा के उपन्यास से ली थी. यह उपन्यास मछली पकड़नेवालों के जीवन पर था. विस्कौंती ने उपन्यास के भाग्यवादी नायक का इस्तेमाल मार्क्सवादी दृष्टि से किया और उसे यथार्थ की ऐसी पृष्ठ-

'तरंग' में स्मिता पाटिल तथा अमोल पालेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि प्रदान की जहां मछेरे अपने दुर्भाग्य को सामंती समाज में शोषण की प्रक्रिया के रूप में पहचानते हैं, थोक व्यापारियों के खिलाफ विद्रोह करते हैं और उनके वह तराजू समंदर में फेंक देते हैं जो शोषण के प्रतीक हैं और जिनसे उनका पकड़ा हुआ माल तोला जाता है. यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विस्कौंती की फिल्म 'रोको एंड हिज ब्रदर्स' की इस दृष्टि से आलोचना भी की गयी थी कि उन्होंने इस फिल्म के पात्रों को भावनात्मक पक्ष प्रदान करने के लिए दोस्तोयेवस्की के उपन्यास 'ईडिएट' के मिश्किन, नताशा और रोझोनोव वाले तिकोन का इस्तेमाल किया है. इससे पता चलता है कि 'नवयथार्थवाद' भावनात्मक शोषण की इजाजत नहीं देता था. इस विधा के फिल्मकारों को साहित्य पर ऐसी निर्भरता स्वीकार्य नहीं है.

सिनेमा के विकृत स्वरूप को बदलने के लिए जरूरी है कि उसमें 'इमोशन' को कम करके विचार को सामने लाया जाये. इसका उदाहरण कुमार शहानी की 'तरंग' में मिलता है. उन्होंने फिल्म महाकाव्य शैली में बनायी है, लेकिन उसके लिए उन्होंने महाभारत की कथा नहीं ली, महाभारत के उन रूपों का अध्ययन किया है, जिनके आधार पर वह फिल्म के छोटे से छोटे पात्र को उभरने का मौका दे सकते हैं. इस फिल्म में वह दर्शक से व्यावसायिक सिनेमावाली 'इन्वाल्वमेंट' नहीं चाहते कि वह उसमें खो जाये, बल्कि वह ब्रेख्तियन शैली में उसे पूंजीवादी और विकृत सिनेमा के अंधेरे में बाहर निकालते हैं. फिल्म में दो प्रसंग हैं. एक रेस्तरां में जब एक व्यक्ति अमोल पालेकर से पूछता है, "आप अमोल पालेकर हैं?" तब अमोल पालेकर जवाब देता है, "नहीं, मैं राहुल हूं." एक प्रसंग है कि एक्सीडेंट देखकर पत्रकार सार्जेंट से पूछता है. आपका इसके बारे में क्या खयाल है. सार्जेंट उल्टे उससे पूछता है, "फिल्म के बारे में या एक्सीडेंट के?"

'तरंग' से पता चलता है कि साहित्य की प्रासंगिकता सिनेमा के लिए रूप खोजने में हो सकती है. दर्शक को जिंदगी और फिल्म का फर्क बताना जरूरी है ताकि वह सिनेमा के बारे में भी वैसे ही सोच सके जैसे साहित्य के बारे में सोच सकता है. देखनेवाले को सिनेमा के सामने बेबस नहीं होना चाहिए और अंधेरे में दर्शक को 'हिप्नोटाइज' करनेवाला प्रभाव भी खत्म होना चाहिए.

फिल्मकार इस जरूरत को समझ रहे हैं. गोदार तो जिंदगी और फिल्म का फर्क बताने के लिए एक्सीडेंट के बाद शॉट और टेक नंबर तक अपनी फिल्म में दिखा देता है. हिंसा के दृश्यों में व्यावसायिक सिनेमा में तो उत्तेजना प्रदान की जाती है जबकि गोदार फिल्म में यह भी दिखा देगा कि यह खून नहीं, लाल स्याही है. जापान में ओजू की फिल्में अगर साहित्य पर होती हैं तो वह सिनेमा से साहित्य की नाटकीयता समाप्त करके उन्हें जीवन जैसा बना देता है. जीवन ही नहीं, मृत्यु भी उनकी फिल्म में मृत्यु जैसी ही होती है. उतनी ही नाटकीय जितनी मृत्यु हो सकती है, उससे ज्यादा नहीं. हालांकि व्यावसायिक सिनेमा ने दर्शकों की रुचि को इतना भ्रष्ट किया है कि उनको जीवन जीवन जैसा देखना उबाऊ लग सकता है. भारत में भी अब ऐसे फिल्मकार हैं, जो दर्शक को उसके सोचने-समझने की शक्तियां वापस करने की कोशिश कर रहे हैं. नीरद महापात्र की 'मायामृग' ऐसी ही फिल्म है, जिसमें ओजू वाली शैली का इस्तेमाल हुआ था. इस फिल्म को देखना साहित्य को पढ़ने जैसा हो सकता है. फिल्म वैसे ही देखनेवाले को सोचने, समझने और विचार करने का मौका देती है.

ग्रिफिथ के जमाने में जहां 'क्लोजअप' का इस्तेमाल एक गुण माना गया था; आज वह दोष हो सकता है. 'दामुल' में प्रकाश झा 'क्लोजअप' का इस्तेमाल नहीं करते. अगर कहीं है भी तो भावनात्मक शोषण के लिए नहीं, पात्रों को दर्शकों से परिचित करवाने के लिए. इसलिए कि फिल्म साहित्य की तरह सच्ची हो सके.

फिल्म से साहित्य का सही रिश्ता होना चाहिए. नहीं तो भारत में, प्रेमचंद के कृतित्व पर बनी फिल्मों में से 'सद्गति' को छोड़कर 'शतरंज के खिलाड़ी' में सत्यजित राय तक ने उन्हें विकृत किया है.

साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने में सबसे बड़ा खतरा यही होता है कि फिल्म बनानेवाले उनमें जीवन के सच्चे चित्रण की बजाय विकृत ढांचे के लिए नाटकीय तत्व तलाश करने लगते हैं. □

प्रेमचंद का घीसू मृणाल सेन का फिलासफर

—सोमेंद्र बत्रा

'कफन' मानव को नैतिक एवं सौंदर्यात्मक मूल्यों से रहित बना देने वाली कथा है जिसे मृणाल सेन राजनीतिक दृष्टिकोण से देखते हैं. वे घीसू और माधो को कामचोर प्रवृत्ति के लिए शोषक वर्ग और व्यवस्था को दोषी ठहराते हैं. उनकी फिल्म में वे मूल-कथा में समेटी गयी व्यथाओं की विशालता से प्रभावित होकर लेखक के ट्रीटमेंट से हटकर आज की सामाजिक स्थितियों के अनुरूप ट्रीटमेंट पर आ गये हैं. नीलम्मा (बुधिया) के मरने के बाद व्यंका (घीसू) कृष्टा (माधो) के साथ एक पेड़ के नीचे बैठा अपनी मुट्ठी में दबाये पैसों को बार-बार देख रहा है, जो उसने अपनी बहू के कफन लिए भीख मांगकर जुटाये हैं और फिर किसी संन्यासी की-सी मुद्रा बनाये कृष्टा (माधो) को बताता है कि उसकी मुट्ठी में यह पैसे नहीं बल्कि एक अलौकिक शक्ति है, इससे जो चाहो मिलेगा. वह इस शक्ति से रोटी, कपड़ा, मकान और मरी हुई बहू के लिए जीवन की मांग करता है. उस समय व्यंका (घीसू) आम आदमी के समकालीन लगता है, जो केवल इन्हीं जरूरतों के लिए संघर्षरत है. यह सिर्फ किसी एक समय की कथा न होकर शाश्वत घटना लगती है. मृणाल सेन के दृष्टिकोण में व्यंका (घीसू) एक फिलासफर है, जो कहता है, बुद्धू (गरीब) काम करके मरे, सयाना (अमीर) बैठे-बैठे खाये. वह सयाने को खिलाने के लिए काम नहीं करना चाहता. वह स्वयं के खाने के लिए काम करता है और बेटे को भी यही सीख देता है कि वह भी काम के चक्कर में न पड़े. नहीं तो बस, इसी में ही घूमता रह जायेगा. जब तक सयाने लोग हैं, बुद्धू यूं ही पिसते रहेंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतनाथ को तब कुछ भी नहीं पता था, जब उसने जवा से कहा कि बचपन में जिससे शादी हुई थी, वह मर गया हो तो वह सुपवित्र से शादी कर ले, लेकिन जब जवा ने उसे वह कागज दिया तो... आखिर क्या लिखा था उस कागज में, जिसने भूतनाथ को ताउम्र अविवाहित रहने के लिए मजबूर कर दिया. बंगला के बहुपठित उपन्यास 'साहब, बीवी, गुलाम' का सार-संक्षेप. गुरुदत्तने इसी उपन्यासपर 'साहब, बीवी और गुलाम' फिल्म बनायी. फिल्म का निर्देशन अबरार अलवी ने किया. यह अपने वक्त की सफलतम फिल्मों में से थी, हालांकि गुरुदत्त ने कई जगह 'सिनेमेटिक लिबर्टी' ली है, लेकिन उपन्यास के अंत को विशेष रूप से बदला है. दर्शकों को यह 'लिबर्टी,' यह बदलाव बहुत पंसद आया था. हो सकता है आपने उपन्यास न पढ़ा हो, लेकिन फिल्म अवश्य देखी होगी. संभव है यह सार-संक्षेप आपके निर्णय में सही मदद करे....

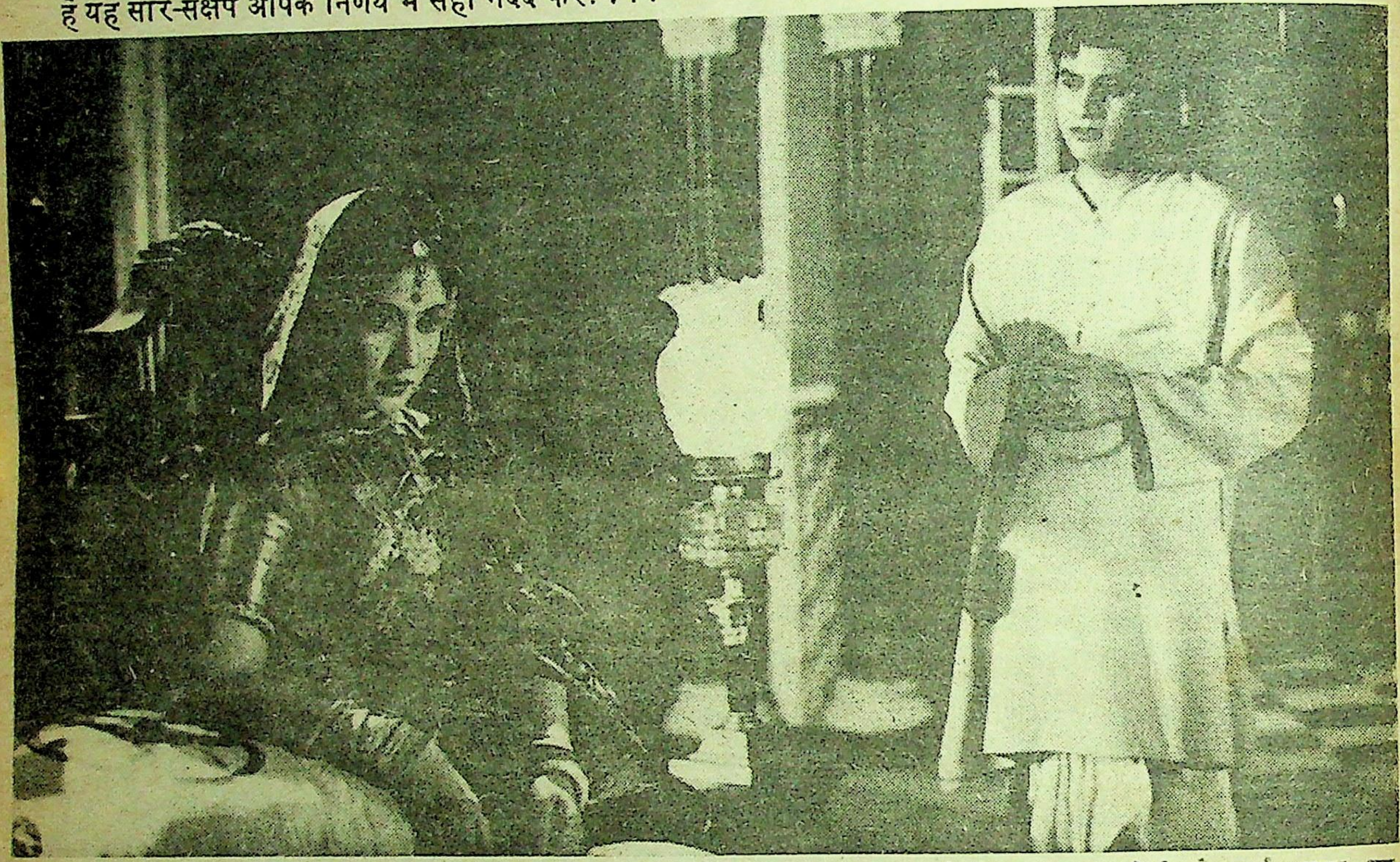

बंगला उपन्यास

साहब, बीवी और गुलाम

विमल मित्र

फतेहपुर से तीन कोस पैदल चलने पर पड़ता था माजदिया स्टेशन. एक दिन उसी स्टेशन से गाड़ी पर सवार होकर भूतनाथ कलकत्ते आया था.

'मोहिनी सिंदूर' के दफ्तर में भूतनाथ की नौकरी हो गयी. बड़े साले ब्रजराखाल के यहां रहता और सुबह थोड़ा-सा नाश्ता करके दफ्तर पहुंचता. काम भी क्या? सिंदूर के बेशुमार खाली डिब्बे. उनमें सिंदूर भरकर लेबिल लगाना. भूतनाथ यह काम नहीं करता. वह करता खत-किताबत. कब कहां का आर्डर आया, उसे बही में दर्ज करना और कब कहां माल गया, यह भी लिख रखना. वी.पी. के फार्म भरना, यह सब करते-करते उसका हाथ दुख जाता. सांझ को अपने कमरे में भूतनाथ पिछली बातें बिसूरता. ब्रजराखाल लड़कों को पढ़ाने गया होता. तबला लेकर भूतनाथ बैठ जाता. शाम को अकेले करे भी क्या? उधर छोटे बाबू की तरफ महफिल जम जाती. कभी-कभी और ज्यादा जगता भूतनाथ तो मंझले बाबू की गाड़ी के आने का पता चल जाता. उनका नौकर दौड़ा-दौड़ा आता. पकड़कर लिवा जाना पड़ता उन्हें. कभी-कभी बेतरह डगमगाते पांव. वैसे में महल के अंदर नहीं जाते. बाहर के ही कमरे में फर्श पर तकिया लगाकर सो रहते. भूले-भटके कभी मंझली बहू के शयनकक्ष में जाते. छोटे बाबू और भी रात करके लौटते.

वंशी की जुबानी यह सब मालूम हुआ—प्रायः यही होता, लेकिन भूतनाथ वाले घर की छत पर जाया जाये तो नजर आये कि अंदर महल की सारी बत्तियां गुल हैं, लेकिन छोटी बहू के कमरे में सबसे तेज बत्ती जलती. वंशी कहता, छोटी मालकिन तो सोती नहीं. या तो किताबें पढ़ती रहती हैं या गुड़ियों के कपड़े सीती हैं या चिंता से बातें करती रहती हैं. छोटे बाबू के लौटने की खबर मिलकर उनके कमरे की बत्ती बुझती है. चिंता कमरे को भीतर से बंद कर उनके पास फर्श पर सो जाती है.

इन्हीं छोटी मालकिन ने वंशी के जरिए एक सुबह भूतनाथ को बुलवा भेजा. भूतनाथ को यकीन नहीं हुआ. छोटी बहू उसे क्यों बुलायेंगी, यह भूतनाथ समझ नहीं सका. अजीब बात. बाहरी लोगों का घर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश निषेध. जिधर देखो, परदा, चिक, और उसी घर की बहू बुला रही है उसे. भूतनाथ ने पूछा, "छोटी मालकिन ने कुछ कारण भी बताया."

"नहीं तो," वंशी ने कहा, "तो शाम को आपको ले जाऊंगा."

"अच्छा." कहकर भूतनाथ दफ्तर चला गया.

कभी-कभी मंझले बाबू दीख जाते, एक गाड़ी पर खुद, दूसरी दो पर उनके मुसाहिब. मंझले बाबू के साथ होती उनकी रखैल. उस कमसिन का नाम था हासिनी. जितना अच्छा नाचती, उतना ही अच्छा गाती. पहले यही एक थी, फिर दो हो गयीं और अब हुईं तीन. मंझले बाबू की शान-शौकत देखकर कलकत्ते के बाबू लोग हैरान हैं. भूतनाथ ने एक बार मंझले बाबू के नौकर बेनी से पूछा, "मंझली बहू को इन बातों का पता है?"

बेनी ने कहा, "मंझली मालकिन बड़े घर की बेटी हैं, सब सह सकती हैं. वह कभी कमर की करधनी तुड़ाकर बिछवा बनवाती हैं तो कभी चूड़ा. रोज नये गहने."

भूतनाथ चुप खड़ा देर तक सोचता रहा. फिर कमरे में आकर दफ्तर के कपड़े बदलने लगा कि शशी ने आकर कहा, "नन्हें बाबू याद कर रहे हैं." शशी नन्हें बाबू का नौकर है.

देखते ही नन्हें बाबू बोल उठे, "अरे, आइए साहब, आपके तबले की थाप रोज सुनता हूं और सोचता हूं कि हाथ पेशेवर का है. हो जाये."

भूतनाथ का चलने लगा कव्वाली का ठेका. विश्वंभर झूम रहा था. मस्त होकर गा रहा था. भूतनाथ की कलाइयां दुखने लगीं.

इतवार था. वंशी आ धमका. बोला, "आज तो आपको जाना ही पड़ेगा. छोटी मालकिन रोज ही कहती हैं कि अरे, अपने साले साहब को बुलाया नहीं तूने. भूतनाथ है तो ब्रजराखाल का साला, लेकिन उसे सब ही साले साहब कहते हैं. रात आठ बजे का वक्त. भूतनाथ सोचने लगा, ब्रजराखाल को बिना बताये जाना ठीक नहीं रहेगा. नन्हें बाबू की गैरहाजिरी में महल की बात!

छोटी बहू ने कहा था, "आओ बैठो." नीचे गलीचा बिछा था. भूतनाथ बैठ गया.

"जी, मुझे बुलाया किसलिए था."

"बताती हूं, लेकिन पहले कुछ नाश्ता कर लो तुम, चिंता, नाश्ता ले आ भूतनाथ के लिए."

उनके मुंह से अपना नाम सुनकर भूतनाथ को बड़ा अचरज लगा. चकित भूतनाथ सोचने लगा, इतना आदर-सत्कार किसलिए? कहीं छोटे बाबू आ धमके. भूतनाथ ने उनके मुंह की ओर ताका.

"तुम शायद मोहिनी सिंदूर के दफ्तर में काम करते हो," छोटी बहू ने कहा, "बहुत काम करना पड़ता है शायद."

"जी हां." भूतनाथ ने नौकरी का सारा किस्सा कह सुनाया. उसकी कहानी सुनते हुए दांत से अपना पतला होंठ रह-रहकर काट लेती थीं छोटी बहू. भूतनाथ को इतना अच्छा कभी न लगा था. बोला, "चलूं अब, काफी देर कर दी आपको."

छोटी बहू ने कहा, "इतने दिन हो गये यहां रहते. अब भी कुछ समझ न सके. रात के बारह बजे इस घर में सांझ होती है, नहीं जानते?"

भूतनाथ चुप. छोटी बहू ने पूछा, "तुम्हारे सिंदूर का दाम क्या है?"

"दो रुपया सवा पांच आना, मगर रुपयों की जरूरत नहीं."

"जरूरत क्यों नहीं? चोरी करोगे? चिंता, भूतनाथ को पांच रुपये दे दे निकालकर."

"पांच रुपये क्या करूंगा मैं?"

"बाकी चाहे लौटा देना." कहकर उन्होंने पांच चमकते सिक्के भूतनाथ की मुट्ठी में रख दिये. कहा, "मगर सिंदूर का जिक्र किसी से न करना."

अनजाने ही पूछ बैठा भूतनाथ, "क्यों?"

छोटी बहू के चेहरे पर कैसी तो फीकी-सी हंसी फूट पड़ी. कहा,

"एक नारी के लिए इससे बड़ी लज्जा, इससे बड़ा अपमान कोई दूसरा नहीं. यह अजीब घर है, अजीब."

एक दिन फिर.

रात खासी हो चुकी थी. भूतनाथ अंदर महल के तिमंजले पर पहुंचा. आगे-आगे राह दिखाता जा रहा था वंशी. उसने अंदर जाकर खबर दी. चिंता ने बाहर निकलकर कहा, "जाइए."

पहले दिन भूतनाथ ने छोटी बहू को जैसा देखा था, वैसी ही थीं. वैसा ही रूप. भूतनाथ बैठ गया. जेब से पैकेट निकालकर बोला, "ले आया हूं. इस्तेमाल करने के तरीके इसमें लिखे हुए हैं."

अपने दफ्तर से पैदल ही लौट रहा था भूतनाथ. अचानक एक वारदात हो गयी. वह संभल पाये, इससे पहले ही एक ईंट भूतनाथ के माथे पर लगी. उनमें से एक को भूतनाथ ने पहचाना—मोहिनी सिंदूर में ही काम करने वाला ठाकुर ही तो था, जिसकी एक बार भूतनाथ से झड़प हो गयी थी और जिसे मोहिनी सिंदूर के मालिक सुविनय बाबू ने निकाल दिया था. उसके बाद कुछ भी याद नहीं भूतनाथ को.

नींद में कैसे रात गुजरी, भूतनाथ को पता नहीं. सुबह सुविनय बाबू की गाड़ी युवक संघ के दरवाजे पर लगी. भूतनाथ को जगा देखा तो पास गये. झुककर पूछा, "तबीयत कैसी है?"

शिवनाथ ने कहा, "इलाज में कोई कमी नहीं रही."

सुविनय बाबू बोले, "लेकिन मेरी बिटिया जवा बेतरह घबरायी हुई है. खुद आ रही थी. मैंने कहा, मैं भूतनाथ को साथ ले आऊंगा."

शिवनाथ ने सहारा देकर भूतनाथ को गाड़ी में बिठाया. सुविनय बाबू के घर तक साथ गया. भूतनाथ इतने में ही थक-सा गया. जवा की मां के कमरे में लिटाया गया उसे. वह सो गया. तंद्रा टूटी सांझ को और उसने देखा, जवा बिस्तर पर उसके पास बैठी है. बहुत करीब. इतनी निकटता का सुयोग पहले कभी न मिला था. जवा के शरीर की गंध मिल रही थी. स्पर्श से रोमांच हो रहा था, उसका उत्ताप मानों और बढ़ गया.

सुविनय बाबू रोज सुबह आकर हाल पूछ जाया करते थे. उस रोज भी आये. बोले, "एक आदमी यह चिट्ठी लेकर आया है. मैं उस आदमी को ऊपर भेजता हूं."

चिट्ठी में लिखा था, 'प्राणोपम भूतनाथ, आज अभी वंशी से तुम्हारा समाचार मिला. अब कैसे हो? बड़ी घबराहट हो रही है. वंशी को भेज रही हूं. संभव हो तो यहां चले आना—छोटी बहू!' छोटी बहू ने उसके लिए एक कमरा ठीक किया हुआ था. वहां जाकर भूतनाथ को पता चला कि ब्रजराखाल ने यहां की नौकरी छोड़ दी है. वह मानो आकाश से गिर पड़ा. उसी के नाते तो भूतनाथ का इस घर से नाता है. वही चला गया तो वह यहां किस हक से रहे.

सांझ को वह छोटी बहू के पास गया. आगे-आगे वंशी, पीछे-पीछे भूतनाथ. छोटी बहू को देख भूतनाथ ठक रह गया. लगा, अभी-अभी वह रो रही थीं. भूतनाथ को देख होंठों में हंसी फूट पड़ी है. छोटी बहू ने बताया, "छोटे बाबू ने वादा किया है कि अब वे जान बाजार न जायेंगे, रात में घर ही रहा करेंगे, बशर्ते कि मैं. . ."

"बशर्ते कि आप? . . ."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अभी इससे ज्यादा मैं कुछ न कहूंगी." छोटी बहू ने खुद को संभाल लिया, "तुम्हें मेरा एक काम कर देना पड़ेगा, आज ही, और किसी को इसकी भनक भी न हो, वंशी को भी नहीं. मुझे शराब ला देनी पड़ेगी."

"शराब." ठगा-सा भूतनाथ बाहर निकला, ऐसी नौबत आयेगी, वह सोच भी नहीं सकता था.

अमावस्या का दिन. जान बाजार से खबर आयी. छोटे बाबू की तबीयत खराब है. वंशी को साथ ले अंधेरे में ही भूतनाथ निकल पड़ा. चुन्नी जान के कोठे पर छोटे बाबू बेहोश पड़े थे.

छोटे बाबू को वे लोग सीधे छोटी बहू के कमरे में ले गये. भूतनाथ बोला, "चुन्नी ने यह दवा दी है."

छोटी बहू ने कहा, "रास्ते में फेंक दो. उसमें जहर हो सकता है." तब से छोटे बाबू छोटी बहू के साथ हैं. यही सोच रहा है भूतनाथ और सोच रहा है कि इतनी रात को शराब कहां मिलेगी?" अचानक वंशी मिल गया और बोला, "इतनी रात को आप छोटी मां के लिए शराब. . ."

जैसे सांप पर नजर पड़ गयी. भूतनाथ पीछे हट गया. बोला, "तूने कैसे जाना?" उसके साथ निर्विकार चलते वंशी ने कहा, "इतने दिनों से काम कर रहा हूं. मैं सब जानता हूं." फिर वंशी ने बताया, "एक रोज छोटे बाबू ने पी नहीं थी. चुन्नी जान के यहां जाने को तैयार थे कि छोटी बहू ने मना किया. छोटे बाबू बोले, "गीत गा सकती हो, नाच सकती हो और चुन्नी जान की तरह शराब पी सकोगी?" छोटी बहू ने कहा, "अगर मेरे यह सब करने से तुम घर पर रहो तो यह भी करूंगी."

सुनकर भूतनाथ लौट पड़ा. पैसे वापस करते हुए बोला, "यह जहर लाकर मैं न दे सकूंगा."

छोटी बहू हंस पड़ीं. धीमी आवाज में बोलीं, "तुम मुझे बहुत प्यार करते हो न भूतनाथ? पराई स्त्री को प्यार करना पाप है, यह भी जानते होगे. खैर, सच ही अगर प्यार करते हो तो शराब ला दो. आज ही ला दोगे तो समझूंगी, भूतनाथ सच ही मुझे प्यार करता है."

और उसी रात भूतनाथ शराब ले आया. एक दिन जिस हाथ से उसने सिंदूर ला कर दिया था, उसी हाथ से शराब लाकर दी.

वंशी को आजकल फुर्सत नहीं है. जब तक छोटे बाबू घर नहीं रहा करते थे, फुर्सत ही फुर्सत थी. आजकल अपने साले साहब भूतनाथ से भी भेंट नहीं कर पाता. और इधर भूतनाथ भी नौकरी के लिए चक्कर काटता फिर रहा था. सुविनय बाबू ने अपना सिंदूर का कारखाना बंद कर दिया था. भूतनाथ का हिसाब कर उसके हाथ में पांच सौ रुपये पकड़ा दिये थे. इस बीच छोटी बहू ने भी भूतनाथ को नहीं बुलाया. अपनी गरज से वह एक बार खुद ही गया. उसके पांव कांप रहे थे.

भूतनाथ बोला, "मैं एक काम से आया था. कुछ रुपये हैं तुम्हारे पास. रख देता. नौकरी चली गयी, उसी के रुपये हैं."

"नौकरी गयी, बला गयी." हंसकर कहा छोटी बहू ने.

"बला गयी, रोटी कैसे चलेगी, रहूंगा कहां. जिंदगी भर तुम थोड़े ही खिलाओगी."

"खिलाऊंगी भई, खिलाऊंगी, मैं जिंदा रह गयी तो तुझे रोटियों के लाले न पड़ेंगे. तूने मुझ पर इतना बड़ा एहसान किया, मुझे पति की सेवा करने का सुयोग मिला, उन्हें बाघ के जबड़े में से निकाल सकी मैं, किसकी बदौलत आखिर?" छोटी बहू ने जम्हाई ली. फिर कुंजी देते हुए बोलीं, "ले, रुपयों को संदूक में रख दे. और उस दराज में से निकालकर बोतल ला दे."

"तो तुम्हें लत लग गयी है?"

"धत्! जब तक छोटे बाबू चाहेंगे, पिऊंगी, फिर छोड़ दूंगी."

उस रात इस वारदात के बाद जब भूतनाथ ने सुना कि छोटे बाबू फिर जान बाजार जा रहे हैं तो वह जैसे आसमान से गिरा. छोटे बाबू से फिर लड़ाई कैसे हो गयी? वंशी से पूछा तो उसने कहानी सुना दी, "सुनिए फिर. उस रोज मैं छोटी मां के पास गया. छोटे बाबू अंदर थे. देखा, झड़प हो रही है. छोटी मां कह रही थीं, तुमने जो कुछ भी कहा, सब कुछ तो किया मैंने. तुम्हारे सिवा मेरा कोई और देवता नहीं. छोटे बाबू ने कहा, "महीनों से घर में रहकर दम घुटने लगा है—दिन भर जी छटपटाता रहता है." छोटी मां बोलीं, "तुम्हारे सिवा मैं जिंदा नहीं रह सकूंगी. तुम्हारे पैरों में पड़ती हूं. दिन को तुम जहां जी चाहे, जाओ, मगर रात को मेरे पास रहा करो." छोटे बाबू ने मना किया तो छोटी मां ने कहा, "तो फिर मेरे लिए भी जान बाजार में ही मकान खरीद दो, मैं भी वहीं रहूंगी." छोटे बाबू बोले, "इस घर की बहू होकर बाहर रहोगी तुम, इससे घर की बदनामी होगी." छोटी मां बोलीं, "तो फिर मुझे बताओ कि मैं क्या करूं?"

"और बहुएं जैसा करती हैं, करो. गहने बनवाओ, गहने तुड़वाओ."

"मंझली और बड़ी दीदी से तुलना की तुमने मेरी. दुनिया में कोई और है ऐसी, जिसने अपने पति की खातिर अपना सर्वस्व यों गंवाया हो? हिंदू घर की बहू होकर शराब और किसने पी है? तुमने किस मुंह से और बहुओं से मेरी तुलना की, उन सबके पास जो था, या है, वह दे सके हो मुझे? तुमने कौन-सी दुनिया दी है, लड़का दिया है?"

बम फटने जैसी चमक होती है, कमरा एकाएक उसी तरह चमक उठा, लेकिन छोटे बाबू जा चुके थे.

वंशी अंधड़ की तरह चला गया. भूतनाथ छोटी बहू के कमरे के सामने जा खड़ा हुआ. कमरे में कदम रखते ही वह अवाक् रह गया. छोटी बहू में इतना रूप. काठ का मारा-सा कुछ देर देखता रह गया भूतनाथ. चिंता उनका शृंगार कर रही थी. छोटी बहू ने पूछा, "वरानगर कहां है भूतनाथ? जानता है?"

"जानता हूं, मगर वहां नहीं जाऊंगा."

"क्यों?"

"इतना भी नहीं समझतीं. तुम बड़े महल की बहू हो, और मैं? मैं न तुम्हारा कोई हूं, न इस घर का ही कोई हूं. मेरे साथ तुम्हारा निकलना ठीक नहीं. इसमें तुम्हारा ही नुकसान होगा छोटी बहू."

"अगर तुझे मेरी इतनी फिक्र रहती है तो मेरे साथ चल."

"अच्छा, एक शर्त पर. वचन दो कि आज पियोगी नहीं."

"दिया वचन."

और दोनों चल पड़े. आगे-आगे छोटी बहू. पीछे-पीछे भूतनाथ. उसने पलटकर देखा—मंझली और बड़ी बहू के अलावा, गिरि, सिंधु, वंशी और चिंता पीछे थे. डर-सा लगने लगा उसे. सबकी नजरों के सामने इस तरह से जाना.

एक साथ एक गाड़ी में बैठकर जाना. भूतनाथ ने देखा, छोटी बहू ने घूंघट हटा लिया. इतने पास बैठी थीं छोटी बहू. भूतनाथ को विचित्र अनुभूति हो रही थी. कोई बातचीत नहीं. आमने सामने चुपचाप बैठे हैं. आखिर मौन भंग किया छोटी बहू ने ही. उसे बताया कि एक साधू के पास जा रही हैं, जिसकी दवा से बच्चा होता है. गाड़ी इस बीच काफी दूर निकल चुकी थी.

छोटी बहू गाड़ी से उतरीं और लंबा घूंघट काढ़कर चिंता के साथ अंदर चली गयीं. पिछले दरवाजे से पार होकर भूतनाथ भी अंदर दाखिल हुआ. लोचन आ रहा था. भूतनाथ को देखते ही रो पड़ा, "छोटे बाबू घायल हो गये हैं. पुलिस आयी है. छोटे बाबू ने खून किया है." कहकर वह दौड़ गया. भूतनाथ ठगा-सा रह गया. फिर मधुसूदन को रोका उसने. उसी से पता चला कि आज छोटे बाबू जान बाजार गये थे. चुन्नी के कमरे में नाटूदत्त बैठा था. दोनों में मारपीट हो गयी. उस मुहल्ले के गुंडे तो नाटूदत्त के साथ हैं. छोटे बाबू अकेले. झगड़े में चुन्नी जान का खून हो गया. खून नाटू ने किया है या छोटे बाबू ने, कौन जाने.

भूतनाथ धीरे-धीरे बीच आंगन में पहुंचा. इतने में बेनी आया और दरोगा से बोला, "मंझले बाबू, आपको ऊपर बुला रहे हैं."

दरोगा के जाते ही सारी घटना पर एक परदा-सा पड़ गया. अब कोई डर न रहा. चाहे दरोगा हो या लाट साहब. ऊपर नाचघर में मंझले बाबू के पास पहुंचे कि सब ठीक. समाधान वहां हो चुका है.

बड़े महल की घड़ियों में चाबी देने के लिए जो शख्स बरसों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम कर रहा था—वह था बद्री बाबू. उम्र के आखिरी पायदान तक पहुंचते पहुंचते झक्की हो चले थे. इन्हीं बद्री बाबू ने एक रोज भूतनाथ से कहा था, "देख लेना, एक दिन इस महल की छत की ये कड़ियां टूट गिरेंगी. घर चकनाचूर हो जायेगा. दाने बिना कबूतर मरेंगे. नौकर-चाकर भाग जायेंगे. फिर यहां की जमीन चौरस की जायेगी. उसी को खोदते-खोदते मजदूरों को एक कब्र मिलेगी और कब्र में. . . "

"कब्र में क्या." पूछा था भूतनाथ ने.

"नहीं बताऊंगा," हंसे थे बद्री बाबू, "वरना तू डर जायेगा. और हां, तेरी भी मुक्ति नहीं. इस खानदान के खून की छूत लगी है तुझे, भोगना ही पड़ेगा तुझे भी. सिर फूटकर खून बहेगा." कहते-कहते बद्री बाबू का चेहरा खौफनाक हो उठा था. तब भूतनाथ को पता नहीं था कि बद्री बाबू की बात का एक-एक अक्षर आखीर तक फलेगा.

चुन्नी जान का खून तो हुआ, लेकिन अस्पताल में उसे बचा लिया गया. छोटे बाबू उस रोज जो पलंग से लगे तो उठ ही नहीं सके. उन्होंने शराब पीनी बिल्कुल छोड़ दी, लेकिन उनके शराब छोड़ने तक देर हो चुकी थी, क्योंकि तब तक छोटी बहू को शराब की लत लग चुकी थी. एक बोतल रोज पी जातीं. भूतनाथ की छाती यह सब देख फटा करती.

एक दिन संदूक खोलने पर भूतनाथ के अचरज की सीमा न रही. एक दिन इस संदूक में दौलत की बहार देखकर उसकी आंखें चौंधिया गयी थीं, लेकिन आज संदूक बिल्कुल खाली था. भूतनाथ ने कहा, "इसमें तो कुछ नहीं है."

"नहीं है?" छोटी बहू ने दुख से पूछा, फिर बोलीं, "खैर जाने दे. तू यह ले जा." और उन्होंने कान से मोती के फूल उतार दिये.

सुविनय बाबू सख्त बीमार पड़े. भूतनाथ और सुपवित्र को कमरे से बाहर जाने का इशारा कर उन्होंने जवा के कान में देर तक कुछ कहा और आंखें मीच लीं.

भूतनाथ को आज भी याद है, जवा कठोर चेहरा लिये बाहर निकली थी और सुपवित्र से बोली थी, "अब तुम हमेशा के लिए घर जाओ सुपवित्र, मेरा तुम्हारा रिश्ता खत्म." फिर वह भूतनाथ की तरफ मुड़कर बोली थी, "भूतनाथ बाबू, आप आइए. बाबूजी नहीं रहे."

सुपवित्र तो भी आया था एक बार. अंतिम संस्कार के समय वह शुरू से आखीर तक एक तरफ खड़ा रहा. सब लोग चले गये तो वह भी चुप अपराधी-सा बढ़ चला. टोका भूतनाथ ने, "रूठकर जवा ने जो कहा, उससे आप भी रूठ जायेंगे तो कैसे चलेगा?"

"मैं रूठा नहीं हूं भूतनाथ बाबू, सच ही मुझे आने की मनाही है."

भूतनाथ ने जवा से पूछा, "तुम्हारे पिताजी की इच्छा थी कि तुम्हारा भार सुपवित्र ले और तुमने उसे ही हटा दिया, क्यों भला?"

जवा बोली, "ऐसा करके मैं खुश नहीं हूं भूतनाथ बाबू. मैं जानती हूं कि वह मुझे कितना अधिक प्यार करता है."

जवा रो पड़ी, "सुनना चाहते हैं आप, पिता ने अलग बुलाकर मुझसे क्या कहा था? उन्होंने कहा था, मुझे क्षमा कर देना बेटी, मैं तुम्हें आज तक नहीं बता पाया कि तुम्हारा विवाह उसी समय हो गया था, जब तुम छह महीने की थीं, लेकिन अब तुम सुपवित्र से विवाह कर लो. उनकी राय सुपवित्र से विवाह करने में थी, लेकिन मेरी नहीं है. एक स्वामी के रहते स्त्री की दुबारा शादी नहीं होनी चाहिए."

"हां, याद है लेकिन तुम्हारे पति जीवित हैं? अगर हां, तो कहां है?"

"मालूम नहीं," जवा ने कहा, "लेकिन पिताजी यह पता छोड़ गये हैं उनका." कहकर जवा ने संदूक में से एक पुराना फटा-सा कागज लाकर दिया, "लेकिन उनकी मौत हो चुकी हो तो?" भूतनाथ ने पूछा.

"ऐसी स्थिति में हिंदू धर्म में ब्याह का विधान है, लेकिन कुलीन से नहीं, मौलिक से. भूतनाथ ने कहा, जो भी हो, मैं उनकी खोज करके छोड़ूंगा." जवा की आंखें सजल हो उठीं. धीरे से बोली, "अगर ऐसा हुआ तो आपका उपकार जीवन में चुक नहीं सकेगा."

भूतनाथ ने कागज देखा, पढ़ा. दूल्हे का नाम था अतुल चक्रवर्ती, बाप का नाम सतीशचंद्र चक्रवर्ती, मुकाम फतेहपुर, पोस्ट गाजना, जिला नदिया, स्वभाव कुलीन. भूतनाथ हिम हो उठा. यह किसके नाम पढ़ रहा है वह. उसी का नाम,बचपन का—अतुल—पिता का भी वही नाम. घर भी वही. वह खुद जवा का पति! हैरान होने की भी ताकत जाती रही भूतनाथ की. कौन कहे कि यह संवाद है या दुसंवाद. वहां से चला आया, यह कहकर कि वह शीघ्र ही इस पते पर जाकर खबर लायेगा. भूतनाथ की आंखें सजल हो आयीं. उसने एक चिट्ठी लिखी, जवा के नाम और लौट पड़ा.

बद्री बाबू का कहा सच होकर रहा. बड़ा महल उजड़ गया. नौकर-चाकर भाग गये. मंझले बाबू और नन्हें बाबू ने महल छोड़कर अपनी अपनी-अपनी ससुराल में पनाह ली. सिर्फ छोटे बाबू रह गये और छोटी बहू? उनकी जिद पर भूतनाथ एक बार फिर छोटे बाबू की सेहत की मन्नत मांगने उनके साथ वरानगर गया. मंझले बाबू को इसकी भी खबर लग गयी और रास्ते में गाड़ी पर हमला हुआ. भूतनाथ घायल हो अस्पताल में दाखिल हुआ. छोटी बहू का पता नहीं चला कि वह कहां गायब हो गयीं. कई बरस बाद भूतनाथ ओवरसियर बना अपनी कंपनी में. उसी की कंपनी को बड़ा महल चौरस करने का ठेका मिला. इस बीच छोटे

"फागुन, साहब, बीवी और गुलाम, तीसरी कसम और गाइड जैसी साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों में काम करना मुझे बहुत अच्छा लगता रहा है. वह मेरे अभिनय जीवन का सबसे बड़ा अनुभव है."

—वहीदा रहमान

बाबू भी गुजर गये, महल नीलाम हो गया तो महल की खुदाई करते वक्त एक कब्र निकली. कब्र खुदी तो एक कंकाल निकला. कंकाल की कमर में जो करधनी थी, उसे भूतनाथ ने पहचाना. वह छोटी बहू अपनी कमर में पहना करती थीं और अंत समय में उनके पास मात्र वही गहना शेष रह गया था. भूतनाथ काठ हो गया.

भूतनाथ की कहानी खत्म हो गयी. जो कहानी मैंने, इस उपन्यास के लेखक ने—लिखी, उसके बहुत बाद मेरा जन्म हुआ. मैंने जाना सिर्फ बूढ़े भूतनाथ बाबू को, जो नौकरी से रिटायर होकर एक छोटे से कमरे में रहा करते थे. पता नहीं क्यों, वह मुझे चाहते थे. उन्होंने मुझसे कहा था, मेरी कहानी क्या किसी को अच्छी लगेगी? और मैंने कहानी लिख डाली. मैंने उनसे एक बार पूछा था—जवा के नाम जो चिट्ठी आप छोड़ आये थे, उसमें क्या लिखा था, यह तो बताया नहीं.

भूतनाथ बाबू बोले, "जीवन में उसी एक बार झूठ की शरण ली. बार-बार सोचा, लेकिन उसके अलावा कोई चारा समझ नहीं आया. मैंने लिखा था—हर प्रकार से छानबीन के बाद पता चला कि अतुल चक्रवर्ती मर चुका है. उसके वंश में और कोई कहीं नहीं. अब तुम सुपवित्र से ब्याह करने में आपत्ति न करना.

मैंने पूछा, "उसके बाद जवा से मुलाकात नहीं हुई."

"क्यों नहीं हुई. विवाह तो उसका मैंने ही कराया."

"फिर आपने की शादी?"

"मैं कैसे करता, मेरी तो शादी बचपन में ही हो चुकी थी." □

संक्षिप्त रूपांतर : धीरेंद्र अस्थाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सिनेमा लोगों तक नहीं पहुंच पाता वह हमारे किस काम का ?

— सागर सरहदी

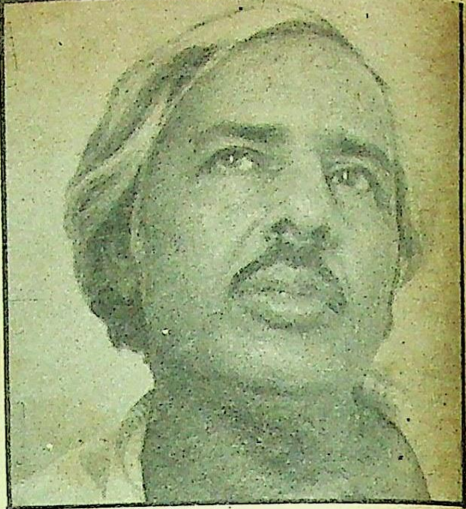

हमारे क्लासिक्स जितने बड़े हैं, हम उतने ही बौने क्यों हैं? और क्या कारण है कि हमारे फिल्मकारों के पास सही ढंग से सोचने-समझने का माद्दा ही नहीं है?—सागर सरहदी के विचारोत्तेजक विचार कि हमारा साहित्यिक-सिनेमा क्यों पिछड़ा हुआ है और क्यों भारत में बेहतर फिल्में नहीं बन पातीं? . . .

हिंदी सिनेमा में तीन बड़ी पर्सनैलिटीज हुई हैं—विमल राय, महबूब साहब और गुरुदत्त. उन्होंने अपनी बहुत बड़ी शख्सियत लेकर, सूझ-बूझ लेकर, कलात्मक बैकग्राउंड के साथ भरपूर तरीके से इस मुल्क में एक अच्छा सिनेमा शुरू किया जिसे हम 'भारतीय सिनेमा' कह सकते हैं, लेकिन उनके बाद जो पीढ़ी आयी है, जिस स्टेज पर भी आयी है, वह अपनी पूरी ऊंचाई तक बढ़ नहीं पायी. इसीलिए हमारे सिनेमा पर उसका अपना प्रभाव नहीं पड़ा. खासतौर पर दूसरी पीढ़ी और उसके बाद के कुछ लोग अपने पूर्ववर्तियों की ही बातें रिपीट करते नजर आने लगे. उनकी अपनी कोई शख्सियत नहीं बन पायी. वे उन्हीं तीनों की परछाई लगते हैं. रियलिज्म के नाम पर उन्होंने ज्यादातर बाहर से उधार लिया है, उनका ओरिजनल कुछ भी नहीं. उनमें हल्का-फुल्का साहित्य, थोड़ा-बहुत सोचा-समझा नजरिया और थोड़ा-बहुत क्लास भी मिलता है, लेकिन वे इस थोड़े-बहुत से आगे नहीं बढ़ पाये. चोरी की थीम, चोरी के प्लाट्स और चोरी के ही दृश्यों के सहारे आगे बढ़ा भी नहीं जा सकता. अल्टीमेटली इस सिनेमा का कोई प्रभाव नजर नहीं आता. एक आम मिडिल क्लास का आदमी जरूर इसको कहता रहा है कि यह अच्छा सिनेमा है.

इस तथाकथित अच्छे, सार्थक, समानांतर या ऐक्सपैरीमेंटल सिनेमा को गहराई से जांचें-परखें और विश्लेषित करें तो लगेगा कि यह टोटली वेजीटेरियन सिनेमा है. इसमें कहीं भी कोई रीढ़ की हड्डी नजर नहीं आती. नजर चारों और घूम-फिरकर उन्हीं तीन बड़ी पर्सनैलिटीज पर लौट जाती है.

पूरे भारतीय सिनेमा में एक नाम और है जिसे बड़ी पर्सनैलिटी कहा जा सकता है, वह है—सत्यजीत राय का नाम. वे ओरिजनल फिल्म-मेकर हैं. क्लासिक्स फिल्म-मेकर हैं. एपिकल फिल्म-मेकर हैं. लेकिन जब उनके बारे में भी एनालाईज किया जाता है तो लगता है कि उन्होंने भी अपने मुल्क के बारे में तस्वीरकशी की है. . .जो सिनेमा दिया है, जो फार्म दी है, वह वैस्टर्न माइंडिड है. अधिकांशत: उनके सामने विदेशी दर्शक रहे हैं. हमारे मुल्क को विदेशी दर्शकों ने जिस रूप में देखना चाहा है उसी रूप में उन्होंने दिखाया है. उन्होंने हमारे देश की रूह को नहीं उभारा. वे चाहते तो उस रूह को उभार सकते थे. मैं उनकी इज्जत करता हूं और उनकी सामर्थ्य को समझता हूं. हमारे मुल्क की नौजवान रूह बेचैन है, बेकार है, एक्सप्लॉयटेड है. वह कुछ करने और कुछ कर पाने की डावांडोल स्थिति में भटक रही है. यह सब उनकी टोटल फिल्मों में कहीं नजर नहीं आता. हमारे मुल्क की प्राब्लम्स, हमारे मुल्क की रोजमर्रा-जिंदगी के तकाजे अच्छी फिल्मों से नदारद नहीं हो सकते, लेकिन हो रहे हैं.

मैं सो-कॉल्ड एक्सपैरिमैंटेल फिल्म-मेकर्स को. . .जैसे मणि कौल, कुमार शहानी आदि को कोई अहमियत नहीं देता. वे भले ही अपने-आपको जीनियस करार दे सके हों, या दे रहे हों, मुझे उनमें कोई दिलचस्पी नहीं. मुझे किसी ऐसे फिल्म-मेकर में दिलचस्पी नहीं जो आज के मौजूदा तकाजों को भरपूर तरीके से नहीं समझता, जो हमारी अपनी सैंसिब्लिटी को महसूस न कर सके. अपनी नयी इडियम न ईजाद कर सके और उसे लोगों तक न पहुंचा सके, उन्हें डिस्कस करना भी मुझे पसंद नहीं, जो सिनेमा लोगों तक नहीं पहुंच पाता वह हमारे किस काम का?

श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी और सईद मिर्जा जैसे लोग आज कुछ बड़े और अच्छे काम कर रहे हैं, लेकिन वह भी खास लोगों से आगे नहीं बढ़ पा रहे क्योंकि इन लोगों ने स्वांत: सुखाय फिल्में नहीं बनायीं. इसलिए इनसे आशाएं की जा सकती हैं. यह बात मैं कभी नहीं स्वीकार कर पाया कि अच्छी फिल्में आम आदमी तक नहीं पहुंच सकतीं. अच्छे सिनेमा के आम आदमी तक न पहुंच पाने की बात कहना बहुत ही तकलीफदेह और गैरजिम्मेदाराना हरकत है.

'अर्ध सत्य' एक साफ-सुथरी और अच्छी फिल्म है, लेकिन उसके बारे में मेरे एक

'लोरी' (लेखक-निर्देशक : सागर सरहदी) के एक दृश्य में–रोहणी, नसीर, शबाना

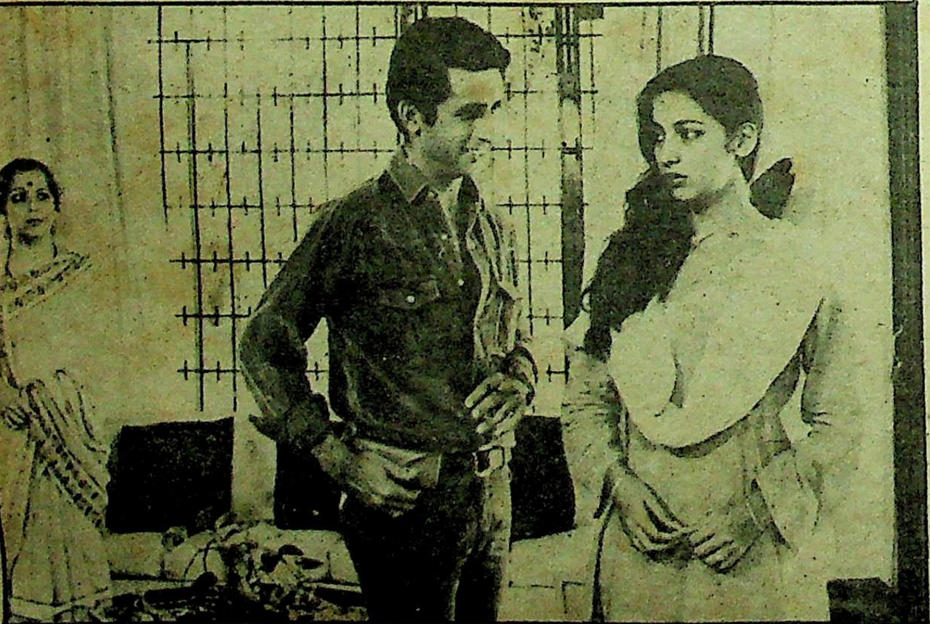

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रकार मित्र ने मुझे बताया है कि वह इतालवी उपन्यास पर आधारित है. अगर यह बात सही है तो मुझे बहुत तकलीफ होगी.

हमारे यहां के अधिकांश लोग मेहनत करने से घबराते हैं. हम न अच्छी राइटिंग कर पाते हैं न किसी प्लाट को अच्छे ढंग से वर्क-आउट कर पाते हैं. यहां तक कि अच्छे और भारतीय म्यूजिक को कंपोज करने में भी हमें परहेज होने लगा है. दरअसल हम फार्मूलेबाजी के आदी हो गये हैं. इसलिए मेहनत करने से कतराते हैं. कच्चे-अधकचरे आइडिया लेकर अच्छी-बुरी, जैसी भी फिल्में बन पाती हैं, बनाकर दर्शक के आगे फेंक देते हैं. इससे न डायरेक्टर की कोई पर्सनैलिटी बनती है, न स्क्रीन-प्ले लेखक की और न ही कथा लेखक की. इनमें कहीं किसी का कोई ओरिजनल कंट्रीब्यूशन नजर नहीं आता.

जब तक हम फिल्म मीडिया को अपनी मिट्टी के रंग में नहीं रंगेंगे, उसमें अपना ह्यूमर, अपने इडियम, अपनी प्राब्लम, अपने कैरेक्टर्स नहीं रचायेंगे-बसायेंगे, तब तक हम नये सिनेमा के साथ न्याय नहीं कर पायेंगे. अक्सर हम लोग अपने नजदीक की और इमीडियेट प्रॉब्लम लेकर फिल्म बना डालते हैं, लेकिन उसे अपने जिस्म का, अपनी पर्सनैलिटी का, अपनी रूह का हिस्सा नहीं बना पाते. और जब फिल्म पिट जाती है तो दर्शक की समझ पर प्रश्नचिह्न लगाते घूमते हैं. दरअसल, ये प्रश्नचिह्न हमारी अपनी पसंद पर लगने चाहिए.

हम अपने सिनेमा के साथ फ्रांस के न्यूवेव सिनेमा की बात उठाने लगते हैं. अपनी फिल्मों और अपनी सिनेमेटिक आइडियोलॉजी को फ्रांस के न्यूवेव आंदोलन के साथ तौलने लगते हैं. हम भूल जाते हैं कि फ्रांस का अपना बैकग्राउंड है, लोग पढ़े-लिखे हैं. उनका अपना स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग है. उनके पास काफी फुरसत है, जबकि हमारे पास इसमें से कुछ भी नहीं. हम चाहे अपने मिडिल क्लास को लें, चाहे मजदूर वर्ग को लें या किसान वर्ग को—उनके पास फुरसत नहीं. उनकी चिंताएं दो जून की रोटी जुटाने की हैं. उनसे हम अच्छी, सुलझी हुई और कला फिल्म को देखने की उम्मीद नहीं कर सकते. हमें अपने टोटल सिस्टम को, अपनी बात कहने के ढंग को, अपनी फार्म को और अपनी सेंसिबलिटी को बदलना होगा. हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना होगा कि हम हिंदुस्तान के बाशिंदे हैं, वेस्ट के नहीं. हमें दूसरों की तरफ देखना छोड़कर अपनी तरफ देखना चाहिए. तभी हम अपने लोगों तक पहुंच सकेंगे.

इटली के एक मशहूर फिल्म-मेकर ने एक बार बहुत खूबसूरत बात कही थी—'हम गुरबत के नाम से चिढ़ते हैं, गरीबी-गरीबी, सुनकर बोर हो जाते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि जब गरीबी है तो उससे डरना कैसा. उसका डटकर सामना किया जाना चाहिए. आप मुझे एक पूरा प्लाट दीजिए, जिसमें एक औरत जूते खरीदना चाहती है और दूकान पर जाती है, जूते देखती है, पसंद करती है लेकिन खरीद नहीं पाती. मैं आपको बताऊंगा कि इस पर कितनी दिलचस्प, कितनी दर्दनाक, कितनी पुरअसर फिल्म बन सकती है. एक औरत कितनी हसरत के साथ जूते खरीदना चाहती है, उसका सपना कैसे जूते पहनने का है, कितनी ख्वाहिश है उसकी वैसे जूते पहनने की. लेकिन जब वह अपना पर्स देखती है तो बुझ जाती है. उसी समय उसके सामने घर की दूसरी परेशानियां खड़ी हो जाती हैं, दूसरे तकाजे घेर लेते हैं और वह मायूस दिल लेकर लौट आती है... क्या यह एक अच्छी फिल्म का प्लाट नहीं हो सकता. सही बात तो यह है कि हमारे फिल्मकारों में किसी भी बात को अच्छे ढंग से सोचने, समझने और विज्युलाइज करने का माद्दा नहीं है.

सत्यजीत राय: किस दर्शक के लिए...?

मेरी नजर में सत्यजीत राय आज के सबसे बड़े और महान फिल्मकार हैं. उन पर यह आरोप लगाना कि वे अपने देश की समस्याएं नहीं छूते, उनके सामने हमेशा विदेशी दर्शक होता है, उनके साथ नाइंसाफी है, बल्कि मैं तो इसे एक अपराध भी कह सकता हूं. सत्यजीत राय ने अपनी फिल्मों के लिए कोई भी विदेशी थीम नहीं उठायी. विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय और टैगोर ने यदि सिर्फ विदेशी पाठकों को ध्यान में रखकर अपना साहित्य रचा है तो विदेशी दर्शकों की बात सत्यजीत राय के लिए कही जा सकती है, लेकिन जब हम इतने बड़े साहित्यकारों पर ऐसे आरोप नहीं लगा सकते तो फिल्मकार के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं? जो लोग ऐसा कहते हैं, वे न तो बंगला साहित्य को जानते हैं, न सत्यजीत राय को. भारत को एक गरीब और नंगे-भूखे देश के रूप में सत्यजीत राय ने विदेशियों के सामने नहीं रखा, बल्कि मृणाल सेन और दूसरे तथाकथित वामपंथी फिल्मकारों ने रखा है. □

—गुलजार

सारिका
16 मार्च, 1985
उर्दू के महान साहित्यकार
राजेंद्रसिंह बेदी की स्मृति में
राजेंद्रसिंह बेदी विशेषांक
(अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लें)

हमारे पास अच्छे फिल्म क्रिटिक भी नहीं हैं. हमारे पास जो खूबसूरत फिल्म जर्नलिस्ट कही जानेवाली लड़कियां हैं, उन्हें देखकर लगता है कि वे हिंदुस्तान में पैदा ही नहीं हुई हैं, सीधे पेरिस से आयी हैं. उनके पास अपने मुल्क की कोई जबान ही नहीं. वे न अच्छी तरह हिंदी जानती है, न उर्दू, न तमिल, न तेलुगू, न कन्नड़, न बंगला आदि... वे सिर्फ अंग्रेजी जानती हैं या फ्रेंच. उनके पास अपनी ही मिट्टी की गंध नहीं, विदेशों के सेंट्स हैं. वे भला हमारी फिल्मों को क्या जज कर सकती हैं. वे कला फिल्म के नाम पर इस या उस फिल्म को उछाल तो देती हैं, लेकिन आखिर उस फिल्म का हश्र क्या होता है. वे फिल्में या तो डिब्बे से बाहर आती ही नहीं, यदि आती भी हैं तो फिर जल्दी से उसी डिब्बे में लौट आती हैं.

अगर हमें अच्छी क्लासिक्स फिल्में बनानी हैं तो अच्छे क्लासिक लिटरेचर की ओर देखना पड़ेगा. हम क्लासिक के मामले में गरीब नहीं हैं. गरीब हम अक्ल के मामले में हैं. हमारे पास पंद्रह भाषाएं हैं और हर भाषा में अपना-अपना बेहतरीन क्लासिकल साहित्य है, लेकिन हमारे क्लासिक्स जितने बड़े हैं, हम उतने ही बौने हैं. हमें अपने मानसिक कद को ओरिजनल राइटर के बराबर तक उठाना होगा, तभी सही माने में हम अच्छी और क्लासिक्स फिल्में दे पायेंगे. मुझे खुशी इस बात की है कि कुछ समझदार किस्म के फिल्म-मेकर, अभिनेता-अभिनेत्रियां आज हमारे सिनेमा के साथ जुड़ने लगे हैं. आज निश्चय ही कुछ अभिनेता ऐसे हैं, जिनमें सूझ-बूझ है, जो अपने ड्रामे के फन से वाकिफ हैं. कई ड्रामों में परफॉरमेंस करके आये हैं. कुछ अच्छे ड्रामे और नावल्स पढ़ते आये हैं. जाहिर है, जब ये काम करेंगे, उनके काम में उनकी पर्सनैलिटी भी इनवॉल्व होगी. एक्टिंग कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसका जिंदगी से ताल्लुक न हो. जो जिंदगी से कटा है, वह कभी अच्छी एक्टिंग नहीं कर सकता. यह बात डायरेक्टर के बारे में भी कही जा सकती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समसामयिक सिनेमा : दशा और दिशा

□ कुंवर नारायण

कला और राजनीति का परस्पर क्या संबंध है? कला में राजनीति का मतलब क्या होता है और राजनीति फिल्म के परदे पर कौन-सा कलात्मक रूप धारण कर सकती है?—दसवें अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह के दौरान प्रदर्शित देश-विदेश की फिल्मी बानगी के आधार पर लिखा गया एक तुलनात्मक और विवेचनात्मक आलेख कि सिनेमा वास्तव में क्या कुछ कर रहा है और उसे क्या कुछ करना चाहिए...

स्वान इन लव (फ्रांस) : कैमरे की अपनी कविता भी होती है

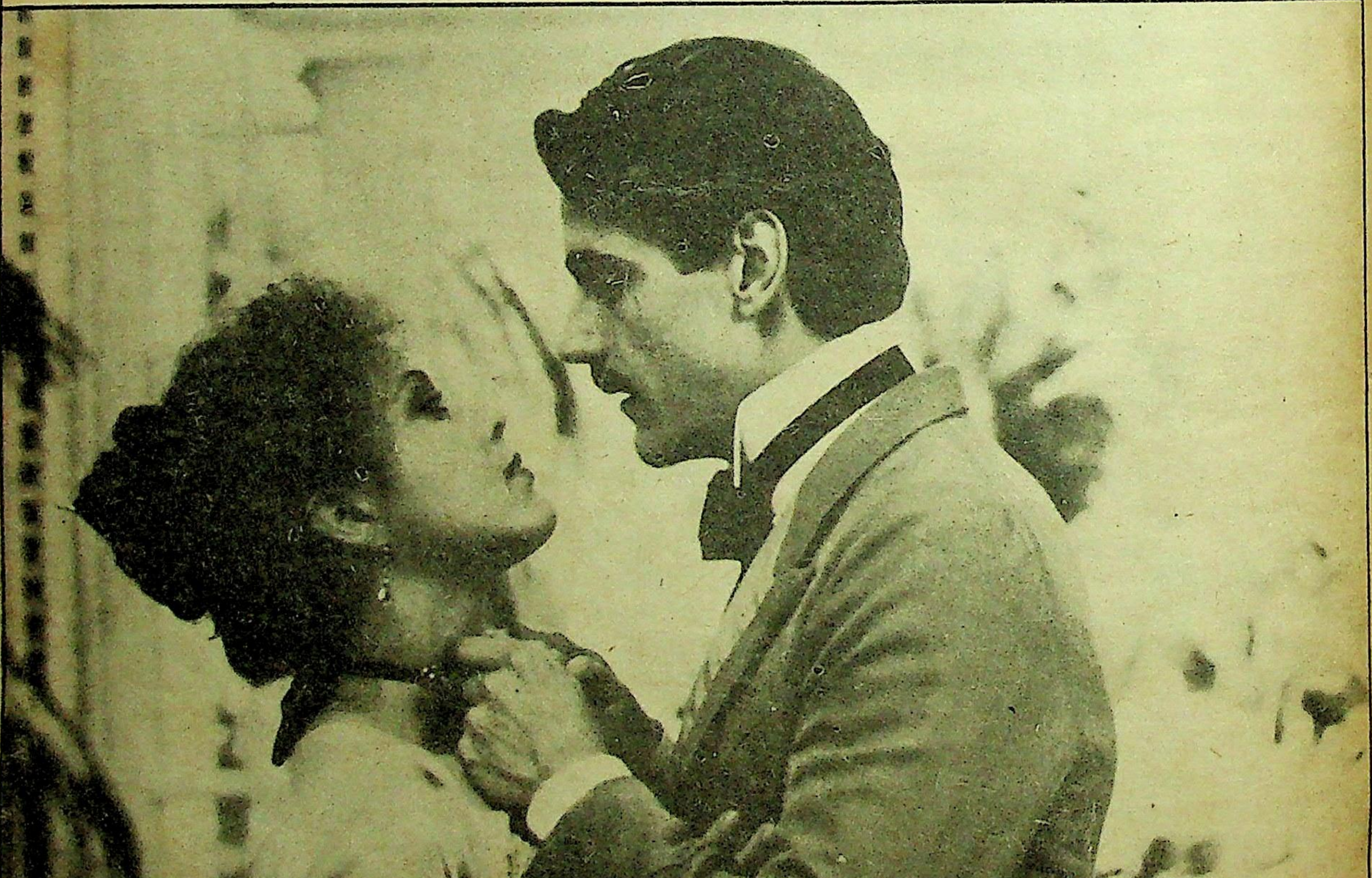

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में तीन से 17 जनवरी, 1985 तक आयोजित दसवें अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव की कुछ ऐसी फिल्मों पर थोड़ा विस्तार से विचार-विमर्श करना कई मानों में सार्थक हो सकता है जो पुराने 'क्लासिक्स' पर बनी हैं या, पश्चिम जर्मनी के विख्यात फिल्मकार हर्जोग की फिल्म **'व्हेअर द ग्रीन एंटस ड्रीम'**, गौतम घोष की हिंदी फिल्म **'पार'** और गोविंद निहलानी की **'पार्टी'** जिनमें सभ्यता या समाज के तथाकथित पिछड़े वर्ग कथानकों का मूल विषय है.

जर्मन फिल्मकार श्लोएंडार्फ की नयी फिल्म **'स्वान इन लव'** फ्रांस में बनी है. गोमोंत प्रोडक्शंस की कोशिशों से इधर अनेक विदेशी फिल्मकारों को फ्रांस में फिल्में बनाने का अच्छा-खासा मौका मिला है जिनमें कुछ समय पहले इल्माज गुने, कुरोसावा, ओसिमा भी फिल्में बना चुके हैं, तथा इसी कड़ी में इस बार इतालवी फिल्मकार फ्रांसेस्को रोसी की 'कार्मेन' फिल्म भी एक बड़ा आकर्षण थी जो इस बार देखने को मिली.

श्लोएंडार्फ की 'स्वान इन लव' मार्सेल प्रूस्त के प्रसिद्ध उपन्यास 'ए ला रेशार्स द्यू ताम्स पर्द्यू' (अतीत की यादें) नामक वृहत उपन्यास के एक अंश का फिल्मीकरण है. साहित्य को पूरी समझ और संवेदना से ग्रहण करने और उसे फिल्मी भाषा देने में श्लोएंडार्फ की प्रतिभा अद्भुत है. इसके पहले भी उपन्यासों पर आधारित वे अनेक उत्कृष्ट फिल्म बना चुके हैं जिनमें गुंटर ग्रास की 'टिन ड्रम' पर बनी उनकी फिल्म की अपनी एक अलग जगह है. यह फिल्म पिछले फिल्मोत्सव में बंबई में दिखायी गयी थी और उसी मौके पर श्लोएंडार्फ ने एक प्रेस-इंटरव्यू के दौरान जब यह बताया कि वे प्रूस्त के उपन्यास के एक खंड पर फ्रांस में फिल्म बना रहे हैं तो काफी उत्सुकता बन गयी थी. इस उत्सव में 'स्वान इन लव' को देखना एक तरह से उस आशा की पूर्ति थी जिसे श्लोएंडार्फ के वक्तव्य ने जगाया था.

प्रूस्त के उपन्यास का पूरा ढांचा अनेक स्मृति खंडों में संयोजित है. जिस अतीत का जीता-जागता चित्र लेखक अपने उपन्यास में खड़ा करता है उसे शब्दों के बजाय बिंबों से रच पाना एक ऐसी चुनौती थी जिसे श्लोएंडार्फ ने बखूबी निभाया है. एक खास बात की ओर ध्यान खींचना चाहूंगा. 'फ्लैश-बैक' फिल्मों की जानी-मानी टेकनीक है किंतु श्लोएंडार्फ की फिल्म 'फ्लैश बैक' को साधन न बनाकर उस यथार्थ के विवरण को प्रमुख रखती है जिसे अगर फिल्मी भाषा में कहें तो—प्रूस्त ने स्वयं अपने उपन्यास में 'फ्लैशबैक' की पद्धति से प्रस्तुत किया है. उसकी जगह श्लोएडार्फ ने प्रूस्त के स्मृति-काल का फिल्म में प्रत्यक्षीकरण किया है. यह मूर्तन 'स्वान इन लव' की एक उल्लेखनीय खूबी है. स्मृति-काल का शब्दों से बिंबों में पुनः अनुवाद करते हुए श्लोएंडार्फ ने प्रूस्त के उपन्यास को एक नयी व्याख्या दी है तथा प्रूस्त कालीन समाज की जिस तस्वीर को उन्होंने फिल्मी हाड़-मांस दिया है, वह हमें न केवल प्रूस्त की मानसिकता बल्कि उसके सामाजिक संबंधों के बहुत नजदीक ले जाता है. उस समय की प्रचलित वेश्यावृत्ति तथा एक वेश्या के लिए अत्यंत संवेदनशील स्वान के गहरे और साथ ही साथ न समझ में आनेवाले संतप्त प्रेम को आधार बनाकर प्रूस्त की ही तरह श्लोएंडार्फ ने भी फिल्म की भाषा द्वारा मन की उलझी गहराइयों में प्रवेश करने की कोशिश की है.

> "'आक्रोश', 'सद्गति' या 'पार' जैसी फिल्में जिस यथार्थ का चित्रण करती हैं, उसका हल कम से कम हमारे लिए अतीत में नहीं, भविष्य में है और भविष्य को हमारी फिल्में ज्यादातर समस्यामूलक नहीं मानतीं."

इस सबंध में कथा साहित्य, यानी शाब्दिक कलाओं और फिल्म कला के बीच एक दिलचस्प सवाल की ओर भी ध्यान जाता है. एक प्रूस्त या जायस जिस अंतर्द्वंद और लंबे यथार्थ काल को अपने उपन्यासों में शब्दों द्वारा कुछ सौ पृष्ठों में घनीभूत करते हैं, फिल्म कला उसे दो-तीन घंटों में बिंबों, शब्दों और ध्वनियों के संयोजन द्वारा जब प्रस्तुत करती है तो वह दरअसल उपन्यास की सीमा को किन मानों में विस्तृत और किन मानों में सीमित कर रही होती है? शब्दों की मूल शक्ति सांकेतिक और उद्बोधनात्मक होती है जो हमारी कल्पना पर ज्यादा से ज्यादा दबाव डालती है. साहित्य उस शब्द-शक्ति और कल्पना-शक्ति पर अधिक से अधिक निर्भर है जिसे एक प्रूस्त की कला पूरी तरह खंगालती है, कविता की तरह, और कविता की ही तरह प्रूस्त का उपन्यास जगह-जगह हमें भावनाओं, विचारों और निरीक्षणों की गहनतम तहों में ले जाता है. वह कविता और विश्लेषण जो शब्दों द्वारा संभव है कैमरा की मूलतः विवरण क्षमता की पकड़ से बाहर रह जाता लगता है. ऐसा नहीं कि कैमरा की अपनी कविता नहीं होती, या श्लोएंडार्फ के 'स्वान इन लव' में भी अपनी कविता नहीं है, लेकिन तुलना में जरूर ऐसा लगता है कि श्लोएंडार्फ के 'स्वान इन लव' में ऐसा जरूरी कुछ जरूर छूट जाता जिसे प्रूस्त अपने 'एला रेशार्स द्यू ताम्स पर्द्यू,' में इतनी सक्षमता से पकड़ सके हैं जैसे 'स्वान इन लव' के अंतिम दृश्यों में स्वान की जिस उदासी की झलक मिलती है उसका बहुत ही झीना धुंधलका प्रूस्त की, 'यादों' पर बराबर छाया रहता है—उस वातावरण के पारदर्शी रंग के मुकाबले में फिल्मी रंग भारी और गाढ़ा लगता है.

एक दूसरी फिल्म 'उत्सव' का उल्लेख भी यहां प्रासंगिक होगा. प्रूस्त कालीन उपन्यास की पृष्ठभूमि अगर उन्नीसवीं सदी का फ्रांस है तो 'उत्सव' की पृष्ठभूमि प्राचीन भारत है. शूद्रक के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' पर आधारित फिल्म 'उत्सव' सामान्यतः बननेवाली हिंदी फिल्मों से अलग तरह की कोशिश है. गिरीश करनाड का यह पहला प्रयास नहीं है जिसमें उन्होंने प्राचीन भारत के रंग-रंग ऐश्वर्य और वैभव को फिल्मी जबान देने की कोशिश की है. प्राचीन या मध्ययुगीन भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि पर यों तो अनेक फिल्में बन चुकी हैं, किंतु साहित्यिक और ऐतिहासिक समझ के मामले में गिरीश करनाड की फिल्मों का एक अलग व्यक्तित्व बनता है. कुरोसावा के जापानी इतिहास और युद्ध कला की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्मों ने दुनिया भर के फिल्मकारों को एक नया मुहावरा दिया है जिससे गिरीश करनाड ने, लगता है, काफी कुछ सीखा है—सही अर्थ में.

शूद्रक का 'मृच्छकटिक' इतिहास से अधिक एक वातावरण है और कथानक से अधिक एक समाज का दर्पण है. 'उत्सव' फिल्म में चरित्र अक्सर फेलिनी की याद दिलाते हैं. नाटक के रूप में 'मृच्छकटिक' की अनेक प्रस्तुतियां हुई हैं और किसी भी रूप में वह अत्यंत लोकप्रिय सिद्ध हुआ है. अधिकांश संस्कृत नाटकों की राजसी पृष्ठभूमि से हटकर लोक-जीवन के मनोरंजक और ऐय्याश पक्ष को प्रहसन और चुहल का निशाना बनाकर चलनेवाले नाटकों में 'मृच्छकटिक' बेजोड़ है. चरित्र-चित्रण और वातावरण को 'उत्सव' फिल्म में 'मृच्छकटिक' के अनुरूप ही काफी हद तक ठीक पकड़ा गया है. लेकिन 'मृच्छकटिक' की अनेक गंभीर संभावनाओं को लगभग अगर विकृत नहीं तो नजरंदाज तो कर ही दिया है. मसलन राजा के साले शकार के मूर्ख और लंपट चरित्र के माध्यम से जिस राजनीतिक छींटाकशी को हबीब तनवीर ने अपनी नाट्य प्रस्तुतियों में इतनी कुशलता से उभारा है, शशि कपूर की भूमिका उसकी तुलना में लगभग एक सपाट खलनायक की दो-आयामी तस्वीर होकर रह गयी है. 'उत्सव' में अनेक राजनीतिक प्रसंग हैं लेकिन शकार का चरित्र उनसे बिल्कुल अछूता रहता है. मूल 'मृच्छकटिक' में शकार की भाषा और बोलने के लहजे को लेकर मजेदार व्यंग्य है-उसके उच्चारण में 'स' की जगह 'श' के बाहुल्य से पैदा की हुई उल्टी-पुल्टी शकारी-भाषा का एक दिलचस्प उदाहरण इस प्रकार है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतम घोष की फिल्म 'पार' के एक दृश्य में नसीरुद्दीन और शबाना

"झाणज्झणंत बहुभूशणशद्दमिश्शं किं दोवदी विअ पला अशि लामभीदा.

एशे हलामि सह शक्ति जघा हणूमे विश्शावशुश्श बहिणि विअ तं शुभद्दम्." अर्थात "(अरी ! अपने गहनों को झनझनाती हुई, राम से डरी हुई द्रौपदी की तरह क्यों भाग रही हो? मैं तुम्हें उसी भांति ले भागता हूं, जिस प्रकार हनुमान विश्वावसु की भगिनी सुभद्रा को ले भागे थे!")

इस तरह शूद्रक ने शकार के माध्यम से न केवल भाषायी व्यंग्य बल्कि दंभी शकार के उल्टे-पुल्टे साहित्य-ज्ञान प्रदर्शन को भी आड़े हाथों लिया है. फिल्म में शकार के इन दोनों पक्षों का अत्यंत मनोरंजक एवं सारगर्भित इस्तेमाल हो सकता था लेकिन शशि कपूर को रावण की तरह बनाकर इस संभावना को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया है. ऐसा लगता है, निर्देशक की दृष्टि शकार की राजनीतिक संभावनाओं पर उतनी नहीं थी. (जिसके कारण शशि कपूर की भूमिका बिल्कुल जाया हो गयी) जितनी कि रेखा के व्यक्तित्व से आक्रांत थी, जिसके कारण वसंतसेना केंद्र में रही.

शूद्रक का 'मृच्छकटिक' भास के जिस 'दरिद्र चारुदत्त' का विस्तार माना जाता है, उस चारुदत्त का चरित्र भी रेखा के सामने दबा-दबा-सा ही रहता है.

'उत्सव' में 'कामसूत्र' के रचयिता ऋषि वात्स्यायन को बसंतसेना की हवेली में संभोग आसनों का अध्ययन और वर्गीकरण करते दिखाया गया है. निस्संदेह यह प्रक्षेप कामशास्त्र के साथ जुड़े वात्स्यायन के नाम की लोकप्रियता के कारण ही 'मृच्छकटिक' नाटक में किया गया है यद्यपि वात्स्यायन की जो भी तस्वीर हमारे मन में बनती है उसे अमजद खां का अभिनय और 'मृच्छकटिक' का संदर्भ दोनों ही अस्वीकार करते हैं. प्रसंगवश, शूद्रक के ही एक अन्य भांण (प्रहसन नाटक) 'पद्म प्राभृतकम्' का उल्लेख करना चाहूंगा. शूद्रक के 'मृच्छकटिक' और 'पद्म प्राभृतकम्' में कई समानताएं हैं—खासकर वातावरण और चरित्रों को लेकर. 'पद्म प्राभृतकम्' में विट वेश्या के घर में गये बौद्ध भिक्षु संघिलक पर व्यंग्य करता है कि उसका वहां पाया जाना उसी तरह है जैसे 'दत्तक-सूत्र' में ओंकार का! दत्तक का समय ठीक-ठीक निश्चित नहीं, पर 'काम-सूत्र' में वात्स्यायन के उल्लेख से यह पता चलता है कि शायद वे ईसा की आरंभिक सदियों में रहे होंगे. दत्तक ने पाटिलपुत्र की गणिकाओं के लिए काम-शास्त्र के छठे अधिकरण वैशिक अधिकरण को बढ़ाया था और वेश्याओं के बीच रहकर इसी दत्तक ने 'दत्तक सूत्र' की रचना की थी.

'उत्सव' में 'दत्तक' की जीवनी के आधार पर ही शायद स्वयं वात्स्यायन को बसंतसेना के महल में रख दिया गया है, लेकिन वास्त्यायन की भूमिका में अमजद खां को किस आधार पर रख दिया गया यह तो शुद्ध हास्य की दृष्टि से भी समझ में नहीं आता. फिर भी, कुल मिलाकर 'उत्सव' एक दिलचस्प प्रयोग है और निस्संदेह भारतीय अतीत के एक ऐसे पृष्ठ को साहस के साथ सामने लाने की कोशिश करता है जो निरा आध्यात्मिक या बैरागी अतीत नहीं है. जहां यदि 'धर्म' और 'मोक्ष' नहीं तो कम से कम 'काम' और 'अर्थ' के पुरुषार्थ को तो पूरे उल्लास से प्रस्तुत किया ही गया है!

हर्जोग पश्चिमी जर्मनी के शायद सबसे विचारशील फिल्म निर्देशकों में माने जा सकते हैं. सुप्रसिद्ध जर्मन निर्देशक फासबाइडर (जिनकी कुछ वर्ष पहले अल्पायु में ही मृत्य हुई) की अपेक्षा हर्जोग ने बहुत ही कम फिल्में बनायी हैं लेकिन बहुत ही अच्छी फिल्में बनायी हैं. उनकी नवीनतम फिल्म 'व्हेअर द ग्रीन ऐंटस ड्रीम' (हरी चीटियों के सपने), जो इस उत्सव की इनी-गिनी श्रेष्ठ फिल्मों में रखी जा सकती है, फिर एक बार उनकी प्रतिभा को पुष्ट करती है और उनके भविष्य के प्रति पूरी तरह आश्वस्त. फिल्म में कथानक या पात्र महत्वपूर्ण नहीं है, एक विचार महत्वपूर्ण है. कुछ भू-वैज्ञानिक आस्ट्रेलिया में धरती का गहरा उत्खनन करने के लिए बड़ी-बड़ी मशीनें ले जाकर काम शुरू करते हैं. आस्ट्रेलिया के आदिवासियों से उनकी सीधी टकराहट होती है जब वे इस वैज्ञानिक का विरोध करते हैं. आदिवासियों का सीधा तर्क है कि वे इस धरती पर पहले से रह रहे हैं, धरती उनकी पवित्र भूमि है और धरती की सतह के नीचे स्वप्न देखनेवाली हरी चींटियां उनका विश्वास हैं. आज की सभ्यता को कोई अधिकार नहीं कि वह इस पवित्रता को रौंद डाले. एक आदिवासी जब पूरे विश्वास से पूछता है—'तुम्हें कैसा लगेगा यदि हम तुम्हारे गिरिजाघरों को खोद कर फेंक दें." तो नयी सभ्यता के प्रतिनिधियों के पास कोई उत्तर नहीं रहता. जमीन पर कब्जे को लेकर मुकदमा चलता है. कोई साफ फैसला नहीं होता. एक अजीबोगरीब समझौता होता है. आदिवासियों को एक हवाई जहाज पसंद आया था जिसकी वे मांग करते हैं. उन्हें हवाई जहाज में बैठना अच्छा लगता है हालांकि वे उसको उड़ाना नहीं जानते, लेकिन एक दिन उन्हीं आदिवासियों में से एक उस हवाई जहाज को उड़ाता है. जाहिर है कि यह अनाड़ी उड़ान ज्यादा दूर नहीं जा पाती और पास की पहाड़ियों में कहीं हवाई जहाज क्रैश कर जाता है. नायक भू-वैज्ञानिक इस पूरी

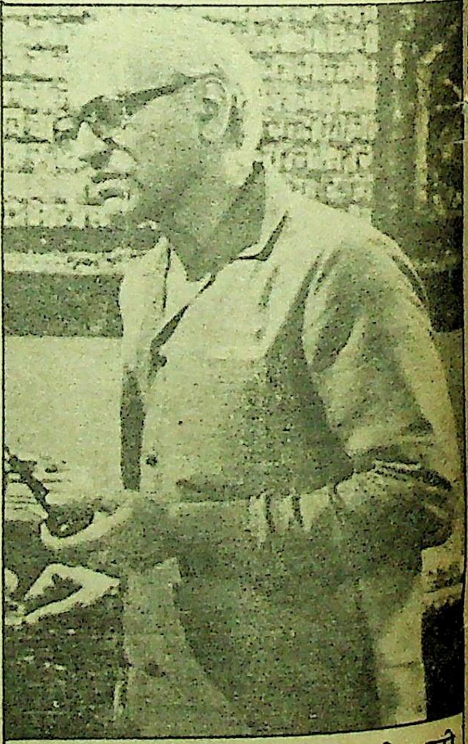

फिल्म 'पार्टी' के एक दृश्य में अमरीश पुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रासदी को गहराई से समझते हुए अपने काम से विरक्त हो जाता है.

आदि सभ्यताओं और आधुनिक सभ्यताओं के बीच द्वंद्व के ऊपर बनी अनेक फिल्में याद आती हैं. हर्जोग जिस रूप में इस द्वंद्व को समझते और प्रस्तुत करते हैं वह कई तरह के सवाल मन में उठाता है. क्या हम आदि सभ्यताओं और आधुनिक सभ्यता के बीच कोई निर्णायक चुनाव कर सकते हैं? जिस द्वंद्व को हर्जोग ने दर्शाया है उसकी असली जमीन कहां है—हमारे भीतर? या हमारे बाहर? कहीं ऐसा तो नहीं कि जिस द्वंद्व या लड़ाई को हर्जोग आदि-सभ्यताओं और आधुनिकता के बीच देख रहे हैं दरअसल वह हमारी ही रोमांटिक और यथार्थवादी प्रवृत्तियों के बीच का सतत द्वंद्व हो? जब हम अपने वर्तमान या प्रत्यक्ष को सोचते हैं तब तो हमारी दृष्टि यथार्थवादी, भौतिक और आलोचनात्मक होती है, लेकिन जब हम अपने अतीत या भविष्य को सोचते हैं हमारी दृष्टि भावुक, आदर्शवादी, सरल विश्वासी और पक्षपाती होती है.

फिल्म 'तरंग' का एक भावपूर्ण दृश्य

भारत में आज हर दूसरी फिल्म किसी न किसी रूप में आदिवासियों या पिछड़ी जातियों या किसान मजदूरों की जिंदगियों से जुड़ी हुई बन रही है—गौतम घोष की 'दखल' और 'पार' फिल्में उसी कड़ी में नयी रचनाएं हैं जिसका सबसे रेटारिकल रूप 'मृगया' और 'आक्रोश' रही हैं, और जिसकी सबसे सौम्य और कलापूर्ण शुरुआत सत्यजित राय की 'पाथेर पांचाली' रही है. इस फर्क की ओर बराबर ध्यान जाता है कि जिस आदिवासी जिंदगी का नमूना हर्जोग के लिए एक 'स्वप्न' हो सकता है हमारे लिए वह 'स्वप्न' नहीं है, यथार्थ है, और कभी-कभी बड़ा ही कटु यथार्थ है जिसके पीछे सदियों के शोषण और अज्ञान की दहला देनेवाली यादें हैं. हमारे लिए 'स्वप्न' अगर कुछ हो सकता है तो शायद थोड़ी-सी वह प्रगति या आधुनिकता ही जिससे हर्जोग इतना घबराये हुए लगते हैं! बहरहाल, हर्जोग की यह चिंता निर्मूल नहीं कि प्रगति का पागलपन आज जिस तेजी से अपने पर्यावरण और प्राकृतिक संपदाओं को दूषित और नष्ट कर रहा है वह प्रगति नहीं आत्मघात की भूमिका है.

फिल्म 'पार्टी' के एक अन्य दृश्य में मनोहर सिंह

लेकिन भारतीय जीवन के संदर्भ में जब हम आदिवासियों या पिछड़े वर्गों की जिंदगी को पेश करते हैं तो सबसे पहले 'प्रगति' और 'आधुनिकता' जैसे मूल्यों को लेकर हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट होना चाहिए और भारतीय होना चाहिए. एक देश के अंदर आदिवासी से लेकर आधुनिक तक सभ्यताओं और संस्कृतियों के अगर कई स्तर या वर्ग बनते, या बनाये जाते हैं तो उसका मतलब है उनके बीच उस भेद को मान्यता देना जिसकी जड़ों में गैर-बराबरी, अशिक्षा और शोषण के बीज हैं. आधुनिकता के जो भी लाभ हैं उनसे आदिवासियों को वंचित रखकर ही उनके आदि-स्वरूप की रक्षा संभव है. उन्हें या गांव की जिंदगी को लेकर भावुक होना एक बात है लेकिन उस जिंदगी के कटु यथार्थ को झेलना बिल्कुल अलग बात है. भारतीय अतीत आज भी हमारे बीच कहीं-कहीं इतने सड़े हुए रूप में जिंदा हैं कि उसकी ओर मुंह करते हुए भी दहशत होती है. इस दहशत को हर्जोग नहीं महसूस कर सकते क्योंकि वे हमारी तरह उस अतीत के अंधेरों और घुटन में नहीं जी रहे जिससे बाहर निकलने के लिए हम छटपटा रहे हैं. 'आक्रोश', 'सद्‌गति' या 'पार' जैसी फिल्में जिस यथार्थ का चित्रण हैं, उसका हल कम से कम हमारे लिए अतीत में नहीं, भविष्य में है और भविष्य को हमारी फिल्में ज्यादातर नियतिवादी ढंग से निबटाकर छुट्टी पा लेती हैं—उसे समस्यामूलक मानती नहीं लगतीं. शायद इसीलिए उनमें विचारों की कोई प्रखर चुनौती या द्वंद्व नहीं उभर पाता. गौतम घोष की 'पार' मुझे इस माने में ज्यादा आत्मविश्वासी—और शायद इसीलिए विश्वसनीय लगी क्योंकि वह परिवर्तन की जरूरत को लेकर भड़भड़िया नहीं है, उस जिजीविषा और हिम्मत की बात करती है जिसके बिना परिवर्तन संभव नहीं.

अतीत और वर्तमान को लेकर पाश्चात्य जीवन में मूल्यों का जो संकट है उसके लिए इतिहास पर सोच-विचार उनके लिए गूलत: विश्लेषणात्मक और शास्त्रीय है क्योंकि आधुनिकता उनके लिए एक ऐसा यथार्थ बन चुका है जिससे वे भाग नहीं सकते. इसके बरक्स हम जब अतीत, परंपरा या आदिवासियों की बात करते हैं तब हम इस यथार्थ से नहीं भाग सकते कि हमारे जनजीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज भी आदिवासी स्तर का है जिसे बदलना है—और बहुत कुछ आधुनिकता की ही दिशा में बदलना है. गोविंद निहलानी की 'पार्टी' आधुनिकता और आदिवासियों के सवाल को एक साथ उठा तो लेती है लेकिन दोनों ही को झेल नहीं पाती. आदिवासियों के प्रति सहानुभूति को चलिए फिर एक बार स्वीकार किया, लेकिन 'पार्टी' में जिस प्रकार की बोदी आधुनिकता की आलोचना की गयी है उसकी आलोचना करनेवाली समझ खुद भी उससे बहुत फर्क नहीं लगती : वह जब भी 'पार्टी' के दायरे से बाहर निकलने की कोशिश करती है सीधे आदिवासियों की तरफ भागती है : आधुनिकता की विसंगतियों के खिलाफ कोई वयस्क स्टैंड नहीं ले पाती. हर्जोग की आदिवासी गवाहियां आधुनिकता के एक संगीन जुर्म को साबित करने की कोशिश हैं, आधु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकता का अस्वीकार नहीं हैं : लेकिन 'पार्टी' का आदर्श नायक जिस अर्थहीनता से जिस अर्थपूर्णता की ओर बढ़ना चाहता है उसकी कोई दृढ़ रूपरेखा नहीं बनती.

लातिन अमरीकी सिनेमा अपने समय और अपनी जमीन को लेकर जहां ज्यादा सावधान और प्रामाणिक लगता है वहीं विचार या विचारधाराओं को लेकर भी पर्याप्त सतर्क और कहीं-कहीं पर्याप्त विश्लेषणात्मक भी. पतनोन्मुखता या डिकडेंस की यह भी एक निशानी है कि किसी भी आदर्श अथवा यकीन को लेकर हम ऐसे अफीमची हो जायें कि किसी भी प्रकार के आत्मनिरीक्षण की क्षमता ही समाप्त हो जाये. इसीलिए शायद ब्राजील के निर्देशक सांतोस की फिल्म 'मेमोरीज आफ प्रिजन' (जेल की यादें) हंगेरी की मार्ता मेजोरोस की 'डायरी' या ब्राजील के ही गुआरनेरी और हिर्समान की 'दे डोंट विअर ब्लैक टाई' (वे काली टाई नहीं पहनते) ऐसी फिल्में हैं जो राजनीति निर्पेक्ष नहीं हैं बल्कि राजनीति का बहुत मानवीय अर्थों में कला की भाषा में अंतरंग विवेचन हैं. इस माने में राजनीतिक सिनेमा भारत में काफी अप्रौढ़ रहा है लेकिन इस फिल्मोत्सव में अदूर गोपाल कृष्णन की 'मुखामुखम' (आमने-सामने) और कुमार साहनी की 'तरंग' फिल्में इस बात को सिद्ध करती लगीं कि भारतीय फिल्मकार

फिल्म 'उत्सव' के एक दृश्य में रेखा व शेखर सुमन

अब इस बात को लेकर सचेत हैं कि राजनीति का मतलब कला में वही नहीं हो सकता जो राजनीति में होता है. कला राजनीति से अलग नहीं, लेकिन उससे एक अलग तरह की चेष्टा जरूर है. जीवन के साथ कला एक आत्मीय रिश्ता बनाने की कोशिश है. इस समारोह में राजनीति से संबंधित फिल्मों में भी जो एक नयी कलात्मक गहराई देखने को मिली; वह कई मानों में पूर्वी योरोपीय देशों में बननेवाली फिल्म-चेतना की याद दिलाती थीं. इसे एक स्वस्थ लक्षण ही माना जायेगा कि इधर बननेवाली अनेक भारतीय फिल्में भी अपने परिवेश और चिंतन को लेकर अब ज्यादा सतर्क और संयमित हैं. □

मरुभूमि का वह मेघ
राम निवास जाजू

बहु-प्रशंसित पुस्तक का नया परिवर्द्धित संस्करण

मरुभूमि का वह मेघ

लेखक : रामनिवास जाजू

पचास पृष्ठों की नई सामग्री • बीस पृष्ठ चित्रों के, रंगीन भी •
फोटो कम्पोजिंग से सुन्दर छपाई • डिमाई आकार, पृ० सं० 404, मूल्य रु० 70.00

प्रख्यात उद्योगपति और समाजसेवी स्व० घनश्यामदास बिड़ला के बहुमुखी व्यक्तित्व की आत्मीय और प्रेरणाप्रद कथा-यात्रा। अनेक दुर्लभ चित्रों के साथ बहुत ही सजीव और रोचक भाषा-शैली में रामनिवास जाजू द्वारा लिखा बिड़लाजी का यह जीवन-चरित्र व्यवसाय में सफलता के अनेक सूत्र और आयाम खोलता है।

कुछ सम्मतियां

- रामनिवास जाजू ने अथक परिश्रम करके एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का साक्षात् कराया है। —महादेवी वर्मा
- यह जीवनी इतनी रोचक है कि पाठक इसे एक ही बैठक में पढ़ना चाहेगा। इसमें जीवन ही नहीं, बिड़लाजी का जीवन-दर्शन भी है। —धर्मयुग
- बिड़लाजी एक असाधारण व्यक्ति थे। इस पुस्तक को पढ़ने से पता चलता है कि उनका व्यक्तित्व कितना विशाल था। —हिन्दुस्तान

पेशगी मूल्य भेजकर रजिस्ट्री द्वारा घर बैठे पुस्तक प्राप्त करें अथवा अपने नगर के पुस्तक-विक्रेताओं से खरीदें।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा एवं बचत के लिए

नये रूपाकार में सारिका का यह अंक आपके हाथों में है. इस रूपाकार में हम आपको 100 पृष्ठों से अधिक की सामग्री 76 पृष्ठों में ही दे रहे हैं जबकि मूल्य में वृद्धि केवल 50 पैसे की ही हुई है. यदि आप वार्षिक चंदा हमें सीधे भेजें तो वर्ष में आपको 6 रुपये की और भी बचत हो सकती है. आपको करना केवल इतना है कि अपने शुल्क का राशि हमें बैंक ड्राफ़्ट/मनी आर्डर/पोस्टल आर्डर सहित नीचे दिये गये कूपन के साथ तत्काल भेज दें.

शुल्क की रियायती दरें इस प्रकार हैं :

देश में (बंगलादेश, नेपाल सहित)

वार्षिक : 90 रुपये

छमाही : 47 रुपये

विदेश में सिर्फ समुद्री डाक से :

144 रुपये वार्षिक

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह मास के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें.
मुख्य प्रसार प्रबंधक
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अगला अंक

सिर्फ एक बटन पर एक उंगली की जरा-सी हरकत... और अस्सी करोड़ लोग... स्वाह...!

बममारी से लेकर आग, बाढ़, सूखा, युद्ध, दुर्घटना, तानाशाही और बदले की भावना आदि के तहत कभी कुदरत अपना कमाल दिखाती है तो कभी आदमी अपना जमाल. इस जलवे और जमाल के जाल में छुपे कहर के सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं की विविध जानकारी देने के लिए प्रस्तुत है—सारिका : रजत जंयती वर्ष की सातवीं भेंट—

महाविनाश की कहानियां

रवींद्रनाथ टैगोर, शिवप्रसाद सिंह, पर्ल एस. बक, अलबर्ट कामू, हेमिंग्वे, महाश्वेता देवी, भैरप्पा, ह्यूल्मर सोदेरबर्ग, बाकेशियो, मृदुला गर्ग, क्लीर हैडरारी, शौकत उस्मान, एदिता मोरिस आदि की दो दर्जन से अधिक कहानियां, उपन्यास अंश एवं लघुकथाएं आदि.

◙ सुन रे भोपाल, क्या हैं हालचाल?

—राजनितिक और अखबारी रपटों से अलग—मानवीय संवेदना और गैस त्रासदी के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते—प्रभाकर श्रोत्रिय और रमेश दवे के प्रमाणिक आलेख

- जहां वसंत में चिड़ियां नहीं चहकतीं
- शहर जिन पर अंगार बरसे
- जहरीली गैस के पुरखे : हिटलर और स्टालिन
- समुद्र में तूफान और तूफानों में समोया संसार
- महाविनाश को दर्शाता फिल्म का परदा
- महाभारत के बाद जब कोई पुरुष ही नहीं बचा!...

इसके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ तथा साथ ही—आते हुए लोग, युवालेखन कहानी प्रतियोगिता, बतंगड़, मथुरादास की डायरी और एक नया स्तंभ—'गपशप'

सारिका 1 अप्रैल 1985

हर पखवारे जिंदगी से एक जरूरी मुलाकात का माध्यम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar